तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥' इस कल्पमें दोनों हेतु विस्तारसे लिखते हैं। मनुशतरूपाजीका तप विस्तारसे कहा। अब रावणका जन्म विस्तारसे कहते हैं। (ख) *'इतिहास'* शब्दसे जनाया कि कविकल्पित नहीं है। (ग) संत श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि *'अति पुनीत'* इससे कहा कि इस हेतुसे साक्षात् श्रीसाकेतविहारीजीका प्रादुर्भाव है जो कारणोंके भी परम कारण हैं, यथा—**'वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्।'** (मा० त० वि०) पुनः भाव कि और अवतार शापवश हुए और यह केवल कृपासे, अनन्य निज भक्तके प्रेमवश हुआ; अतएव *'अति पुनीत'* कहा। (मा० त० वि०) पुनः भाव कि इसमें किसीकी रक्षा अथवा किसीको दण्ड आदिकी वासना नहीं है, यह अवतार केवल शुद्ध प्रेम भावसे भरा हुआ है; अतएव यह अति पावन है। (वै०) पुनः, इसके श्रवण-पठन आदिसे *'मन क्रम बचन जनित अघ जाई।'* (७। १२६) अतः *'अति पुनीत'* कहा। यह इस कथाका माहात्म्य बताया। (घ) *'उमहिं कही बृषकेतु'* यह मनु-शतरूपा प्रकरणका उपसंहार है। *'लगे बहुरि बरनैं बृषकेतू।'* (१४१। ८) उपक्रम है। (ङ) *'अपर'* के अर्थ हैं 'और वा दूसरा' तथा 'पश्चात्'। भाव यह कि श्रीसाकेतविहारीके अवतारके एक हेतु तो श्रीमनु-शतरूपाजी हुए, उन्हींके अवतारका दूसरा हेतु अब कहते हैं अथवा, मनु-शतरूपाके वरदानके पश्चात् यह भी कारण हुआ। (मा० त० वि०) पुनः भाव कि 'जिसमें किसीकी रक्षा, किसीको दण्ड, कोई आर्त, कोई अर्थार्थी इत्यादि अनेक वासना हैं, ऐसा जो श्रीरामजन्मका हेतु है' वह। (वै०)

वि० त्रि०—इस इतिहासका उपक्रम, अभ्यास और उपसंहार भक्तिसे है; यथा—*'हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरि भगति बिनु'* (उपक्रम), *'पंथ जात सोहत मतिधीरा। ग्यान भक्ति जनु धरे सरीरा॥'* (अभ्यास), *'दंपति उर धरि भगत कृपाला'* (उपसंहार) और भक्तिको गङ्गारूप कहा ही है, यथा—*'रामभगति जहँ सुरसरि धारा।'* यहाँकी भक्ति-गङ्गा विरति-यमुना और विचार-सरस्वतीसहित शोभित है। यथा—*'होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन, हृदय बहुत दुख लाग।', 'बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥'* अतः इसे *'अति पुनीत'* कहा।

पं० राजबहादुर लमगोड़ाजी—'तुलसीदासजीकी नाटकीय महाकाव्य कला' इति। मैंने अपने लेखोंमें विस्तारसे लिखा है और इस प्रसङ्गमें संकेतरूपसे फिर लिखता हूँ कि संसारमें तुलसीदासजीको ही महाकाव्य और नाटकीय कलाओंके एकीकरणमें पूर्णतः सफलता प्राप्त हुई है। नहीं तो अंग्रेजी भाषाका तो सिद्धान्त यह है कि महाकाव्यकी उड़ान खड़ी Vertical होती है और नाटकीय कलाका फैलाव पड़ा हुआ Horizontal होता है। एक आकाशकी ओर उड़ती है तो दूसरी पृथ्वीपर फैलती है, भला आकाश व जमीनके कुलावे कैसे मिलें ? फारसी भाषामें भी कहा गया है कि 'रज्म' (वीररस=कुछ महाकाव्यकला), 'बज्म' (शृङ्गार=कुछ नाटकीय कला) और'पंद व नसायह'(उपदेश-कुछ महाकाव्यकला) का एकीकरण असम्भव है।

तुलसीदासजीने इस सफलताके लिये जिन युक्तियोंका प्रयोग किया है वह संक्षिप्तरूपमें यह है—

(१) बालकाण्डका आदि भाग और उत्तरकाण्डका अन्तिम भाग प्रस्तावना Prologue और उपसंहार Epilogue रूपमें है और इनमें आधिदैविक तथा आध्यात्मिक रहस्योंका प्रकटीकरण हुआ है। बरनार्ड शाने भी इस युक्तिका प्रयोग किया है पर अन्तर यह है कि शा महोदयकी प्रस्तावना इत्यादि गद्यात्मक, मस्तिष्कीय तथा शुष्क हैं और तुलसीदासजीका काव्यचमत्कार वहाँ भी बना है। यहाँतक कि विषयसूची Index तक ऐसे सुन्दर रूपकके रूपमें है कि जिसका जवाब साहित्य-संसारमें मिलना कठिन है।

(२) चरित्र ऐसे लिये हैं जो मानवी और दैवी सत्ताओंके एकीकरणसे बने हैं, जिसमें उनके जीवनका मानवी अंश नाटकीय कलाकी बहार दिखा दे और दैवी अंशसे प्रसङ्ग महाकाव्यकलाके शिखरपर पहुँच सके।

(३) शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि-गरुड़ और भरद्वाज-याज्ञवल्क्यके जोड़े बराबर हमारे साथ हैं जो यथासमय रहस्योंका प्रकटीकरण संकेतोंद्वारा करते जाते हैं; परन्तु यह रङ्गमञ्चके आकाशपर ठीक उसी तरह क्षणिक प्रकाशपरिधिके अंदर दिखायी देते हैं जैसे आपने फिल्ममें भगवान् कृष्णको दुपट्टा घुमाते द्रौपदीचीरहरणके समय देखा हो।

(४) कवि भी साथ रहता है और हम दर्शकोंके लिये आलोचना करता जाता है। बरनार्ड शाने भी इस युक्तिका प्रयोग किया है परन्तु गद्यात्मक शुष्क रीतिपर, बिना इस युक्तिके शैक्सपियरके नाटक (विशेषतः दुःखान्तक) भूलभुलैयाँ हैं और नैतिक मार्ग साफ नहीं दीखता।

(५) जहाँ कला नाटकीय है वहाँ भी छोटे-छोटे आधिदैविक दृश्य लाये जाते हैं। इस रूपमें कि रहस्यका प्रकटीकरण भी हो जाय और रस भङ्ग न हो, उदाहरणके लिये, सरस्वती और देवताओंका संवाद वनवास-प्रकरणमें विचारणीय है—शा महोदयने भी इस युक्तिका प्रयोग किया है।

(६) जैसा मैं पहले एक नोटमें कह चुका हूँ, *'निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह'* के दृश्यके बाद कलाका रूप बदल जाता है। अब हम महाकाव्यके वायु-मण्डलमें पहुँच जाते हैं, जहाँ सब चीजें असाधारण हैं। पर वहाँ भी नाटकीय कलाकी सरसता जाने नहीं पायी। हमारी कल्पनाशक्तिको रबड़के समान घटने-बढ़नेवाली बना दिया गया है। इस काममें सुरसा-हनुमान्-प्रसङ्ग ठीक वैसा ही है जैसा 'मिल्टन' के 'पैराडाइज-लास्ट' में शैतानी पार्ल्यामेन्टका प्रसङ्ग।

(७) महाकाव्यकलामें ओजगुण प्रधान होना ही चाहिये। गुप्त आकाशवाणी और अमानुषिक दृश्य जैसे यहाँ (मनु-शतरूपाके लिये) भगवान्‌का मूर्तिमान् प्रकट होना, इस प्रसङ्गमें बड़े मार्केकी चीजें हैं। बरनार्ड शाने अपने-Oracle (भविष्य वक्तव्य-) को ओजस्वी बनानेके लिये मैजिक लैन्टर्न कलासे काम लिया है और उसका अमानुषिक रूप परदेपर दिखाया है। परन्तु यह सब धोखा है। पाश्चात्त्य जगत् वैज्ञानिक संकोचके कारण अमानुषिक सत्ताओंको भूल-सा गया है, नहीं तो इस धोखेकी आवश्यकता न होती। देखिये यहाँ भगवान्‌का प्रकटीकरण कितना सुन्दर और सरस है।

भारतवर्षमें तो निराकारवादी महापुरुषोंने भी यह माना है कि 'मुक्त पुरुष' का शरीर केवल इच्छामात्र होता है और वे अभ्यागत होते हैं। (स्वामी दयानन्द—सत्यार्थप्रकाश) अब इसमें और *'निज इच्छा निर्मित तन माया गुन गोपार'* में बहुत ही थोड़ा अन्तर रह जाता है। मिल्टनने भी लिखा है कि आधिदैविक व्यक्तियोंमें घटने-बढ़नेकी शक्ति होती है और जो रूप या लिङ्ग चाहें वे धारण कर सकते हैं।

यदि वास्तवमें ईश्वरी सत्ता सब जगह व्यापक है तो *'प्रेम ते प्रगट होहिं जिमि आगी'* का सिद्धान्त Self-evident—(स्वयंसिद्ध) सा प्रतीत होता है। सर मोहम्मद एकबाल-जैसा निराकारवादी मतका कवि भी लिखता है—*'कभी ऐ हक़ीकते मुन्तज़र नज़र आ लिबासे मजाज़ में। कि हजारों सिजदे तड़प रहे हैं हमारे जबीने नियाज़ में॥'* यह तड़प मानव जातिमें बताती है कि हम भगवान्‌को सगुणरूपमें बिना देखे संतुष्ट नहीं हो सकते! वेदोंमें कितनी ही प्रार्थनाएँ हैं कि भगवान् हमारे सम्मुख तथा हमारे अन्तःकरणमें प्रकट हों। पर खेद है कि हमारी कल्पनाशक्ति इतनी संकुचित हो गयी है कि हम यह सम्भव नहीं समझते कि वह प्रार्थना कभी स्वीकार होगी। भाई! जहाँ और जिस व्यक्तिमें वह प्रकाश प्रकट हो, अगर उसे भगवान्‌का अवतार कहा जाय या और किसी प्रकाशरूप सत्ताका व्यक्तित्व स्वीकार किया जाय तो अवैदिक कैसे होगा—श्रीजयदेव वेदालङ्कारने अपने सामवेदभाष्यके पृष्ठ ७०२ पर नोटमें लिखा है कि श्रीपण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रने इस मन्त्रसे सीतारामकी कथा निकालनेका यत्न किया है (**सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्**) अर्थ यों लिखा है 'प्रकाशमान देदीप्यमान परमात्मा उत्तम विज्ञानमय नियमोंसे नाना रूपसे व्याप्त होकर मनोहर रूपोंसे रमण करनेयोग्य इस जगत्‌को प्रकट करता है, चलाता है, व्यवस्थित करता है'—यह केवल एक उदाहरण है। क्या तुलसीदासजीका कहना, कि अग्नि व्यापकरूप और प्रकट दो रूपोंमें जिस तरह वैज्ञानिक मानते हैं वैसे ही ज्ञान और भक्तिके संयुक्त मार्गमें भगवान्‌का निराकार और साकाररूप है और प्रकटीकरणका प्रयोग है 'प्रेम', अवैदिक है। एक सूफी कविने भी 'इश्क' की कशिशका जोर दिखाते हुए लिखा है *'कच्चे धागे से चले आयेंगे सरकार बँधे।'* स्वामी दर्शनानन्दजी-जैसे उदार पुरुषोंने भी अपने उपनिषद्भाष्य और वेदान्तभाष्यमें यह माना है कि जब जीवमें आनन्द-गुण परमात्मामेंसे आ जाता है तो वह अपनेमें 'सच्चिदानन्दत्व' का अनुभव करता है और भगवान् कृष्णकी तरह 'स्व' रूपमें बोलता है, वे कहते हैं कि लोहेका गोला भी आगके गुण धारणकर आग हो जाता है।

इन सब उदाहरणोंके देनेका हेतु यह है कि आंग्लभाषा-शिक्षित समुदाय अवतार-प्रकरणको केवल कल्पना न समझे वरन् उसपर विचार करे।

(८) यहाँ प्रसङ्ग नहीं है परन्तु संकेतरूपमें यह भी कह देना अनुचित नहीं है कि तुलसीदासकी कलामें फिल्म और सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपन्यासकलाके गुण भी इस तरह कूट-कूटकर भरे हैं कि साहित्य-संसारमें उनका रामचरितमानस बड़े मार्केकी पुस्तक है—तभी तो उनका दावा है कि *'कलियुग तरन उपाय न कोई। राम भजन रामायण दोई॥'* (अज्ञात)

* श्रीमनु-शतरूपा-प्रकरण समाप्त हुआ *

भानुप्रताप-प्रकरण

(भरद्वाज सुनु अपर पुनि रामजनम कर हेतु)

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी॥ १॥
बिस्वबिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसै नरेसू॥ २॥
धरमधुरंधर नीतिनिधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥ ३॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा॥ ४॥

शब्दार्थ—प्रति=से; के सामने; को लक्ष्य किये हुए। पुरानी=प्राचीन।

अर्थ—हे मुनि! वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो जो श्रीशिवजीने श्रीपार्वतीजीसे कही थी॥ १॥ संसारमें प्रसिद्ध एक कैकय देश है। वहाँ सत्यकेतु राजा रहता था॥ २॥ धर्मधुरंधर, नीतिका खजाना, तेजस्वी, प्रतापी, सुशील और बलवान् था॥ ३॥ उसके दो वीर पुत्र हुए जो सब गुणोंके धाम और महारणधीर थे॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। ....'* इति। (क) *'सुनु'* दो बार कहा है। एक *'भरद्वाज सुनु अपर पुनि रामजनम कर हेतु'*, दूसरे यहाँ *'सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी'*। इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं है क्योंकि प्रथम 'सुनु' अपर रामजन्मके हेतुके साथ है अर्थात् जब दूसरा 'हेतु' सुननेको कहा तब *'सुनु'* कहा और अब *'कथा'* कहते हैं, अत: कथा सुननेके लिये *'सुनु'* कहा। दो बार दो बातोंके लिये *'सुनु'* कहा। (ख) *'कथा पुनीत पुरानी'*। पुनीत है अर्थात् श्रवण करनेवाला सुनकर पवित्र हो जाता है। *'पुरानी'* है अर्थात् जब महादेवजीने पार्वतीजीसे कही तब सबने जानी। इसके पहले कोई नहीं जानता था। (ग) ☞संत, मुनि, वेद और पुराणोंका जो मत शिवजीने कहा वह याज्ञवल्क्यजीने भरद्वाज मुनिको सुनाया। अब केवल शिवजीको जो कारण समझ पड़ता है उसे सुनाते हैं, यथा—*'तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥ तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥'* (१२१। ४-५) अपूर्व कथा सुनकर भरद्वाजजी पूछते हैं कि यह कथा पूर्व किसने कही है, इसीपर याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि *'जो गिरिजा प्रति संभु बखानी'* अर्थात् यह उमा-महेश्वर संवाद है। यह कथा कभी सुननेमें नहीं आयी, इसीसे कहते हैं कि यह *'पुरानी'* है। पुन:, यह शङ्का होती है कि इस कथामें तो भगवान्‌की कुछ भी कथा नहीं है, यह तो केवल एक राजाकी कथा है, इसके सुननेसे क्या लाभ हो सकता है? इसीके निवृत्त्यर्थ *'पुनीत'* विशेषण दिया। अर्थात् राजा भानुप्रताप बड़े ही पुण्यश्लोक हुए, जैसे राजा नल, रघु, युधिष्ठिर आदि हुए और इनके कारण भगवान्‌का जन्म हुआ, ये भगवान्‌के जन्मके हेतु हैं, अतएव यह कथा पुनीत है। (ङ) *'संभु बखानी'* का भाव कि यह कथा प्रामाणिक है, शिष्टपरिगृहीत है। भगवान् शंकरने कही और पार्वतीजीने सुनी ऐसा

कहकर सुननेकी श्रद्धा बढ़ायी, नहीं तो इसके सुननेमें उतनी श्रद्धा न रहती। ☞कभी देवता, कभी नर और कभी असुर (तीनों) शापवश राक्षस हुए, कुम्भकर्ण और रावण हुए। पूर्व कथाओंमें देवता और असुरका रावण-कुम्भकर्ण होना कह आये। जय-विजय और रुद्रगण देवता थे और जलंधर असुर था। अब मनुष्यका भी रावण-कुम्भकर्ण होना कहते हैं। भानुप्रताप और अरिमर्दन नर हैं। भानुप्रतापकी कथा कहनेमें प्रधान एक भाव यही है।

नोट—१ (क) *'पुनीत', 'पुरानी'* और *'जो गिरिजा प्रति संभु बखानी'* ये सब विशेषण साभिप्राय हैं। इस श्रीरामावतारके दो हेतु बताये हैं—एक मनुशतरूपाजीको वरदान, दूसरा भानुप्रतापका प्रसङ्ग। दोनोंको *'पुनीत'* कहकर दोनोंकी एकता दिखायी। (ख) *'पुरानी'* है, शिवजी ही जानते थे। यथा—*'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥'* (१८५। ५) तथा यहाँ कथा भी वही जानते थे वा, पुरानी (पुराणी)=पौराणिक। अर्थात् ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें है। (ग) *'संभु'* और *'गिरिजा'* नाम यहाँ कल्याण और परोपकारके विचारसे बहुत अच्छे आये हैं। (घ) करुणासिंधुजीके मतानुसार यह कथा आदिकल्पकी है, अतः पुरानी कहा। ☞करुणासिंधुजी एवं संत श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि यह कथा महारामायण और शिवसंहितामें है। धनराज सूरजी बताते हैं कि अगस्त्यरामायणमें भानुप्रतापकी कथा है। (प्र० सं०) त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'यद्यपि सभी कथाएँ गिरिजाके प्रति शम्भुकी बखानी हुई हैं, पर याज्ञवल्क्यजी इन दोनों कथाओंके लिये गिरिजाशम्भुकी कही हुई बतलाते हैं, इसका आशय यह मालूम होता है कि इन दोनों कथाओंको भुशुण्डिजीने नहीं कहा और भुशुण्डिजीकी कही हुई कथाकी सूची (मूल रामचरित जो उत्तरकाण्डमें वर्णित है) में इन कथाओंका उल्लेख भी नहीं है। अतः भुशुण्डिजीने प्रधानतः उसी कल्पकी कथा कही, जिसमें नारदजीको मोह हुआ था और शम्भुने प्रधानतः उस कल्पकी कथा कही जिसमें ब्रह्म कोसलपुरभूप हुए थे।' (यह जटिल समस्या है। इसपर बहुत वाद-विवाद होता है।)

टिप्पणी—२ *'बिस्वबिदित एक कैकय देसू।'''''''* इति। (क) *'बिस्वबिदित'* मनु महाराजका देश नहीं कहा था, केवल उनका नाम दे दिया था। यथा—*'स्वायंभू मनु अरु सतरूपा',* और यहाँ देश तथा पिताका नाम भी दिया, यद्यपि इनके जाननेका कथाके लिये कोई प्रयोजन न था। इससे जान पड़ता है कि भरद्वाजजीने नाम और देश आदि पूछे (क्योंकि यह नवीन इतिहास है जो उन्होंने पूर्व नहीं सुना था। मनुजी प्रसिद्ध हैं क्योंकि ब्रह्माके पुत्र हैं; इससे उनके देशके जाननेकी चिन्ता न हुई)। इसीसे प्रथम ही उनका देश कहा (वा, स्वयं ही नयी कथा होनेके कारण कहा) पुनः, *'बिस्वबिदित'* कैकय और सत्यकेतु दोनोंका विशेषण है। देश और राजा दोनोंकी समानता दिखानेके लिये *'बिस्वबिदित'* कहा। अर्थात् जैसे कैकयदेश विश्वमें विदित है, वैसे ही सत्यकेतु राजा विश्वविदित हैं। 'सत्यकेतु' जैसा नाम है वैसा ही उसमें गुण है। विश्वमें उसके सत्यकी पताका फहराती है। लोकमें जैसा देश प्रसिद्ध है वैसा ही राजा प्रसिद्ध है यथा—**'द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान्'** इति वाल्मीकीये। (यह वचन विश्वामित्रजीने दशरथजीसे कहा था। अर्थात् जिस तरह लोकमें आप विख्यात हैं उसी तरह वह स्थान द्रुमकुल्यनामसे विख्यात है।) (ख) *'कैकय देसू'* कहनेका भाव कि यदि देश न कहते तो कैकयराजाका बोध होता, यह समझा जाता कि कैकयराजाके यहाँ सत्यकेतु रहते थे। (ग) कैकयदेश विश्वमें विदित है—इस कथनसे राजधानीकी प्रसिद्धि कही, यथा—*'जग बिख्यात नाम तेहि लंका'* और सत्यकेतु नामसे राजाकी श्रेष्ठता दिखायी।

नोट—२ 'केकय' यह देश व्यास और शाल्मली नदीकी दूसरी ओर था और उस समय वहाँकी राजधानी गिरिव्रज वा राजगृह थी। अब यह देश काश्मीरराज्यके अन्तर्गत है और कक्का (वा गकर) कहलाता है। (श० सा०) विनायकी टीकाकार हिरात जो अफगानिस्तानमें है उसे कैकयदेश लिखते हैं। कहते हैं कि यह कश्यप ऋषिका बसाया हुआ था।

नोट—३ 'सत्यकेतु' 'यथा नाम तथा गुण।' नामसे ही जना दिया कि उसके सत्यकी ध्वजा विश्वभरमें

फहराती थी। '*धर्म न दूसर सत्य समाना*' और सब धर्मोंकी जड़ सत्य ही है, यथा—'*सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।*' (२। २८) यह राजा सत्यकेतु है इसीसे धर्मधुरन्धर भी हुआ ही चाहे। पुनः, धर्मके चार चरण हैं—सत्य, शील, दया और दान। यथा-'*प्रगट चारि पद धरम के कलि महँ एक प्रधान। येन केन बिधि दीन्हे दान करै कल्यान॥*' (७। १०३) '*चारिउ चरन धरम जग माहीं॥*' (७। २१) धर्मधुरन्धर कहकर जनाया कि इन चारों प्रकारके धर्मोंमें निपुण हैं। धुरन्धर=धुरीको धारण करनेवाला, भार उठानेवाला। (प्र० सं०)

टिप्पणी—३ '*धरमधुरंधर नीतिनिधाना।*……' इति। (क) सत्यकेतु है, इसीसे धर्मधुरन्धर है—'**सत्यान्नास्ति परो धर्मः**'। 'नीतिनिधान' कहा, क्योंकि राजाके लिये नीतिज्ञ होना परमावश्यक है। नीति राजाका एक मुख्य अङ्ग है। नीति बिना जाने राज्य नहीं रहता, यथा—'*राजु कि रहइ नीति बिनु जाने।*' (७। ११२) (ख)'*तेज प्रताप सील बलवाना*' इति। तेजस्वी तीन माने गये हैं,—सूर्य, अग्नि, चन्द्र। यथा—'*तेज हीन पावक ससि तरनी।*' (६। १०३) तेज अग्निका-सा, प्रताप भानुका-सा और शील चन्द्रमाका-सा यहाँ अभिप्रेत है, यथा—'*तेज कृसानु।*……'।'(१। ४। ५) '*जब तें रामप्रताप खगेसा। उदित भएउ अति प्रबल दिनेसा॥*' (७। ३१) '*काम से रूप प्रताप दिनेस से सोमसे सील गनेससे माने*' (क० उ० ४३) [नोट—तेज, प्रताप, शील और बल, ये चार गुण चार लोकपालोंके हैं, ये सब एक ठौर सत्यकेतु राजामें दिखाये। तीन गुणवाले तीन लोकपालोंके नाम कहे गये। चौथा गुण 'बल' पवनदेवके समान जनाया, यथा—'*पवनतनय बल पवन समाना।*' (४। ३०। ४) (प्र० सं०)]

टिप्पणी—४ '*तेहि कें भए जुगल सुत बीरा।*……' इति। (क) धर्मधुरन्धर कहकर तब उसके बाद पुत्रकी उत्पत्ति कहते हैं। तात्पर्य कि धर्मसे उत्तम सन्तानकी प्राप्ति होती है, यथा—'*दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका॥ नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरि भगत भएउ सुत जासू॥*' (१४२। २-३) '*भए*' से सूचित किया कि वीर उत्पन्न होते हैं, बनाये नहीं जाते। (ख)'*सब गुन धाम*' इति। अर्थात् जितने गुण पितामें गिनाये—सत्य, धर्म, नीति, तेज, प्रताप, शील और बल उन सबके ये धाम हैं, वे सब इनमें निवास करते हैं और एक गुण सत्यकेतु-(पिता-) से इनमें अधिक दिखाया, वह है 'वीरता'। (ग) '*महा रनधीरा*' यह गुण पितामें नहीं कहा था। 'महारणधीर' का भाव कि पिता रणधीर थे और ये महारणधीर हुए। 'वीर' कहकर महारणधीर कहनेका भाव कि वीर अधीर नहीं होते, यथा—'*सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहिं।*' (२। १९१) सम्मुख युद्ध करना, प्राणका लोभ न करना वीरकी शोभा है, इससे वीरगतिकी प्राप्ति होती है। सदा रणधीर रहते हैं। रणमें धैर्यपूर्वक डटे रहना, पीछे पैर न देना, भागना नहीं, यह क्षत्रियधर्म है—'**युद्धे चाप्यपलायनम्**'। यह पितासे वीरतामें अधिक हुए, यह आगे दिखाते हैं कि वीर पिता एक देशका राजा था और इन्होंने अपने पराक्रमसे सप्तद्वीपका राज्य किया, चक्रवर्ती हुए। यथा—'*चक्रवर्त्तिके लच्छन तोरें।*' (१५९। ४) '*सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे।*……' (१५४)

नोट—४ (क) प्रथम उत्तम वंश कहकर अब '*तेहि के भए जुगल सुत बीरा।*' यहाँसे संतानकी श्रेष्ठता दिखाते हैं। जैसे मनु-शतरूपाजीके विषयमें '*दंपति धरम आचरन नीका*' कहकर उत्तानपाद आदि संतानकी श्रेष्ठता दिखायी थी। (ख) मनुसंहिता अध्याय ७ श्लोक १६० में राजाओंके छः प्रधान गुण ये कहे गये हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और आश्रय। इनके लक्षण और भेद भी अर्थशास्त्रोंमें दिये हैं।—(वि० टी०)

राजधनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥५॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥६॥
भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥७॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा॥८॥

दो०—जब प्रतापरबि भएउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति बेद बिधि कतहुँ नहीं अघलेस॥ १५३॥

शब्दार्थ—**राजधनी**=राज्यका अधिकारी वा मालिक, यथा कोशलधनी, त्रिभुवनधनी। **जेठ**=ज्येष्ठ, बड़ा। **अचल**=अटल, न टलने वा हटनेवाला, पर्वतसमान, पैर जमाये रहनेवाला। **समीती**=सुंदर मित्रता। **बरजित** (वर्जित)=रहित। **अतुल**=जिसकी तौल या अंदाज न हो सके, बहुत अधिक। **अमित**=जिसकी तुलना या समता न हो सके। **प्रतापरबि**=भानुप्रताप। **दोहाई** (द्वि=दो। आह्वाय=पुकार)। राजाके सिंहासनपर बैठनेपर उसके नामकी घोषणा वा सूचना डंके आदिद्वारा होना।

अर्थ—राज्यका अधिकारी जो जेठा पुत्र है, उसका प्रतापभानु (भानुप्रताप) ऐसा नाम है॥ ५॥ दूसरे पुत्रका नाम अरिमर्दन है; उसकी भुजाओंमें असीम बल था। लड़ाईमें वह पर्वतके समान अचल था॥ ६॥ भाई-भाई (दोनों भाइयों) में बड़ा ही मेल और सर्वदोषछलरहित प्रेम था॥ ७॥ राजाने जेठे सुतको राज्य दिया और आप हरिभजनके लिये वनको चल दिये॥ ८॥ जब भानुप्रताप राजा हुआ, उसकी दुहाई नगरमें फिरी। वह वेदविहित विधानके अनुसार प्रजाका अत्यन्त पालन करने लगा (उसके राज्यमें) पाप लेशमात्र भी कहीं न रह गया॥ १५३॥

टिप्पणी—१ '*राजधनी जो जेठ सुत आही।*······' इति। (क) '*राजधनी आही*' अर्थात् राज्यका मालिक (अधिकारी) है, अभी राजा नहीं बनाया गया है। इससे दिखाया कि वह राज्याभिषेकका अधिकारी है क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र है, जेठा पुत्र राज्याधिकारी होता है, यह नीति है। यथा—'*मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृप नीति।*' (३१) (ख) मालिक है। यह कहकर जनाया कि राजाने भानुप्रतापको मालिक (युवराज) बनाकर राज्यकाजमें प्रवीण किया, अब निपुण हो गया है अतः अब राज्य देंगे, जैसा आगे स्पष्ट है—'*जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा*'। यही कायदा है कि प्रथम राज्यकाज सिखाया जाता है। जब उसके योग्य पुत्र होता है तब उसको राज्य दिया जाता है। यथा—'*देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥*' (६२। ६) '*कहइ भुआल सुनिअ मुनिनायक। भए राम सब बिधि सब लायक॥*' (२। ३) वैसे ही सत्यकेतुने किया। [(ग) '*नाम प्रतापभानु अस*' का सीधा साधारण अर्थ यही है कि 'प्रतापभानु ऐसा उसका नाम है।' इससे यह भी जनाया कि उसका प्रताप '*भानु अस*' सूर्यका-सा है। इसीसे '*भानुप्रताप*' न कहकर '*प्रतापभानु अस*' कहा। पुनः नाम है भानुप्रताप पर वक्ता सर्वत्र प्रतापभानु ही कहते हैं। भाव यह है कि इसका प्रताप उलटनेवाला है।]

टिप्पणी—२ '*अपर सुतहि अरिमर्दन नामा।*······' इति। (क) नामसे ही दोनों भाइयोंके गुण दिखाते हैं। सूर्यका-सा प्रताप है इससे भानुप्रताप नाम है। दूसरा शत्रुओंको मर्दन करता है, इसीसे उसका अरिमर्दन नाम है। (ख) '*भुजबल अतुल अचल संग्रामा*', ये दोनों गुण शत्रुके नाशके लिये आवश्यक हैं। अतः '*अरिमर्दन*' कहकर इन गुणोंसे सम्पन्न होना भी कहा। इससे जनाया कि बड़ा पुत्र होनेसे भानुप्रताप राज्यका मालिक हुआ और यह पुत्र फौजका मालिक वा अफसर हुआ। यह राज्यकी रक्षा करता है, शत्रुपर चढ़ाई करता है। ☞बड़ा भाई प्रतापमें अधिक है, छोटा भाई बलमें अधिक है। दूसरे जन्ममें भी ऐसा होगा। कुम्भकर्ण रावणसे अधिक बली था। रावणके घूँसेसे हनुमान्‌जी भूमिपर न गिरे थे, यथा—'*जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥*' (६। ८३। १) और कुम्भकर्णके घूँसेसे हनुमान्‌जी चक्कर खाकर गिर पड़े थे। यथा—'*पुनि उठि तेहि मार्‍यो हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥*' (६। ६४। ८) रावण विशेष प्रतापी था, यथा—'*कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥ देखि प्रताप न कपि मन संका।*' (५। २०)।

टिप्पणी—३ '*भाइहि भाइहि परम समीती। सकल*······' इति। (क) '*भाइहि भाइहि*' कहकर अन्योन्य मित्रता दिखायी। प्रीति और मित्रता पर्याय हैं। (ख) '*सकल दोष छल बरजित प्रीती*' का भाव कि कपट-छल जहाँ होता है वहाँ प्रेम नहीं रह जाता, यथा—'*जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति*

भलि। बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥' (५७) अतएव छलरहित कहा। (ग) *'सकल दोष'* जैसे कि मित्रके दुःखसे दुःखित न होना, (यह दोष है, यथा—*'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी॥'*) कुमार्गसे निवारण न करना, मित्रके अवगुण दूसरेसे कहना, देने-लेनेमें शङ्का रखना, हित न करना, विपत्ति पड़नेपर स्नेह न करना, मुखपर प्रशंसा और पीठपीछे निन्दा करना इत्यादि दोष श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवसे बताये हैं। कपट=छल—*'सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहि चीन्हा॥'* (५। ३। ४)।

टिप्पणी—४ *' जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा।……'* इति। (क) जो पूर्व कहा था कि राजा *'धरम धुरंधर नीतिनिधाना'* था, उसीको यहाँ चरितार्थ करते हैं। धर्मात्मा और नीतिनिपुण है, इसीसे ज्येष्ठ पुत्रको राज्य दिया। पुत्रको राज्य देना धर्म और नीति है, यथा—*'लोभु न रामहिं राजु कर बहुत भरत पर प्रीति। मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृपनीति॥'* (२। ३१) (ख) *'हरि हित आपु गवन बन कीन्हा'* इति। प्रथम धर्म निबाहा; तब उससे वैराग्य हुआ। *'जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा।'* यह वैराग्यका लक्षण वा प्रमाण है। वैराग्य होनेसे भगवान्‌में भक्ति हुई, अतः *'हरिहित आपु गवन बन कीन्हा'।* यह सब क्रमसे दिखाया। धर्मसे वैराग्य और वैराग्यसे भक्ति होती है, यथा—*'धर्म तें बिरति ……'; 'प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥ एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धरम उपज अनुरागा॥'* (३। १६) (ग) *'गवन बन कीन्हा'* से जनाया कि राजाका चौथापन आ गया, यथा—*'संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथे पन जाइहि नृप कानन॥'* (६। ७) उदाहरण—*'होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।……।'* चौथेपनमें बन जाना चाहिये यह धर्मनीति है, अतः उसका पालन किया।

[मनुजीने *'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा'* और सत्यकेतुको बरबस देना नहीं पड़ा, यह *'जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा'* से स्पष्ट है। इससे जनाया कि प्रतापभानुको राज्यकी आकांक्षा थी, इससे उसने नहीं न किया। इसमें ही प्रतापभानुके विनाशका गूढ़ रहस्य कविने रख दिया है। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—५ *'जब प्रतापरबि भएउ नृप फिरी दोहाई देस।……'* इति। (क) नये राजाकी दुहाई फिरती है, यथा—*'नगर फिरी रघुबीर दोहाई'*। इससे स्पष्ट किया कि पहले राज्यके अधिकारी मालिक थे, राजा न थे, अब राजा हुए तब मुनादी फिरी कि ये राजा हैं। सत्यकेतु एक देश (कैकय देशमात्र) का राजा था, इसीसे देशमें दुहाई फिरना कहते हैं। भानुप्रताप अपने पराक्रमसे सब राजाओंको जीतकर सप्तद्वीपके राजा हुए, यह आगे स्पष्ट कहा है—*'सप्तदीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाँड़ि नृप दीन्हे॥'* (ख) *'प्रजा पाल अति बेदबिधि कतहुँ नहीं अघ लेस'* इति। इससे दिखाया कि राजा कैसा भारी धर्मात्मा है कि प्रजामात्रमें कहीं पापका नामतक नहीं है। [*'अति'* से यह भी जनाया कि प्रजाकी रक्षा आदि पुत्रवत् करता था। कुमार्गियोंको दण्ड देता था। इससे हिंसा, जूआ, चोरी, परस्त्रीगमन आदि व्यसन कहीं नहीं रह गये। (वै०) राजा धर्मात्मा था अतः प्रजा भी धर्मात्मा है।

छान्दोग्योपनिषद् अ० ५ खण्ड ११ में एक केकयकुमार 'अश्वपति' की चर्चा आयी है जिनके पास प्राचीनशाल आदि ऋषियोंसहित अरुणपुत्र उद्दालक मुनि वैश्वानर आत्माके सम्बन्धमें जानकारीके लिये गये थे। उन केकयकुमारने उनसे कहा था कि 'मेरे राज्यमें कोई चोर, अदाता, मद्यप, अनाहिताग्नि, अविद्वान् और परस्त्रीगामी नहीं है फिर कुलटा स्त्री आयी ही कहाँसे ? यथा—**'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः। नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो॥'** ५॥ इससे जान पड़ता है कि केकयदेशके सभी राजा इस प्रकार प्रजाका पालन करते हैं। राजा भानुप्रताप इनसे भी अधिक प्रजापालक था।]

पुनः, *'अति'* का भाव कि सत्यकेतु भी प्रजाका पालन करते थे पर भानुप्रताप 'अत्यन्त' पालन करता है, *'बेदबिधि'* से जनाया कि वेद-पुराण-शास्त्रमें उसकी अत्यन्त श्रद्धा है। श्रद्धाके उदाहरण यथा—(१)*'प्रजा पाल अति बेद बिधि',* (२)*'भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करै सादर सनमाने॥',*

(३)*'दिनप्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनै सास्त्र बर बेद पुराना॥'*, (४)*जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग। बार सहस्त्र सहस्त्र नृप किए सहित अनुराग॥'* (१५५)

नोट—१ करुणासिंधुजी लिखते हैं कि महारामायणमें यह कथा है कि 'भानुप्रताप श्रीसीतारामजीका बड़ा ही कृपापात्र है। इसका नाम प्रतापी है। श्रीरामचन्द्रजीने मनु-शतरूपाजीको वरदान देनेके पश्चात् एक समय इसे आज्ञा दी कि तुम प्रकृति-मण्डलमें जाकर राजा हो, हम तुम्हारे साथ कुछ रणक्रीड़ा करेंगे। [बैजनाथजी लिखते हैं कि इस-(प्रतापी-) पर आदिशक्तिजीका बड़ा प्रेम था। एक समय गेंदके खेलमें उसने अपनी सफलता दर्शायी। इससे प्रसन्न होकर प्रभुने यह आज्ञा दी थी।] आज्ञा पाकर आदिकल्पके प्रथम सत्ययुगमें वही सखा प्रतापभानु राजा हुआ।'

सन्त श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि श्रीरामजीकी इच्छासे प्रतापी सखा भानुप्रताप हुआ और 'बलवर्य' सखा अरिमर्दन हुआ। वे लिखते हैं कि शिवसंहितामें कहा है कि—**'प्रतापी राघवः सखा भ्राता वै स हि रावणः। राघवेण तदा साक्षात्साकेतादवतीर्यते॥'**

नोट—२ *'अति बेद बिधि……'* इति। *'अति बेद बिधि'* कहकर जनाया कि सत्यकेतु 'वेदविधि' से प्रजापालन करते थे और भानुप्रताप उनसे श्रेष्ठ हुआ। (प्र० सं०)

अलंकार—*'अघलेस'* कहकर राजाकी अतिशय नीति-निपुणता कहना 'अत्युक्ति' अलङ्कार है। यथा—*'योग्य व्यक्तिकी योग्यता अति करि बरनी जाय। भूषन सो अत्युक्ति है समुझैं जे मतिराय॥'* (अ० मं०)

नृप हित कारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥ १॥
सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रतापपुंज रनधीरा॥ २॥
सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥ ३॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥ ४॥

शब्दार्थ—**चतुरंग**=चतुरंगिणी सेनाके चार अङ्ग हैं—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल। जुझारा=जूझनेवाले; पैर पीछे न रखनेवाले। चाहे लड़ाईमें प्राण ही क्यों न चले जायँ, बाँके वीर, सूरमा। यह शब्द प्रान्तिक है। केवल पद्यमें प्रयुक्त होता है। 'बलवीर'—बलमें औरोंसे बढ़कर, बलवान्, बलवान् और वीर, शूरवीर। **वीर**=जो किसी काममें औरोंसे चढ़कर हो जैसे दानवीर, कर्मवीर, बलवीर। **प्रतापपुंज**=प्रतापसमूह। पुंज=समूह, राशि, ढेर। **प्रतापपुंज**=बड़ा प्रतापी। **गहगहे**=धमाधम, धूमधामके सहित, बहुत अच्छी तरह। इस अर्थमें यह शब्द बाजोंहीके सम्बन्धमें आता है, यथा—*'बाजे नभ गहगहे निसाना।'* (१। २६२) *'गहगह गगन दुंदुभी बाजी,' 'बाज गहागह अवध बधावा।'* (अ० ७)*'चली गान करत निसान बाजे गहगहे लहलहे लोयन सरसई है।'* (गीतावली) **निशान**=डंका, धौंस, दुंदुभी। पहले लड़ाईमें डंकेका जोड़ा ऊँटों और हाथियोंपर चलता था और उसके साथ निशान (झंडा) भी रहता था, इससे यह सूचना होती थी कि लड़ाईके लिये हम आये हैं।

अर्थ—मन्त्रीका नाम धर्मरुचि है जो शुक्राचार्यजीके समान सयाना और राजाका हित करनेवाला था॥ १॥ मन्त्री चतुर, भाई बलमें वीर और आप (राजा) बड़ा ही प्रतापी और रणधीर था॥ २॥ साथमें (पास) अपार चतुरंगिणी सेना थी जिसमें अगणित उत्तम-उत्तम योद्धा थे जो सब-के-सब समरमें जूझ जानेवाले थे॥ ३॥ सेनाको देखकर राजा हर्षित हुआ और धमाधम नगाड़े बजने लगे॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'नृप हित कारक सचिव सयाना।'……'* इति। (क) मन्त्रीका यही एक धर्म है कि राजाका हित करे और चतुर हो। सयाना हो अर्थात् सब बातें जाने, यह मुख्य है। (पुनः, भाव कि राजाका जो भी हित करता है वह सब पूर्ण होता है, अतः सयाना कहा। पुनः, **सयाना**=ज्ञानी। संग्रामका समय है, अतः ज्ञानी कहा। ज्ञानी कहनेका भाव यह है कि ज्ञानीकी पराजय नहीं होती, यथा—**'यत्र योगेश्वरः**

कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥' (गीता १८। ७८) (ख) *'नाम धरम-रुचि'* अर्थात् यथा नाम तथा गुण है। धर्ममें रुचिका प्रमाण है कि *'नृपहित हेतु सिखव नित नीती।'* (ग) शुक्र समान कहनेका भाव कि शुक्र राजाके हितकारक थे और सयाने भी। जब राजा बलिने उनके वचन न माने तब भी उन्होंने राजाका हित विचारकर जलपात्रमें प्रवेशकर उसमेंसे जल न गिरने दिया, जिसमें राजा संकल्प न कर सके और उसका राज्य बना रह जाय। बृहस्पति भी नीतिमें कम नहीं हैं परंतु उनके समान न कहा। कारण कि इन्द्रने जब बृहस्पतिका अपमान किया तब वे चल दिये। इन्द्रकी राज्यश्री नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। पर बृहस्पतिने उनकी रक्षा न की। अतएव बृहस्पतिको शुक्रके समान राजाका हितैषी न जानकर उनकी उपमा न दी। पुनः दूसरा भाव कि राजा भानुप्रतापको राक्षस रावण होना है, शुक्र राक्षसोंके गुरु और मन्त्री हैं। धर्मरुचि भानुप्रताप (भविष्यके रावण)का मन्त्री है, अतः शुक्र समान कहकर भविष्यकी सूचना दी। (घ) प्रजाका हित राजा करते हैं यह दोहेमें दिखा आये। राजाका हित मन्त्री करता है यह यहाँ कहा। ☞राजाके सात अंग कहे गये हैं उनमेंसे मन्त्री प्रधान अंग है, इसीसे मन्त्रीको प्रथम कहते हैं।

नोट—१ श्रीशुक्राचार्यजी देवता हैं। पर दैत्योंके पक्षमें रहते हैं, दैत्योंके आचार्य और सर्वज्ञ हैं। जब राजा बलि नर्मदाके उत्तर तटपर भृगुकच्छक्षेत्रमें अश्वमेध-यज्ञ कर रहे थे तब वामनरूपधारी विष्णुभगवान्ने देवकार्यके लिये उनसे जाकर अपने पैरोंकी नापसे तीन पग पृथ्वी माँगी और राजा बलिने देनेको अङ्गीकार कर लिया। उस समय सर्वज्ञ दैत्यगुरुने भगवान्के उद्देश्यको जानकर बलिको भूमिदान करनेसे रोका। अनेक प्रकारसे राजाको नीति समझायी—'अपनी जीविकाकी वृत्ति वा प्राणोंकी रक्षाके लिये, पुनः किसीके सत्य बोलनेसे किसीके प्राणोंपर आ बने तो उसकी रक्षाके लिये इत्यादि अवसरोंपर झूठ बोलना पाप नहीं है; तुम अपनी जीविकाकी वृत्तिकी रक्षाके लिये अब भी 'नहीं' कर सकते हो। राजाने इनकी बात न मानी तब गुरुने डाँटा और शापका भी भय दिखाया, अपने अपमानकी चिन्ता न की। फिर भी जब बलि अपनी सत्य-प्रतिज्ञासे न डिगे तब वे जलपात्रमें प्रवेश कर गये, जिसमें संकल्प पढ़नेके लिये जल ही न मिले। इसका फल यह उनको मिला कि उनकी एक आँख फोड़ दी गयी। इस प्रकार अपना अपमान और अहित सहकर भी उन्होंने बलिका भला ही चाहा था। 'शुक्रनीति' इनका ग्रन्थ प्रसिद्ध ही है।

श्रीकेशवदासजीने 'रामचन्द्रिका' में कहा है कि जब अकम्पनादि बड़े-बड़े बली योद्धा मारे गये तब रावणने महोदरसे मन्त्र (सलाह) पूछा। उस समय महोदरने चार प्रकारके मन्त्र और चार प्रकारके मन्त्री कहे हैं। यथा—(१) *'कह्यो शुक्राचार्य सु हौं कहौं जू, सदा तुम्हारो हित संग्रहौं जू।', 'चारि भाँति मंत्री कहे चारि भाँतिके मंत्र। मोहि सुनायो शुक्र जू सोधि सोधि सब तंत्र॥'* (२) छप्पय—*'एक राजके काज हतै निज कारज काजे। जैसे सुरथ निकारि सबै मंत्री सुख साजे॥ एक राजके काज आपने काज बिगारत। जैसे लोचन हानि सही कवि बलिहि निवारत॥ इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथि दूत ज्यों। इक अपनो अरु प्रभुको बुरो करत रावरो पूत ज्यों॥'* (१७ वाँ प्रकाश)। (प्र० सं०)

टिप्पणी—२ *'सचिव सयान बंधु बलबीरा।'*' इति। (क) जिसमें जो गुण प्रधान है उसमें वह गुण लिखते हैं। सचिवमें 'सयानता' प्रधान है—*'नृप हित कारक सचिव सयाना।'* भाईमें बल प्रधान है—*'अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुज बल अतुल अचल संग्रामा॥'* और राजामें 'प्रताप' प्रधान है—*'नाम प्रतापभानु अस ताही'* तथा यहाँ *'आप प्रतापपुंज।'* (ख) शत्रु बुद्धि और बलसे जीता जाता है। यथा—*'नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिय जीति जाही सों॥'* (५। ६) सचिवमें बुद्धि है और भाईमें बल है। ये दोनों राजाकी दक्षिणभुजा हैं। चतुरङ्गिणी सेना और सुभट राजाके वाम भुज हैं, यह बात जनानेके लिये राजाको दोनोंके बीचमें रखा। तात्पर्य कि ऐसा चतुर्भुज विश्वको विजय करता है।

टिप्पणी—३ *'सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥'* इति। (क) *'सेन संग'* कहकर सूचित किया कि राजा दिग्विजयके लिये सेना लेकर निकले हैं, चतुरङ्गिणी सेना कहकर *'सुभट'* को

उससे पृथक् लिखकर जनाया कि यह अक्षौहिणी सेना है। अक्षौहिणीमें पाँच अङ्ग गिनाये गये हैं—हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादा और योद्धा। यथा—'**अयुतं च नागास्त्रिगुणी रथानां लक्षैकयोद्धा दशलक्षवाजिनाम्। पदातिसंख्या षट्त्रिंशलक्षा अक्षौहिणीं तां मुनयो वदन्ति॥**' यहाँ भी अक्षौहिणी सेना बतानेके लिये पाँचों अङ्ग कहे। चतुरङ्गिणी सेना अपार है और सुभट भी अमित हैं, इसीसे अक्षौहिणीकी संख्या न की। अपार और अमित कहनेसे अमित अक्षौहिणी दल सूचित किये।

नोट—२ चतुरङ्गिणी सेनाके चार अङ्ग ये हैं—हाथी, रथ, घोड़े और पैदल। यथा—'**हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम्।**'(अमरकोश २। ८। ३३) सेनाके पत्ति, सेनामुख और गुल्मादि जो सङ्घ प्राचीन ग्रन्थोंमें कहे गये हैं उनमें भी उपर्युक्त हाथी आदि यही चार अङ्ग गिनाये गये हैं। प्रमाण यथा—'**एकेभैकरथा-त्र्यश्वापत्तिः पञ्चपदातिकाः। पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम्॥ ८०॥ सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः। अनीकिनी दशानीकिन्यक्षौहिणी॥ ८१॥**' (अमरकोश २। ८) अर्थात् एक हाथी, एक रथ, तीन घोड़े और पाँच पैदल मिलकर एक 'पत्ति' होती है। इससे क्रमसे तिगुना करते जानेसे उत्तरोत्तर क्रमशः सेनामुख, गुल्म, गण, वाहिनी, पृतना, चमू, अनीकिनी, दशानीकिनी और अक्षौहिणी होती हैं। निम्न तालिकासे यह स्पष्ट हो जायगा—

सेना संख्या	हाथी	रथ	घोड़े	पैदल
१ पत्ति	१	१	३	५
२ सेनामुख	३	३	९	१५
३ गुल्म	९	९	२७	४५
४ गण	२७	२७	८१	१३५
५ वाहिनी	८१	८१	२४३	४०५
६ पृतना	२४३	२४३	७२९	१२१५
७ चमू	७२९	७२९	२१८७	३६४५
८ अनीकिनी	२१८७	२१८७	६५६१	१०९३५
९ दशानीकिनी	६५६१	६५६१	१९६८३	३२८०५
१० अक्षौहिणी	१९६८३	१९६८३	५९०४९	९८४१५

यह गणना अमरकोशके अनुसार हुई और महेश्वरकृत अमरविवेकटीका (सन् १९०७ निर्णयसागरकी छपी) में टीकाकार अक्षौहिणीका प्रमाण कहींका इस प्रकार लिखते हैं। '**तथा च। अक्षौहिण्यामित्यधिकैः सप्तत्या ह्यष्टभिः शतैः। संयुक्तानि सहस्राणि गजानामेकविंशतिः॥ एवमेव रथानां तु संख्यानं कीर्तितं बुधैः। पञ्चषष्टिः सहस्राणि षट् शतानि दशैव तु॥ संख्यातास्तुरंगास्तज्ज्ञैर्विना रथतुरङ्गमैः। नृणां शतसहस्राणि सहस्राणि तथा नव। शतानि त्रीणि चान्यानि पञ्चाशच्च पदातयः॥ इत्येकैकम्॥ भारते अक्षौहिणीप्रमाणम्।** '**अक्षौहिण्याः प्रमाणं तु खाङ्गाष्टैकद्विकैर्गजैः। रथैरेतैर्हयैस्त्रिघ्नैः पञ्चघ्नैश्च पदातिभिः॥**' **महाक्षौहिणीप्रमाणं तु** '**खद्वयं निधिवेदाक्षिचन्द्राक्ष्यग्निहिमांशुभिः। महाक्षौहिणिका प्रोक्ता संख्या गणितकोविदैः॥**' अर्थात् अक्षौहिणी सेनामें २१८७० हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पैदल होते हैं।

महाभारतमें इसीको संक्षेपसे इस प्रकार कहा है—'**खाङ्गाष्टैकद्विकैः**' [(द्वि) २ (एक) १ (अष्ट) ८ (अङ्ग) ७ (ख) ० अर्थात् २१८७० हाथी, इतने ही रथ, तिगुने घोड़े और पचगुने पैदल मिलकर 'अक्षौहिणी' सेना होती है। इसी तरह महा अक्षौहिणीकी **खद्वयं-निधि-वेद-अक्षि-चन्द्र-अक्षि-अग्नि-हिमांशु**' (००, ९, ४, २, १, २, ३, १) अर्थात् १३२१२४९०० संख्या सब मिलकर होती है।

आजकल इस सम्बन्धका यह श्लोक प्रचलित है जो श्रीरामकुमारजीने टिप्पणीमें दिया है। परंतु हमें पता नहीं चला कि यह श्लोक कहाँका है। (इसमें अशुद्धियाँ भी बहुत हैं परंतु प्रसिद्ध है अतः दिया है।)

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि सुभटोंकी गणना हाथी, रथ और घोड़के सवारोंमें आ गयी

क्योंकि सभी हाथी, घोड़े आदि अनुमानतः बिना वीर योद्धा सवारोंके न होंगे। वीर सुभटोंका हाथी, घोड़े और रथोंमें बैठकर युद्ध करना पाया जाता है। *'सेन चतुरंग अपारा'* कहकर *'अमित सुभट'* कहनेका भाव यह हो सकता है। हाथी, रथ, घोड़े, पैदल अपार हैं (अर्थात् गिनती नहीं है कि कितनी अक्षौहिणी सेना है)। सुभटोंको अमित कहकर जनाया कि पाठक यह न समझ लें कि अपार हाथी आदिमें बहुतेरे खाली ही होंगे, सुभटोंकी संख्या कम होगी सो बात यहाँ नहीं है, हाथी, रथ और घोड़ोंपर जो वीर सुभट हैं वे भी संख्यारहित हैं।

टिप्पणी—४ (क) *जुझारा'* इति। शस्त्रास्त्रसे मरनेको तथा लड़नेको 'जूझना' कहते हैं। यहाँ 'जुझारा'=लड़नेवाले, लड़ैत। यथा—*'पुनि रघुपति सैं जूझै लागा। सर छाँड़ै होइ लागहिं नागा॥'* (ख) मन्त्री, भाई, चतुरङ्गिणी सेना और सुभट सबको गिनानेका भाव कि इन सबको साथ लेकर राजा दिग्विजयके लिये निकला। (ग) *'सुभट सब समर जुझारा।'* —सब सुभट हैं अर्थात् उत्तम चुने हुए वीर योद्धा हैं, इसीसे *'समर जुझारा'* हैं।

टिप्पणी—५ *'सेन बिलोकि राउ हरषाना।'*……' इति। (क) ☞ यात्राके समय हर्ष होना शकुन है, यथा—*'अस कहि नाइ सबन्ह कहँ माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा॥', 'हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुभ सुंदर नाना॥'* हर्षसहित चलनेसे कार्य सिद्ध होता है, यथा—*'होइहि काज मोहि हरष बिसेषी।'* (ख) हर्षित हुए कि इस सेनासे हम समस्त शुत्रओंको जीत लेंगे। हर्ष होना भीतरका शकुन है और डंके-नगाड़ेका बजना बाहरका शकुन है, यथा—'**भेरीमृदङ्गमृदुमर्दलशंखवीणा वेदध्वनिर्मङ्गलगीतघोषाः। पुत्रान्विता च युवती सुरभी सवत्सा धौताम्बरं च रजकोऽभिमुखः प्रशस्तः।**' पुनः सेनाको मनके अनुकूल पाया, अतः हर्ष हुआ।

अलङ्कार—सेनाकी ओर देखकर राजा हर्षित हुए। इस चेष्टाको देखकर सेनापति समझ गये कि राजा दिग्विजयके लिये प्रस्थान किया चाहते हैं, उनके इस सूक्ष्म कृत्यके उत्तरमें सेनापतियोंने निशान बजवाये जिससे प्रकट हो जाय कि वे राजाके अभिप्रायको समझ गये। अतएव 'सूक्ष्म अलङ्कार' हुआ। (वीरकवि)

बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥ ५॥
जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं॥ ६॥
सप्त दीप भुज बल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥ ७॥
सकल अवनिमंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥ ८॥
दोहा—स्वबस बिस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रबेसु।
अरथ धरम कामादि सुख सेवै समय* नरेसु॥ १५४॥

शब्दार्थ—**कटकई**=सेना, फौज। यह शब्द केवल पद्यमें प्रयुक्त होता है। *'मनहु करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ'* (अ०)।=छोटा कटक, छोटी सेना। **साधि**=शोधकर, शुभ मुहूर्त विचरवाकर, साधकर। **बजाई**=बजाकर, डंका पीटकर, यथा—*'देउँ भरत कहँ राज बजाई।'* **दंड**= वह धन जो शत्रु या छोटे राजाओंसे बड़े राजाको मिलता है, खिराज, कर; वह धन जो अपराधीसे किसी अपराधके कारण लिया जावे। **अवनि**=पृथ्वी। **मंडल**=अण्डाकार फैलाव, गोला। **प्रवेश करना**=भीतर जाना; दाखिल होना, पैठना।

अर्थ—दिग्विजयके लिये सेना सजाकर और शुभ दिन (मुहूर्त) साधकर राजा चढ़ाईका डंका बजाकर चला॥ ५॥ जहाँ-तहाँ अनेक लड़ाइयाँ (लड़नी) पड़ीं अर्थात् हुईं। सब राजाओंको उसने बलपूर्वक जीत लिया॥ ६॥ सातों द्वीपोंको अपनी भुजाओंके बलसे वशमें कर लिया और दण्ड ले-लेकर राजाओंको छोड़ दिया॥ ७॥ उस समय सम्पूर्ण भूमण्डलमें एक भानुप्रताप ही (मण्डलीक) राजा था॥ ८॥ संसारभरको अपनी

* पाठान्तर—'सबइ'—छ०, भा० दा०।

भुजाओंके बलसे अपने वशमें करके उसने अपने नगरमें प्रवेश किया। राजा अर्थ, धर्म, काम आदि सब सुखोंको समय-समयपर सेवन करने लगा॥ १५४॥

टिप्पणी—१ '*बिजय हेतु कटकई बनाई*·······' इति। (क) '*कटकई बनाई*' अर्थात् व्यूहकी रचना की, आगे-पीछे चलनेका प्रकार किया। प्रथम फौज निकलकर परेडपर खड़ी हुई। उसे देखकर राजा हर्षित हुआ। तब वहीं परेडपर सेनाकी रचना की गयी। सेनाकी रचना करते बने तो अवश्य विजय होती है, इसीसे '*बिजय हेतु कटकई*' का बनाना कहा। '*कटकई बनाई*' से यह भी जनाया कि पूरी सेनामेंसे कुछकी एक छोटी सेना दिग्विजयके लिये बना ली, शेष राजधानीमें ही रहने दी। (ख) '*सुदिन साधि नृप चलेउ।*' इससे ज्ञात हुआ कि उसी दिन दिग्विजयके लिये सुदिन था, उसीको साधा अर्थात् जैसे ही पयान करनेकी लग्न आयी वैसे ही पयान कर दिये। (ग) '*बजाई*' वीर जब दिग्विजयको चलते हैं तब नगाड़ा, डंका बजाकर चलते हैं, यथा—'*मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥*' (२३०। २) वैसे ही यहाँ भी जब सेना निकली तब नगाड़े बजे—'*सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥*' और जब फौज चली तब डंके बजे—'*सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई।*' इसीसे नगाड़ोंका बजना दो बार कहा।

टिप्पणी—२ (क) '*जहँ तहँ परीं अनेक लराईं*' इति। लड़ाई 'जहाँ-तहाँ' ही करनी पड़ी तब भी लिखते हैं कि 'अनेक लड़ाइयाँ हुईं। कारण यह है कि सप्तद्वीपके राजाओंको जीता है, इससे लड़ाइयाँ बहुत हुईं, फिर भी जहाँ-तहाँ ही हुईं अर्थात् सर्वत्र नहीं हुईं, कहीं-कहीं ही लड़ाई करनी पड़ी। '*जहँ तहँ*' से जनाया कि सब नहीं लड़े, बहुत-से आकर मिल गये, बहुतेरे भाग गये, यथा—'*जासु देसु नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गएउ पराई॥*' (१५८। २) (ख) '*जीते सकल भूप बरिआई*' इति। '*बरिआई*' अर्थात् बल-पुरुषार्थसे लड़कर जीता, छल करके (अर्थात् अधर्म-युद्धसे) नहीं। आगे यह स्पष्ट है, यथा—'*स्वबस बिस्व करि बाहुबल*', '*सप्त दीपभुज बलबस कीन्हे।*' (ग) ☞ संक्षेपसे युद्ध वर्णन करनेका भाव कि भानुप्रतापको सप्तद्वीपके राजाओंको जीतनेमें कुछ भी विलम्ब न हुआ, बहुत ही शीघ्र सबको जीतकर वे लौट आये। इसीसे युद्धका वर्णन भी बहुत थोड़ेमें किया गया।

टिप्पणी—३ '*सप्त दीप भुज बल बस कीन्हे*·······' इति। तात्पर्य कि सब राजाओंको जीतकर पकड़ लिया और सबके राज्यपर कर बाँध-बाँधकर सबको छोड़ दिया। सब राजा अब आज्ञामें रहते हैं। (राज्य छीनकर अपने राज्यमें मिला लेना अच्छी नीति नहीं है। राज्य उतना ही बड़ा होना चाहिये जिसकी देख-रेख स्वयं राजा कर सके। (वि० त्रि०)

नोट—१ 'सातों द्वीप सात बड़े-बड़े समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। उन्हें क्योंकर पार किया? श्रीरघुनाथजी तो सौ योजनवाले चौड़े समुद्रपर सेतु बाँधकर तब लङ्काको गये थे और ये समुद्र तो बहुत बड़े हैं?' यह शङ्का उठाकर पं० रामकुमारजी उसका यह समाधान करते हैं कि 'प्रतापीको सब मार्ग दे देते हैं। भानुप्रतापको भी समुद्रने मार्ग दिया, नहीं तो लाखों योजनके विस्तारके समुद्रोंमें पार कैसे होते? यदि समुद्र मार्ग न देता होता तो श्रीरामजी मार्ग माँगते ही क्यों? यथा—'*तासु बचन सुनि सागर पाहीं। माँगत पंथ कृपा मन माहीं॥*' (५। ५६) मोहवश पहले समुद्रने मार्ग न दिया पर जब उनका बल देखा तब प्रसन्न हुआ—'*देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भएउ सुखारी॥*' (५। ६०) उसने मार्ग न दिया पर सेतुबन्धनका उपाय बता दिया। सेतुका उपाय बताया जिसमें सुयश हो, यथा—'*एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइय। जेहि यह सुजस लोक तिहुँ गाइय॥*' जब सातों द्वीपोंमें रघुनाथजीका राज्य हुआ तब सेतु बाँधना कहाँ लिखा है। सब समुद्र मार्ग देते रहे।' दूसरा समाधान इसका यह हो सकता है कि उस समय जान पड़ता है कि भारतवर्ष बड़ी उन्नतिपर पहुँच चुका था। राजाके यहाँ बड़े-बड़े विमान (हवाई जहाज) थे, बड़े-बड़े दरियाई घोड़े आदि थे। जैसे पुष्पकविमानपर श्रीरघुनाथजी सेनासहित लङ्कासे श्रीअवध लौटे और तत्पश्चात् भी कई बार जहाँ-तहाँ पुष्पकपर उनका आना-जाना आनन्दरामायण आदिमें पाया जाता है। लङ्काकी चढ़ाईके समय वनवासमें थे, इससे समुद्रबन्धन करना पड़ा था।

नोट—२ सप्तद्वीप और सप्तसमुद्रोंका विस्तृत वर्णन श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ में, करुणासिंधुजीकी आनन्दलहरी टीकामें तथा कोशोंमें पाठक देख सकते हैं।

☞पुराणोंके अनुसार पृथ्वी सप्तद्वीपोंमें विभक्त की गयी है। भागवतमें राजा प्रियव्रतके द्वारा सप्तद्वीपकी सृष्टिका होना कहा गया है। द्वीप=पृथ्वीके विभाग। सातोंके नाम ये हैं—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक, पुष्कर। मुसलमानोंमें भी हत्फ अकलीम माने जाते हैं। पर उससे सप्तद्वीपसे कोई मिलान नहीं है।

टिप्पणी—४ *'सकल अवनिमंडल तेहि काला।.........'* इति। अर्थात् सार्वभौम राजा हुआ। *'अवनि-मंडल'* का तात्पर्य कि सप्तद्वीपमें समस्त पृथ्वी है। जिस कालमें भानुप्रताप राजा था उस कालमें पृथ्वी-भरमें दूसरा स्वतन्त्र राजा नहीं था, यथा—*'भूमि सप्तसागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥'* (७। २२) ☞श्रीरघुनाथजीके राज्यशासनके वर्णनमें *'तेहि काल'* न कहा जैसा यहाँ कहा गया है, कारण कि श्रीरामजी तो सभी कालोंमें वर्तमान रहते हैं, यथा—*'आदि अंत मध्य राम साहिबी तिहारी'* राजारूपसे भी भगवान् ही हैं, यथा—*'ईस असंभव परम कृपाला'* 'नराणां च नराधिपः' (गीता १०) और भानुप्रतापमें कालका नियम है क्योंकि कुछ दिन रहे फिर न रहे। [दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि रघुकुलमें पूर्वसे ही चक्रवर्ती राजा होते आये हैं और भानुप्रतापके पूर्वज चक्रवर्ती न थे; यही अपने कुलमें प्रथम ऐसा प्रतापी हुआ।]

टिप्पणी—५ *'स्वबस बिस्व करि बाहुबल......'* इति। (क) *'सेवै समय नरेसु'* राजा समयपर सेवते अर्थात् सेवन करते हैं। भाव कि अर्थके समयमें अर्थ, धर्मके समयमें धर्म, कामके समयमें काम और हरिभक्ति और सत्सङ्ग करके मोक्षसुख सेवते हैं। यथा—*'तथा मोच्छसुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरिभगति बिहाई॥' 'तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥'* (५। ४) तात्पर्य कि चारों पदार्थ राजाको प्राप्त हैं; यह बात राजाने स्वयं अपने मुखसे आगे कही है, यथा—*'कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें॥'* (१६४। ८) (ख) समस्त पृथ्वीको जीतनेके बाद सुखको वर्णन करनेका भाव कि निष्कण्टक राज्य होनेसे राजाको सुख होता है।

नोट—३ (क) बैजनाथजी लिखते हैं कि अब 'परिपूर्ण विभव वर्तमान है यही बात यहाँ कहते हैं। अर्थ अर्थात् इच्छापूर्ण धन, धर्म अर्थात् सत्य, शौच, दया और दानादियुक्त। काम अर्थात् एक तो कामदेव, दूसरे मनोकामनाएँ इत्यादि यावत् सुख हैं अर्थात् सुगन्ध, वनिता, वस्त्र, गीत, ताम्बूल, भोजन, भूषण और वाहन, ये आठों भाग्याङ्ग सुख राजा भानुप्रतापको सेवते (सेवा करते) हैं। अथवा सब सुख भी प्राप्त हैं और सब देशोंके राजा भी सेवामें हाजिर हैं। (ख) अर्थादिका सेवन आगे वर्णन किया गया है। सभामें बैठकर राज्यकाजको देखना-भालना अर्थका सेवन है, इससे धनका लाभ है। प्रातःकाल पूजा-पाठादि धर्मकर्मके समय धर्मका सेवन करता है। शयनके समय रात्रिमें कामसुखका और सत्सङ्गके समय मोक्षसुखका अनुभव करता है। (रा० प्र०) पं० शुकदेवलाल भी अर्थादिसे 'त्रय वर्ग सांसारिक सुखों' का भाव लेते हैं।'

वि० त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'यद्यपि कामसे सुखमात्रका ग्रहण होता है, पर यहाँ *'कामादि'* पाठ होनेसे स्त्रीसुख अभिप्रेत है और 'आदि' से इतर सुखोंका ग्रहण होगा। राजाको अर्थ, धर्म और काम तीनोंके पूजनकी आज्ञा है। सम्पूर्ण जगत्के लिये कर्मका प्राधान्य है, पर राजा और वेश्याके लिये अर्थका प्राधान्य है, अतः अर्थ पहिले कहा। तत्पश्चात् धर्म और अन्तमें काम कहा।'

वाल्मी० ६। ६३ में कुम्भकर्णने रावणसे कहा है कि जो या तो धर्म, अर्थ और कामको पृथक्-पृथक् अथवा इन तीनोंमेंसे दो-दोको अथवा सबको यथा समय करता है, अर्थात् जो प्रातः-काल करना चाहिये उसे प्रातःकाल, मध्याह्नमें करनेयोग्य मध्याह्नमें इत्यादि करता है, वही राजा नीतिवान् कहा जाता है, यथा—**'धर्ममर्थं च कामं च सर्वान्वा रक्षसां पते। भजते पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः॥'** (९)

पद्मपु० उ० में श्रीदिलीपजी महाराजने अपने सम्बन्धमें कहा है कि मैंने धर्म, अर्थ और कामका यथा-समय सेवन किया है। यथा—**'वर्गत्रयी यथाकालं सेविता न विरोधिता। तथापि मेऽनपत्यस्य न सौख्यं विद्यते हृदि।'** (प० पु० उत्तरखण्ड अ० २०२ श्लोक १०७)""""**एवं धर्मार्थकामा मे यथाकालं निषेविताः।**'(११४) अतः यहाँ भी यही भाव ग्रहण होगा और ***'सेवै समय'*** पाठ ही उत्तम है।

टिप्पणी—६*'अरथ धरम कामादि सुख"""'* इति। (क) पृथ्वीभरके राजा होनेपर अर्थ वर्णन करनेका भाव कि पृथ्वीभरका द्रव्य सब सिमिटा चला आता है। धनसे धर्म होता है, इसीसे अर्थके पीछे धर्म कहा, धर्मका फल सुख है इससे धर्मके बाद कामादि सुखका भोग कहा। (ख) चारों पदार्थ भण्डार कहाते हैं, यथा—***'चारि पदारथ भरा भँडारू।'***

टिप्पणी—७ राजाके सात अङ्ग हैं—स्वामी, मन्त्री, मित्र, कोश, देश, किला और सेना। यथा—**'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशं राष्ट्रदुर्गबलानि च।'** (अमरकोश २। ८। १७) राजा भानुप्रतापको इन सातों अङ्गोंसे पूर्ण युक्त दिखाते हैं। (१)***'करै जो धरम करम मन बानी। बासुदेव अरपित नृप ग्यानी॥'*** वासुदेव स्वामी हैं। (२)***'नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥'*** यह मन्त्री अङ्ग है। (३)***'भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥'*** भाई मित्र अङ्ग है। (४)***'अरथ धरम कामादि सुख सेवै समय नरेसु।'*** चारों पदार्थोंकी प्राप्ति और सप्तद्वीपका द्रव्य कोश है। (५)***'सप्तद्वीप भुज बल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥'*** सातों द्वीप 'देश' अङ्ग है। (६)***'घेरे नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई॥'*** इससे कोट, किला-अङ्ग वर्णन किया। और (७)***'सेन संग चतुरंग अपारा।"""'*** यह सेना-अङ्ग है। (परंतु ये ७ राज्याङ्ग हैं, राजाके अङ्ग नहीं, स्वामी=राजा)

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई॥ १॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी॥ २॥
सचिव धरमरुचि हरिपद प्रीती। नृपहित हेतु सिखव नित नीती॥ ३॥
गुर सुर संत पितर महिदेवा। करै सदा नृप सब कै सेवा॥ ४॥

शब्दार्थ— **बरजित** (वर्जित)=त्यक्त, रहित। 'सील'=परिपूर्ण। **धरमसील**=धर्मात्मा।

अर्थ—राजा भानुप्रतापका बल पाकर पृथ्वी सुन्दर कामधेनु (वा कामधेनुसम सुहावनी सुखदायक) हो गयी॥ १॥ प्रजा सब दुःखोंसे रहित और सुखी रहती; स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे॥ २॥ धर्मरुचि नामक मन्त्रीका श्रीहरिके चरणोंमें प्रेम (भक्ति) था, राजाके हितके लिये वह सदा उसको नीति सिखाया करता था। ३॥ गुरु, देवता, संत, पितृदेव और ब्राह्मण इन सबोंकी सेवा राजा सदैव करता रहता था॥ ४॥

नोट—१*'भूप प्रतापभानु बल पाई।"""'* इति। *'बल'* अर्थात् धर्मका बल। राजाके धर्मसे पृथ्वी प्रजाको सुखद होती है। अतः *'बल पाई'* कहकर *'कामधेनु भै"""'* कहा। धर्मसे सुख होता ही है, यथा—***'तिमि सुख संपति बिनहि बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥'*** (१। २९४। ३)

टिप्पणी—१*'भूप प्रतापभानु बल पाई।"""'* इति। (क) ☞यहाँ पृथ्वी कामधेनु है, राजाका सुन्दर चरित, उत्तम धर्माचरण (***'भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करै सादर सनमाने॥'*** इत्यादि) तृण है, सुन्दर प्रजा (***सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी॥***) वत्स है जिसे पाकर कामधेनुरूपी पृथ्वी पन्हाकर नाना प्रकारके (अर्थ, धर्म, कामादि) पदार्थ रूपी दूध प्रकट करती है। यथा—***'ससि संपन्न सदा रह धरनी।'*** अर्थात् भूमिको कामधेनु कहकर जनाया कि पृथ्वीसे अन्न-रत्न आदि मनोरथके अनुकूल उपजने लगे; एक बार बोया जाय, कई बार काटा जाय। दोहावलीमें कामधेनु पृथ्वीका रूपक इस प्रकार दिया है—***'धरनि धेनु चारितु चरत प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ। हाथ कछू नहिं लागिहै किएँ गोड़ की गाइ॥'*** (५१२) इसीके अनुसार यहाँ भावार्थ कहा गया। (ख)*'प्रतापभानु बल पाई'* यहाँ धर्म शब्दका अध्याहार करना होगा। अर्थात् राजाके धर्मका बल पाकर। इससे दिखाया कि पृथ्वीको राजासे बल मिलता है, समय पलट

जाता है। (ग) '*कामधेनु भै।*' कामधेनु अर्थ, धर्म और काम तीन पदार्थ देती है। राजाके सम्बन्धमें तो प्रथम ही कह आये कि '*अरथ धरम कामादि सुख सेवै समय नरेसु।*' राजाके लिये चारों पदार्थ प्राप्त ही हैं और अब बताते हैं कि सब प्रजाके लिये भी पृथ्वी कामधेनु (अर्थ, धर्म, काम देनेवाली) हो गयी। यहाँ 'प्रथम उल्लास' और 'वाचक वा वाचक धर्मलुप्तोपमा अलङ्कार' है। (घ) '*सुहाई*' को कामधेनुका विशेषण मानें तो भाव होगा कि देवताओंकी कामधेनु सुन्दर नहीं और यह सुन्दर है।

टिप्पणी—२ '*सब दुख बरजित प्रजा सुखारी।*.........' इति। (क) '*सब दुख*' अर्थात् आधि-व्याधि, दारिद्र्य, भय, रोग, शोक और वियोग इत्यादि। दुःख पापका फल है। यथा—'*नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।*' (७। १२१) '*करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग।*' (७। १००) कहीं पाप नहीं है, यथा—'*प्रजा पाल अति बेद बिधि कतहुँ नहीं अघलेस*', अतः दुःख भी नहीं है। (ख) '*प्रजा सुखारी*'। सब सुखी हैं क्योंकि सब धर्मशील हैं। धर्मका फल सुख है, यथा—'*बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय सोक न रोग॥*' (७। २०) जिनकी धर्ममें प्रीति नहीं है उनको सुख नहीं मिलता। यथा—'*सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥*' (७। १०२) (ग) ऊपर कहा कि '*कामधेनु भै भूमि*' अब यहाँ प्रजाको अर्थ, धर्म, कामकी प्राप्ति दिखाते हैं—'*सुखारी*' से अर्थकी प्राप्ति कही, '*धरमसील*' से धर्मकी और '*सुंदर नर नारी*' से कामकी प्राप्ति जनायी। (घ) दुःख-सुख द्वन्द्व हैं, दोनों सर्वत्र रहते हैं। पर यहाँ दुःख नहीं है, सुख-ही-सुख है।

टिप्पणी—३ '*सचिव धरमरुचि हरिपद प्रीती।*.........' इति। (क) मन्त्रीमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों कहते हैं। '*सचिव सयान बंधु बल बीरा*' एवं '*नृप हित कारक सचिव सयाना*' से ज्ञानी, '*धरम रुचि*' से कर्मी और '*हरिपद प्रीती*' से उपासक जनाया। (ख) प्रथम ही जो कहा था कि '*नृप हित कारक सचिव*' मन्त्री हितकारक है वह हितकारकत्व यहाँ दिखाते हैं कि '*नृपहित हेतु*' नित्य नीतिकी शिक्षा राजाको दिया करता है। तात्पर्य कि राजाका हित नीतिसे है। बिना नीतिके राज्य नहीं रहता, यथा—'*राजु कि रहइ नीति बिनु जानें।*' (७। ११२) (धर्मार्थाविरोधी काम और धर्माविरोधी अर्थका सेवन नीति है जिससे धर्म, अर्थ और काम किसीको भी पीड़ा न हो। वि० त्रि०) (ग) '*धरमरुचि*' कहकर तब हरिपद प्रीति कहनेका भाव कि धर्मसे हरि-भक्तिकी प्राप्ति होती है, यथा—'*जप जोग धरम समूह ते नर भगति अनुपम पावई।*' (३। ६)

नोट—२ महाराज हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि 'हरिपद प्रीति' विशेषण देकर कवि आजहीसे शरणागतिकी नींव दे रहे हैं। ३ ☞ उपदेश भक्तिका बीज जो पड़ जाता है वह जन्मजन्मान्तरमें बढ़ता ही जाता है, सूखता नहीं। राक्षस होनेपर भी मन्त्री भगवद्भक्त ही रहा। भुशुण्डिजीने भी कहा है—'*ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़ै बिहंग बर॥*' (७। ७९) हरिपद प्रीति दूसरे तनमें इसीसे हुई। ४—हरिपद प्रीतिमें मन्त्रीका अपना हित है और नीति सिखानेमें राजाका हित है, वह दोनों करता है। (खर्रा)

टिप्पणी—४ '*गुर सुर संत पितर महिदेवा।*.........' इति। (क) यहाँ गुरु, सन्त, सुर, पितृ और ब्राह्मण पाँच नाम लिखकर सूचित किया कि यह दूसरे प्रकारके पञ्चदेव हैं। यथा—'*चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहै न संकरद्रोही॥*' (४। १७। ५) यहाँ शंकरसे '*सुर*' को कहा। क्योंकि शंकरजी महादेव हैं। (२) '*देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥*' (४। १७। ७) यहाँ हरिसे पितृदेव कहे। पितृ भगवान्के रूप कहे जाते हैं, यथा—'पितृरूपो जनार्दनः।' (३) '*सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥*' (४। १७। ५) से 'सन्त' को कहा। (४) '*मसक दंस बीते हिमत्रासा। जिमि द्विजद्रोह किए कुल नासा॥*' से महिदेव कहे। (५) '*भूमि जीव संकुल रहे गये सरदरितु पाइ। सदगुर मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥*' से गुरु कहा। पञ्चदेव सदा पूज्य हैं, इसीसे राजा सदा सबकी सेवा करते हैं। (ख) '*करै सदा।*' 'सदा' से राजाकी पाँचोंमें अत्यन्त श्रद्धा दिखायी। (ग) सेवाके प्रकरणमें गुरुको प्रथम कहा क्योंकि इनका दर्जा भगवान्से भी अधिक है। यथा—'*तुम्ह तें अधिक गुरहि जिय जानी। सकल भाव सेवहिं सनमानी॥*' (२। १२९)

(ग)—(खर्रा) '*गुर सुर संत*......' से जनाया कि राजा कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों काण्डोंमें आरूढ़ है। गुरुसेवासे ज्ञान (यथा—'*बिनु गुरु होइ कि ग्यान*'), संतसेवासे उपासना और देव-पितृ-विप्र-सेवासे कर्मकाण्ड सूचित किया।

(घ) विनयमें भी पाँचोंको पञ्चदेवोंकी तरह एक साथ ही कहा है। यथा—'*द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पाइये। यह जानि तुलसीदास त्रास हरन रमापति गाइये॥*' (पद १३६। १२) ये भवपार होनेके साधन हैं, अतः इनकी सेवा करता है। विनयमें यहाँके '*पितर*' की जगह '*हरि*' हैं (जिसका कारण ऊपर दिया गया है), शेष चार वही हैं।

भूप धरम जे बेद बखानें। सकल करै सादर सुख मानें॥ ५॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनै सास्त्र बर बेद पुराना॥ ६॥
नाना बापी कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा॥ ७॥
बिप्र भवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥ ८॥

दोहा—जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्त्र सहस्त्र नृप किए सहित अनुराग॥ १५५॥

शब्दार्थ—**बापी**=बावली, छोटा कुँआ वा गहरा तालाब जिसमें जलतक पहुँचनेके लिये सीढ़ियाँ बनी होती हैं। **तड़ाग**=तालाब। **जाग**=यज्ञ।

अर्थ—राजाओंके धर्म जो वेदोंने कहे हैं उन सब धर्मोंको राजा आदरपूर्वक सुख मानकर करता था॥ ५॥ प्रतिदिन अनेक प्रकारके दान देता और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण श्रवण करता था॥ ६॥ सब तीर्थोंमें अनेक बावलियाँ, अनेक कुएँ, अनेक तालाब, सुन्दर फुलवाड़ियाँ और बाग तथा ब्राह्मणों और देवताओंके सुहावने घर और मन्दिर विचित्र-विचित्र बनवाये॥ ७-८॥ जहाँतक वेद-पुराणोंमें यज्ञ कहे गये हैं उन सबोंको एक-एक करके हजार-हजार बार राजाने प्रेमसहित किया॥ १५५॥

नोट—१ '*भूप धरम*' इति। राजाओंके धर्म श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीसे यों कहे हैं—'*मुखिआ मुख सो चाहिए खान पान कहुँ एक। पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥*' (२। ३१५) *राजधरम सरबस एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥*' प्रजापालन, देशरक्षा, उपद्रव आदिका निवारण इत्यादि राजाओंके धर्म हैं। महाभारतके शान्तिपर्वके 'राजधर्म' अंशमें राजाके धर्मोंका वर्णन है।

टिप्पणी—१ '*भूप धरम जे बेद बखानें।*......' इति। (क) भूप धरम=राजधर्म। ये धर्म अपने ही धर्म हैं। '*सादर करै*' से जनाया कि अपने धर्मोंके करनेमें राजाको बड़ी श्रद्धा है। वह श्रद्धा दिखाते हैं। सब करना, सादर करना और सुख मानकर करना यह सब श्रद्धाके द्योतक हैं। (ख) वेद जो कहते हैं वह धर्म है, वेदके प्रतिकूल जो कर्म हैं वह अधर्म हैं, यथा—'*जेहि बिधि होइ धरम निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥*' (१। १८३। ५) '**वेदप्रतिपादितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः**' इति (मनु० महाभारत) वेद कहते हैं इसीसे करते हैं। सब करते हैं। सब करनेसे शरीरको कष्ट मिलता है, तब अनादर होता हो सो बात नहीं है, यह जनानेको '*सादर सुख मानें*' कहा। ☞भूप-धर्म क्या हैं यह आगे दोहेतक कहते हैं।

वि० त्रि०—'**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः**' अपने धर्ममें मरना अच्छा है, क्योंकि परधर्म भयका देनेवाला है। राजा यदि संन्यास-धर्मका पालन करने चले तो वह उसके लिये पर-धर्म है, उसका फल अत्यन्त बुरा है। गीतामें प्राधान्येन यही शिक्षा है। धर्माचरण प्रारम्भमें विष-सा मालूम होता है, पर परिणाममें अमृततुल्य है।

टिप्पणी—२ '*दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना।*.....' इति। (क) '*दिन प्रति*' का भाव कि लोग कहीं

पर्व आदि पुण्य अवसरोंपर विविध प्रकारका दान देते हैं पर राजाको ऐसी श्रद्धा है कि 'प्रतिदिन' विविध प्रकारके दान देते हैं, प्रतिदिन शास्त्रादि सुनते हैं। अनेक पदार्थ देते हैं, यथा—*'गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना बिधि चीरा॥'* (१। १९६। ८) (पुन: *'बिबिध बिधि'* से जनाया कि जिस दानका जैसा विधान शास्त्रोंमें है उसके अनुसार दान देता था। वि० त्रि०) (ख)*'सुनै सास्त्र बर बेद पुराना'* इति। कथा प्रतिदिन तीन बार होती है। प्रातः, मध्याह्नोत्तर और रात्रिमें। एक समय धर्मशास्त्र होता है, यथा—*'कहहिं बसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहिं महीसु सहित रनिवासा॥'* (३५९। ५) एक समय पुराण होता है और एक बार वेद। (ग)*'सास्त्र बर'* का भाव कि वेद, पुराण, शास्त्र तीनों त्रिगुणात्मक हैं, राजा सतोगुणी और रजोगुणी शास्त्र सुनते हैं, तमोगुणी नहीं सुनते। (घ) प्रथम कहा कि *'भूप धरम जे बेद बखानें। सकल करै',* (सब सादर करते हैं) और अब कहते हैं कि *'सुनै सास्त्र बर बेद······'* इससे सूचित किया कि जो प्रतिदिन सुनते हैं वही करते हैं।

टिप्पणी—३*'नाना बापी कूप तड़ागा।······'* इति। (क) चार चरणोंका अन्वय एक साथ है, *'बनाए'* सबकी क्रिया अन्तमें दी है। *'अनेक'* और *'सुन्दर'* विशेषणका सम्बन्ध सबमें है; इससे अत्यन्त श्रद्धा दिखायी। (ख)*'बापी कूप तड़ाग'* कहकर *'सुमन बाटिका बाग'* को कहनेका भाव कि ये सब जलाशय वाटिका और बागोंमें हैं, यथा—*'बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं।'* (५। ३) *'मध्य बाग सरु सोह सुहावा।'* (२२७। ७) (ग) एक चरणमें बापी, कूप, तड़ागको कहा और दूसरेमें वाटिका बागको। दो चरणोंमें दोनोंको पृथक्-पृथक् लिखकर जनाया कि वाटिका और बागोंसे पृथक् भी बहुत जलाशय बनाये हैं।

टिप्पणी—४ *'बिप्र भवन सुर भवन सुहाए।······'* इति। (क) *'बिचित्र बनाए'* अर्थात् बनावमें सुन्दर हैं, अनेक रंगोंसे रँगे हुए चित्रित हैं, यथा—*'मंगलमय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥'* (२१३। ५) (ख) *'सुहाए'* और *'बिचित्र बनाए'* से राजाकी श्रद्धा दिखायी। (ग)*'बिप्र भवन सुर भवन'* इति। पूर्व जो कहा था कि *'गुर सुर संत पितर महिदेवा। करै सदा नृप सब कै सेवा॥'* इससे गुरुस्थान और संतस्थानका बनाना न कहा। संत विरक्त होते हैं, स्थान नहीं चाहते—*'सुत दार अगार सखा परिवार बिलोकु महाकुसमाजहि रे।'* पितृका मन्दिर नहीं होता, इसीसे पितृमन्दिरका बनाना न कहा। (घ)*'सब तीरथन्ह बनाए'* क्योंकि तीर्थस्थानोंमें इनके बनानेका विशेष माहात्म्य है। ब्राह्मण देवताओंकी पूजा करते हैं (इसलिये उनके घर बनाये) मन्दिरोंमें जीविका लगी है। (विप्रभवन और सुरभवनको साथ रखकर सूचित किया कि देवमन्दिरके पास ब्राह्मण पुजारीका घर बना देते थे जिसमें बराबर पूजा होती रहे।)

[पुनः भाव कि वेदकी रक्षाके लिये विप्रभवन, उपासनाके लिये सुरभवन और तरनेके लिये तीर्थोंको बहुत ही सुन्दर बनाया। पुण्यके दो विभाग हैं—इष्ट और पूर्त। उनमेंसे पूर्त यहाँतक कहे, आगे दोहेमें इष्ट कहते हैं। यथा—'**वापीकूपतड़ागादि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते॥' एकाग्निकर्महवनं त्रेतायां यच्च हूयते। अन्तर्वेद्यां च यद्दानमिष्टं तदभिधीयते॥**' अर्थात् वापी, कूप, तालाब, देवमन्दिर, अन्नका सदाव्रत और बाग इन सबोंको पूर्त कहते हैं। एकाग्नि कर्म हवन और त्रेताग्निमें जो हवन किया जाता है तथा अन्तर्वेदीमें जो दान किया जाता है, उसे इष्ट कहते हैं। (वि० त्रि०)]

टिप्पणी—५*'जहँ लगि कहे पुरान श्रुति····'* इति। (क) इससे यज्ञ करनेमें श्रद्धा दिखायी। वेद, पुराण और शास्त्रोंका सुनना कहा था। शास्त्रोंमें यज्ञोंका वर्णन नहीं है, इसीसे यहाँ शास्त्रोंको नहीं कहते, केवल वेद-पुराणोंको कहते हैं। (परंतु वे० भू० जी कहते हैं कि प्रत्येक यज्ञका पूर्ण विधान एवं महत्त्व पूर्व मीमांसा शास्त्रमें ही वर्णित है। बिना मीमांसा शास्त्रके किसी भी यज्ञका अस्तित्व ही न रह जायगा। शुक्ल यजुर्वेदके प्रथम और द्वितीय अध्यायमें नवेन्दु और पूर्णेन्दु-यज्ञका, तृतीयाध्यायमें अग्निहोत्रका, चतुर्थसे अष्टमाध्यायतक सोमयज्ञका, दशममें वाजपेय और राजसूय-यज्ञका, एकादशसे अष्टादशतक यज्ञीय वेदी बनानेकी विधि, उन्नीससे इक्कीसतक सौत्रामणियज्ञका, बाईससे पचीसतक अश्वमेधयज्ञका, छब्बीससे एकतीसतक

चान्द्रयज्ञका, तीस और एकतीसमें नरमेधयज्ञका, बत्तीससे पैंतीसतक सर्वमेधयज्ञका वर्णन है। बृहदारण्यकोपनिषद्के पूर्वार्धमें भी यज्ञका ही वर्णन है। इससे इस भावमें त्रुटि आती है।) (ख) *'जहँ लगि'* का भाव कि वेदादिमें ढुँढ़वा-ढुँढ़वाकर यज्ञ किये। *'सहस्र-सहस्र'* शब्द 'अगणित, अनन्त' वाची हैं। 'अनुराग-सहित' करना कहा क्योंकि उत्साह भंग होनेसे धर्म निष्फल हो जाता है, यथा—'**उत्साहभंगे धनधर्महानिः**'। (खर्रा) सहस्रों यज्ञोंका फल ही है कि *'सुनासीर सत सरिस'* विलास पावेगा।

हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥ १॥
करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी॥ २॥
चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥ ३॥
बिंध्याचल गँभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥ ४॥

शब्दार्थ—**अनुसंधान**=पीछे लगना; चाह, खोज या प्रयत्न करना; सोचना=विचारना। **अर्पित**=आदरपूर्वक अर्पण या भेंटमें दिया हुआ। **मृगया**=शिकार, अहेर, आखेट। **बिपिन**=वन।

अर्थ—राजा बड़ा बुद्धिमान् और चतुर है। उसने मनमें किसी फलकी इच्छा नहीं की॥ १॥ जो धर्म वह (मन-कर्म-वचनसे) करता था उनको वह ज्ञानी राजा मन, कर्म और वचनसे वासुदेवभगवान्को अर्पण कर देता था॥ २॥ एक बार (की बात है कि) शिकारका सब साज सजाकर राजा उत्तम श्रेष्ठ घोड़ेपर सवार होकर विंध्याचलके घने गहरे वनमें गया और वहाँ उसने बहुत-से पवित्र मृग मारे॥ ३-४॥

टिप्पणी—१ *'हृदय न कछु फल अनुसंधाना ·····'* इति। (क) *'परम सुजाना'* का भाव कि राजा कर्मकी गतिको जानते हैं कि कर्मके फलकी इच्छा करनेसे कर्म-बन्धन होता है, इसीसे निष्काम कर्म करते हैं। विवेकी हैं अर्थात् असत् कर्म नहीं करते, समीचीन कर्म करते हैं, यथा—*'अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मन राता'* ॥ *'परम'* देहलीदीपक है। [विवेकी था, अतः समझता था कि मेरा कर्ममें ही अधिकार है, फलमें नहीं यथा—'**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**' (वि० त्रि०)]

नोट—१ रा० प्र० का मत है कि राजाको ज्ञानी कहनेमें भाव यह है कि ज्ञानमें विघ्न होता है। राजाको आगे विघ्न होगा; उसे राक्षस होना पड़ेगा। मा० म० कार लिखते हैं कि 'भानुप्रताप और मनुकी उपासना एक ही (परतम रामचन्द्र) की थी; परंतु उसने जो कर्म किये उनको भगवदर्पण कर दिया, जिसका फल परमधाम जानेपर प्राप्त होगा और मनुमहाराजने अपने शुभ-कर्मका फल लोकहीमें ले लिया कि परमात्मा स्वयं पुत्र हो प्रकट हुए।'

टिप्पणी—२ *'करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित·····'* इति। (क) *'नृप ज्ञानी'* का भाव कि ज्ञानी है, इससे जानता है कि बिना भगवान्को अर्पण किये कर्म व्यर्थ हो जाता है, यथा—*'हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।·····श्रम फल······।'* (३। २१) (ख) ☞राजामें कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों कहते हैं। *'करै जे धरम'* इससे कर्म *'बासुदेव अर्पित'* से उपासना और *'ज्ञानी'* से ज्ञान कहा। [*'करम मन बानी'* दीपदेहली है। राजा सब धर्म मन-कर्म-वचनसे करता है। अर्थात् जितने मन-कर्म-वचनके पाप हैं उनको त्यागकर सब धर्मका प्रतिपालन करता है।] (ग) *'बासुदेव अर्पित'* से राजाकी वासुदेवमें प्रीति कही। भगवान्में प्रेम कहकर राजाके कर्म और ज्ञानकी शोभा कही। बिना भगवत्-प्रेमके कर्म और ज्ञानकी शोभा नहीं है, यथा—*'सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥ जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ न राम प्रेम परधानू॥', 'सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू।'* (घ) ☞यहाँ दिखाया कि धर्म भी मन-कर्म-वचन होते हैं जैसे पाप तीनों प्रकारके कहे गये हैं, यथा—*'जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥'* (२। ६७) (ङ) *'करै जे धरम'* से जनाया कि सभी धर्मोंको भगवान्को अर्पण कर देता है—(गीतामें कहा भी है—'**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥**' (२। ४७) अतः भगवदर्पण करना उचित ही है।) यदि एक भी कर्म, बिना समर्पित

किया रह जाय तो भवबन्धन होता है। [इसीसे भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि सब कर्म सङ्ग और फलको छोड़कर करने चाहिये, यथा—'**एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥**' (१८। ६) *'न कछु फल अनुसंधाना'* और *'बासुदेव अर्पित'* कहकर जनाया कि वह सभी कर्म-धर्म निष्काम-भावसे भगवान्‌के अर्पणहेतु ही करता था।]

टिप्पणी—३ (क) *'चढ़ि बर बाजि बार एक राजा'* इति। *'एक बार'* का भाव कि शिकार खेलने तो अनेकों बार गये क्योंकि राजा हैं, पर अनेक बारके मृगयाके कथनका कोई प्रयोजन नहीं है। जिस बारके मृगयाके कथनका प्रयोजन है (जिससे इस कथाका, श्रीरामजन्म-हेतुका सम्बन्ध है) उस बारका प्रसङ्ग कहते हैं। (ख) *'बर बाजि'* पर एक बार चढ़कर मृगयाको गये, इस कथनसे यह सूचित किया कि कभी रथमें, कभी हाथीपर भी चढ़कर शिकारको जाया करते थे, पर इस बार घोड़ेपर चढ़कर गये। इससे यह जनाया कि राजा, सुरथकी तरह एकाकी वनमें गये, यथा—'**एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्**'। हाथीपर महावत रहता है और रथपर सारथी साथ रहता है, घोड़ेकी सवारीपर कोई साथ नहीं रहता। (ग) *'बर बाजि'* का भाव कि ऐसा श्रेष्ठ घोड़ा है कि उसकी दौड़में कोई शिकार निबह नहीं सकता तथा वह राजाके मनके अनुकूल चलता, काम करता है। (घ)*'मृगया कर सब साजि समाजा'* अर्थात् अनेक प्रकारके हथियार लिये, खड्ग, तलवार, कृपाण, बर्छा, बल्लम, धनुष-बाण, पाश आदि। पुनः *'सब साज'* से यह भी जनाया कि घोड़ा और वस्त्र सब हरे रङ्गके हैं। जिससे वृक्षोंके रङ्गमें छिप सकें* । (ङ)*'बिंध्याचल गँभीर बन गयऊ'* इति। गम्भीर वनमें गया कहकर जनाया कि और जो शिकार खेलनेयोग्य वन थे जहाँ पूर्व जाया करते थे वे गम्भीर न थे, इसीसे उन वनोंमें बहुत मृग नहीं थे, इसमें, गम्भीर होनेके कारण, बहुत मृग थे। (यह भी सम्भव है कि और वनोंमें पूर्व बहुत बार गये थे, इससे वहाँ शिकार बहुत न मिल सकते थे, इससे दैवयोगसे इस वनमें गये।) (च)*'मृग पुनीत बहु मारत भएऊ'। 'पुनीत'* मृग वह हैं जिनके वधकी आज्ञा शास्त्रने दी है। यथा—*'पावन मृग मारहिं जिय जानी'।'* (२०५ । २) देखिये। मृगयाका सब साज-सजकर गये और गहरे सघन वनमें गये जहाँ बहुत मृग थे, इसीसे बहुत मृग मारे, घने वनमें शिकारके पशु बहुत रहते ही हैं।

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥५॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोधबस उगिलत नाहीं॥६॥
कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीबर अधिकाई॥७॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ॥८॥

दोहा—नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु॥१५६॥

शब्दार्थ—**बराह**=सूकर, सुअर। **दुरेउ**=छिपा। **ग्रसि**=भक्षण करके, इस प्रकार पकड़कर कि छूट न सके, निगलकर। **बिधु**=चन्द्रमा। **उगिलत**=उगलता, मुँहसे बाहर निकाल फेंकता। **दसन** (दशन)=दाँत। **पीबर**=मोटा, स्थूल यथा—'**पीनस्तु स्थूलपीवर इत्यमरः**'। खूब माँस और चर्बीसे लदा हुआ। **कोल**=सुअर। **घुरघुरात**=घुरघुराता था, सुअरके गलेसे घुरघुर ऐसा शब्द निकलता है। **हय**=घोड़ा। **आरौ**=आरव=शब्द, आहट। **महीधर**=पर्वत। **सिखर**=चोटी, कंगूरा। **चपरि**=चपलतासे, शीघ्र, फुर्तीसे, एकबारगी, जोरसे। यथा—*'तहाँ दसरथके समर्थ नाथ*

* राजा रजोगुणी, तमोगुणी और सत्त्वगुणी तीनों कर्म करता है। दिग्विजय, प्रजापालन और अर्थ कामादिका सेवन रजोगुणी कर्म है। गुरु-सुर-पितृ-महिदेव-सेवा इत्यादि सत्त्वगुणी कर्म है। और 'चढ़ि बर बाजि ······मृगया करई' यह तमोगुणी कर्म है। तमोगुणी कर्म करनेसे विघ्न हुआ जैसा आगे कहते हैं। (शिकारी कुत्ते, बाज पक्षी आदि जो कुछ वस्तु मृगयोपयोगी थे वे सब साज' हैं। वि० त्रि०)

तुलसीको चपरि चढ़ायो चाप चन्द्रमा ललामको', 'राम चहत सिव चापहि चपरि चढ़ावन', 'जीवनते जागी आगि चपरि चौगुनी लागि तुलसी बिलोकि मेघ चले मुँह मोरिकै।' *सुटुकि*=कोड़ा मारकर, चाबुक लगाकर, इशारा (टिकटिक करके) देकर, टिटकार कर। '**निबाह**'=अन्ततक एक-सा पूरा पड़ना, गुजारा छुटकारा, बचावका रास्ता या ढङ्ग, पार पाना, निकलना, बचना।

अर्थ—राजाने एक सुअर वनमें फिरते हुए देखा। (वह ऐसा देख पड़ता था) मानो चन्द्रमाको ग्रसकर राहु वनमें आ छिपा है॥ ५॥ चन्द्रमा बड़ा है, मुँहमें नहीं अमाता, मानो क्रोधवश वह उसे उगलता भी नहीं॥ ६॥ यह शोभा सुअरके भयङ्कर दाढ़ोंकी कही गयी है, उसका शरीर बहुत लम्बा-चौड़ा था और मोटाई बहुत थी॥ ७॥ घोड़ेकी (टापकी) आहट पाकर सुअर घुरघुराता और कान उठाये चौकन्ना हो देख रहा है॥ ८॥ नीलगिरिके शिखरके समान बड़ा भारी सूकर देख राजा घोड़ेको चाबुक लगाकर फुर्तीसे हाँक चला अर्थात् सरपट छोड़ा जिसमें सुअरका निर्वाह न हो।*

टिप्पणी—१ (क) *'फिरत बिपिन नृप दीख बराहू'* इति। ☞कालकेतु राक्षस वराहका रूप धरकर राजाको छलना चाहता है, यथा—*'कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा॥'* इसीसे वह वनमें फिरता है कि जिसमें राजा हमें देखें तब हम भागकर इन्हें (पीछा कराते हुए) कपटी मुनिके पास ले जायँ। [सुअर फिर रहा है, यह उसका कपट है। वह अपने कार्यसाधनहेतु फिरता है कि जिसमें राजा हमें देखकर पीछा करें। जैसे मारीच कपट-मृग बनकर श्रीसीताजीके सामने फिरता था।] ☞कालकेतु वराह बनकर मृगोंमें मिला, अवध्य मृग न बना; क्योंकि अवध्य मृग बननेसे राजा पीछा न करते और हिंसक होनेसे वराहका शिकार राजा लोग करते ही हैं। अवश्य वराहरूप देखकर पीछा करेंगे, अतः वराह बना। (ख)*'जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू'* इति। इन्द्रके वज्रसे अथवा भगवान्‌के चक्रसे डरकर मानो राहु वनमें जा छिपा है। जैसे हनुमान्‌जीने जब सूर्यको ग्रास कर लिया था तब इन्द्रने वज्र उनपर चलाया था। चन्द्रग्रहणकी उपमा देकर सूचित किया कि राजाके नाश करनेवाला विघ्न प्राप्त हुआ। जैसे चन्द्रमाको राहु ग्रसता है वैसे ही राजा भानुप्रतापको खल ग्रसेंगे। जैसे राहु चन्द्रमाको ग्रसकर वनमें छिपा है वैसे ही राजाको ग्रसनेवाले दुष्ट वनमें छिपे हैं।

नोट—१ यहाँ सुअर उपमेय, राहु उपमान, दोनों काले हैं। डाढ़ें (दाँत) उपमेय, चन्द्रमा उपमान, दोनों श्वेत चमकदार, दोनों गोलाकार। कालापन और गोलाकार दाढ़ोंका मुँहके भीतरसे बाहरतक निकले और चमकते दिखायी पड़ना उत्प्रेक्षाके विषय हैं। राहु और चन्द्रमा दोनों आकाशहीपर रहते हैं, राहुका चन्द्रमाको मुँहमें पकड़कर वनमें छिपना यह उत्प्रेक्षाका आधार असम्भव है, सिद्ध नहीं होता; अतएव यह 'असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा' है।

नोट—२ 'क्रोधवश'—क्षीरसमुद्रसे अमृत निकलनेपर जब भगवान् उसे देवताओंमें बाँटने लगे तब राहु भी देवसमाजमें आ बैठा था। चन्द्रमाने इशारेसे इसका छल भगवान्‌को बताया था। उस वैरके कारण क्रोध रहता है। भगवान्‌ने चक्रसे राहुके दो टुकड़े कर दिये; उसमें एक केतु कहलाता है और एक राहु।

नोट ३—श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि वराहको राहुकी उपमा देनेका भाव यह है कि जैसे यह (कालकेतु) राक्षस राहुसम चन्द्रमाको ग्रसे है वैसे ही कपटमुनिरूप केतु 'भानु प्रताप' को ग्रसेगा। (भाव यह जान पड़ता है कि राहु और केतुका सम्बन्ध है। कालकेतुको राहु कहा है तो उसका साथी केतु हुआ। परंतु

---

* कोई-कोई टीकाकार सुअरकी आहट पाकर घोड़ा घुरघुराता है और कान उठाये……', वा 'घुरघुरानेका शब्द सुन घोड़ा कान उठाये चकित देखता है।' ऐसा अर्थ करते हैं। बैजनाथजी लिखते हैं कि राजा वृक्षोंकी आड़में हैं इससे सूकर चकित देखता है। वीरकविजी एवं विनायकी-टीकाकार 'हाँकि न होइ निबाह' का अर्थ ऐसा भी करते हैं कि 'राजाने सूअरको ललकारा कि अब बच न सकेगा।' और श्रीशुकदेवलालजी 'यद्यपि जानेका निबाह भी नहीं होनेका' ऐसा अर्थ करते हैं। पं० रामकुमारजी 'चपरि चलेउ हय सुटुकि' का अर्थ घोड़ेको टिटकार देकर हाँकके दबाकर चला' ऐसा करते हैं। वि० त्रि०, जी अर्थ करते हैं—'क्योंकि हाँकनेसे निर्वाह नहीं होता था।'

केतुका सूर्यको ग्रसना हमने कभी नहीं सुना। और केतु जिसका उदय उत्पातकारक होता है वह राहुवाला केतु नहीं है।)

टिप्पणी—२ (क) *'बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं'* इति। *'बड़ बिधु'* का भाव कि ग्रहण पूर्णचन्द्रका होता है, पूर्णिमाका चन्द्र पूर्ण और बड़ा होता है। *'नहिं समात'* कहनेका भाव कि शूकरके दाँत मुखसे अधिक हैं अर्थात् बाहर निकले हुए हैं। मुखमें जब नहीं समाता तो उगल देना चाहिये पर वह उगलता नहीं, इसका कारण बताते हैं कि क्रोधवश है। चन्द्रमापर राहुका बड़ा क्रोध है। (ख) *'कोल कराल दसन छबि गाई……'*। इति। ☞ यहाँ सूर्यग्रहणकी उत्प्रेक्षा नहीं की क्योंकि सूर्यकी उपमा दाँतकी नहीं (दी जाती) है, चन्द्रमाकी ही उपमा दाँतोंकी (दी जाती) है, यथा—*'हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥'* (१९८। ७), *'अधर अरुन रद सुदंर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥'* (१४७। २)। अर्थात् हाससे दाँतोंका प्रकाश चन्द्रकिरणको लज्जित करता है। इसीसे चन्द्रग्रासकी उत्प्रेक्षा दाँतोंकी छबि कहनेके लिये की गयी। चन्द्रमामें छबि है। राहुका स्वरूप भारी है, इसीसे सूकरके तनको भारी कहा, राहु काला सूकर भी काला। (ग) *'चकित बिलोकत कान उठाए'* इति। यह शूकरजातिका स्वभाव है। जब घोड़ा दौड़ा तब आहट मिली अर्थात् टाप सुन पड़ी, तब घुरघुराने लगा जिसमें शब्द सुनकर पास आवें और कान उठाकर शब्द सुनता है कि किस दिशासे आते हैं। *'चकित बिलोकत'* कि कहीं धोखेसे निकट न आ जायँ और मार लें।

टिप्पणी—३ (क) *'नील महीधर सिखर सम……'* इति। नीलपर्वतके समान बड़ा नहीं बना किंतु शिखरके समान बना जिसमें राजाको भ्रम न होने पावे कि इतना बड़ा सूकर तो होता नहीं यह कोई राक्षस है जिसने कपट-छलका वेष धारण किया है। ऐसा सन्देह होनेसे पीछा न करता। (ख) ☞ *'फिरत बिपिन नृप दीख बराहू'* पर प्रसङ्ग छोड़ा था, बीचमें वराहका स्वरूप उत्प्रेक्षाद्वारा कहने लगे, अब फिर वहींसे प्रसङ्ग उठाते हैं—*'देखि बिसाल बराह'*। पूर्व वराहका देखना कहा था, अब देखकर मारनेको दौड़ा यह कहते हैं। (ग) *'नील महीधर'* कहकर जनाया कि नीले शूकरका रूप धरा था। पुनः, नील पर्वत समान कहकर उसके देहकी सुन्दरता कही, यथा—*'गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी। नील सयल इक सुंदर भूरी॥'* (७। ५६) इसी नीलगिरिके शिखरके समान कहा। (घ) ☞ *'चपरि चलेउ………हाँकि न होइ निबाह'* इससे पाया गया कि राजाने वराहको तलवारसे मारनेकी इच्छा की, इसीसे निकट पहुँचनेके लिये उन्होंने घोड़ा दौड़ाया, नहीं तो जहाँसे देखा था वहाँसे निशाना लगाकर बाण मारते।

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुतगति भाजी॥ १॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गएउ बिलोकत बाना॥ २॥
तकि तकि तीर महीस* चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥ ३॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग† भागा। रिसबस भूप चलेउ सँग‡ लागा॥ ४॥

शब्दार्थ—**बाजी** (बाजि)=घोड़ा। **संधाना**=चढ़ाया, लगाया। निशाना किया। चलाया। रव (फा० रौ)=रफतार, चाल। यह फारसी शब्द है। वेग। **दुरत**=छिपता। **भाजी**=भागकर।

अर्थ—घोड़ेको अधिक तेज रफतारसे आते देख वराह वायुकी चालसे भाग चला अर्थात् हवा हो गया॥ १॥ राजाने तुरत बाणको धनुषपर चढ़ाकर चलाया, बाणको देखते ही वह पृथ्वीमें दबक गया॥ २॥ राजाने ताक-ताककर तीर चलाये। सुअर छल करके शरीरको बचाता रहा॥ ३॥ कभी छिपता, कभी प्रकट हो जाता, इस प्रकार वह पशु भागता जाता था और राजा रिसके मारे उसके पीछे लगा चला जाता था॥ ४॥

पाठान्तर—* महीप। †मग। ‡संग १६६१।

टिप्पणी—१ (क) *'आवत देखि'।* भाव कि शूकर यही राह देख रहा था कि राजा मेरी ओर आवे तब मैं कपटीमुनिके आश्रमकी ओर भागूँ। (ख) *'अधिक रव बाजी'* अर्थात् घोड़ेको भारी वेगसे आता हुआ देखा। इससे जनाया कि और घोड़ोंसे इसका वेग अधिक है। (ग) *'मरुतगति भाजी'* से जनाया कि घोड़ेके वेगसे (चलनेसे) शूकरका निर्वाह न हो सकेगा, इसीसे वह शूकरकी गतिसे न भागा, पवनकी गतिसे भागा। (नोट—पवनके वेगसे चलना, हवा हो जाना, ये मुहावरे हैं अर्थात् बहुत शीघ्रतासे चलना।) अथवा, *'अधिक रव'* का अर्थ दूसरे चरणमें खोला कि घोड़ा पवनके वेगसे दौड़ा; इसीसे सूकर भी पवनकी गतिसे भागा। इससे जनाया कि घोड़ा पवनवेगी है। (घ) दोहेमें जो *'चपरि चलेउ'* कहा था उसका अर्थ यहाँ खोला कि *'अधिक रव'* से चला।

टिप्पणी २—(क) *'तुरत कीन्ह नृप सर संधाना।'* भाव कि जब तलवारकी पहुँच न रह गयी तब बाण चलाया। *'तुरत'* बाण चलाया यह जानकर कि अब यह बाणकी पहुँचसे भी बाहर निकला जाता है। ☞यहाँ दिखाया कि राजा अश्वारोहण और धनुर्विद्यामें बड़ा निपुण है कि दौड़ते हुए घोड़ेपर बैठा हुआ बाण चलाता है, (घोड़ेकी बागडोर छोड़े हुए हैं। दोनों हाथ धनुषबाणमें फँसे हुए हैं। घोड़ेकी सवारीपर शिकार प्रायः भाला, बर्छा, तलवारसे किया जाता है जिसमें एक हाथसे घोड़ेको सँभाले रहते हैं। बाण चलानेमें दोनों हाथोंका काम पड़ता है।) (ख) *'महि मिलि गएउ बिलोकत बाना',* इससे बाणकी करालता कही, यथा—*'देखेसि आवत पबिसम बाना। तुरत भएउ खल अन्तरधाना॥'* (१। ६। ७५) पुनः, भाव कि नीलगिरिशिखरसमान वराह है इस प्रमाणसे राजाने बाण मारे। वह पृथ्वीमें मिल गया अर्थात् रजसमान हो गया, बाण ऊपरसे निकल गया। (यह मुहावरा है। जमीनसे मिल गया अर्थात् दबककर जमीनसे जा मिला।) (ग) *'तकि तकि तीर महीस चलावा।'* भाव कि जब प्रथम बाण न लगा, ऊपरसे निकल गया, तब राजा बड़ी सावधानतासे ताक-ताककर बाण चलाने लगा। पुनः, *'तकि तकि'* से जनाया कि बहुत तीर चलाये, सब वार खाली हो जाते हैं। (घ) *'करि छल सुअर सरीर बचावा।'* क्या छल करता है यह आगे लिखते हैं। *'प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा'* यह छल है; यथा—*'प्रकटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गएउ लै दूरी॥'* (३। २७) (ङ) *'सरीर बचावा'* से सूचित किया कि बाण लग पाता तो शरीर न बचता, प्राण निकल जाते। ☞संधाननेका अर्थ चलाना है, यह *'तकि तकि तीर महीस चलावा'* से स्पष्ट कर दिया। [बैजनाथजी लिखते हैं कि ये बाण बाणविद्याके अभिमन्त्रित बाण नहीं हैं। शिकारमें पशु समझ सीधे बाण चलाये, नहीं तो वह बच न सकता। कामनामें हानिसे क्रोध और उससे मोह होता है। इसीसे पीछा किये जाता है।]

टिप्पणी ३— (क) *'प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा।'* इति। भाव कि बहुत दूर निकल जाता है, तब फिर प्रकट हो जाता है जिसमें राजा निराश होकर चला न जाय और जब राजा निकट आ जाते हैं तब छिप जाता है जिसमें राजा मार न लें। पुनः भाव कि जब बाण आते देखता है तब छिप जाता है, जब बाण व्यर्थ हो जाता है तब फिर प्रकट हो जाता है। *'जाइ मृग भागा'* से जनाते हैं कि राजाके आगेसे कभी कोई मृग बचता न था पर यह मृग बच-बच जाता है, भागा जाता है। (ख) *'रिस बस'*—जब शिकारीको शिकार मारते नहीं मिलता तब उसे स्वभावतः क्रोध आ जाता है। पीछा करनेका कारण क्रोध है। यदि क्रोध न होता तो इतना पीछा न करते। राजा खिसियाये हुए हैं। *'रिस बस'* का भाव कि मृगके पीछे सैकड़ों कोस दौड़े जाना बुद्धिमानी वा समझका काम नहीं है। क्रोधमें समझ (बुद्धि) नहीं रह जाती। उसने विचारसे काम न लिया। अनेक मृग मारे, एक न सही, यह समझ न आयी। (सभी वार मेरे खाली गये, अतः इसमें कुछ रहस्य है, यह शूकर-वेषमें कोई और है।)—[कामन्दकीय नीतिसारमें लिखा है कि राजाओंको मृगया खेलना, पासा खेलना और मद्य-पान करना निन्दित है; क्योंकि इन्हींके कारण पाण्डवों, नल और यदुवंशियोंकी विपत्ति देखी जाती है। यथा—'**मृगयाऽक्षास्तथा पानं गर्हितानि** महीभुजाम्। **दृष्टास्तेभ्यस्तु विपदः पाण्डुनैषधवृष्णिषु**॥'—(वि० टी०)।]

गएउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू ॥ ५ ॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजै नरेसू ॥ ६ ॥
कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहा गँभीरा ॥ ७ ॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई ॥ ८ ॥

दो०—खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भएउ अचेत ॥ १५७ ॥

शब्दार्थ—**घन**=घना। गहन=वन। **नाहिन**=नहीं। **बिपुल**=बहुत। **मग**=मार्ग, लीक, पीछा। **पैठ**=घुस गया, प्रवेश किया। **खेद**=ग्लानि, चित्तकी शिथिलता, थकावट, दुःख। **खिन्न**=दीन, अप्रसन्न, उदास, चिंतित। **तृषित**=प्यासा। **अचेत**=बेसुध, असावधान, मूर्छित, होश-हवास ठिकाने नहीं। **छुद्धित**=क्षुधित=भूखा।

अर्थ—सुअर बहुत दूर घने जङ्गलमें जा पहुँचा, जहाँ हाथी-घोड़ेका गम-गुजर नहीं॥ ५ ॥ यद्यपि राजा बिलकुल अकेला है और मनमें बहुत क्लेश है तो भी वह शिकारका पीछा नहीं छोड़ता॥ ६ ॥ राजाको बड़ा धीर देख सुअर भागकर पर्वतकी एक बड़ी गहरी गुफामें जा बैठा॥ ७ ॥ उसमें अपना गम-गुजर न देख राजा बहुत पछताता हुआ लौटा तो उस घोर भारी वनमें मार्ग भूल गया॥ ८ ॥ खेदखिन्न और घोड़ेसहित भूख-प्याससे व्याकुल राजा (घोड़ेको लिये हुए) नदी तालाब खोजते-फिरते हैं, जलके बिना होश-हवास ठिकाने नहीं रह गये॥ १५७ ॥

पं० राजबहादुर लमगोड़ाजी—यह शिकार-प्रकरण आजकलके शिकार-वर्णनोंसे मिलाइये और कविकी चित्रणकलापर दाद दीजिये। फिल्मकलाकी दृष्टिकोणसे राजा, घोड़े और सुअरकी प्रगतियाँ कितनी सुन्दर हैं।

टिप्पणी—१ (क) *'गएउ दूरि घन गहन बराहू।'* इति॥ इससे दिखाते हैं कि भानुप्रतापके भयसे कपटी मुनि कैसे घोर सघन वनमें भी कितनी दूरीपर रहता था। दूरीका प्रमाण आगे लिखते हैं—***'कह मुनि तात भयो अधिँयारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा॥'*** विन्ध्यवनसे बराह यहाँतक ले आया। विन्ध्याचलसे इतनी दूर राजाका नगर रहा होगा। (ख) ***'जहँ नाहिंन गज बाजि निबाहू।'*** तात्पर्य कि यहाँतक हाथी-घोड़ेका निर्वाह था अतएव यहाँतक राजाने अनेक मृग मारे और यहाँतक वराहको खेदते आये, अब आगे गुजर नहीं। (ग) ***'अति अकेल बन बिपुल'*** इति भाव कि ऐसे घोर वनमें बहुत आदमियोंको साथ लेकर प्रवेश करना चाहिये सो राजा अकेला है, एक भी आदमी सङ्गमें नहीं है।* ***'बिपुल कलेसू'***—बहुत क्लेश यह कि कहीं घोड़ा फँस जाता है, कहीं काँटेदार वृक्षोंसे देह छिल जाती है। (घ) ***'तदपि न मृग मग तजै नरेसू'*** शूकरका मार्ग (पीछा) राजा नहीं छोड़ता, इससे पाया गया कि राजा बाणविद्यामें बड़ा निपुण है, बाणसे (कंटकी वृक्षोंको) काट-काटकर मार्ग करता जाता है, नहीं तो सघन वनमें घोड़ा कैसे दौड़ता? ऊपर कह आये हैं कि ***'जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू'*** तब निश्चय है कि राजा मार्ग बनाते जाते हैं जिससे घोड़ेका निर्वाह होता जाता है। मगका अर्थ मार्ग है, आशयसे उसका अर्थ 'पीछा' है, यथा—***'किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा॥'*** अर्थात् रावण हठ करके सबके पीछे लगा यानी पीछे पड़ा, किसीका पिण्ड नहीं छोड़ता। पन्थ और मग एक ही है। [***'न तजै'*** का कारण ***'नरेस'*** शब्द देकर जना दिया। भाव कि यह राजा है, राजहठ प्रसिद्ध है, वह हठवश पीछा नहीं छोड़ता। (पंजाबीजी)]

टिप्पणी—२ (क) ***'कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा'*** इति। तात्पर्य कि कालकेतु (सूकर) को यह विश्वास था कि महावनमें प्रवेश करते ही जहाँ घोड़ेका निर्वाह नहीं है राजा हमारा पीछा छोड़ देगा

---

* यदि 'मृगया कर सब साजि समाजा' के 'समाज' से यह अर्थ लें कि राजाके सङ्गमें और लोग भी आये थे तब 'अति अकेल' का भाव होगा कि वे सब विन्ध्यके वनसे छूट गये, केवल कुछ गज-बाजिके सवार सङ्गमें आये, सो वे भी महावनमें छूट गये, जहाँ हाथी घोड़ेका निर्वाह न था।

पर उसको धोखा हुआ, राजाने पीछा न छोड़ा। (ख) *'भागि पैठ गिरिगुहा गँभीरा।'*—यहींतक राजाको ले आनेका प्रयोजन था। यह गम्भीर गुफा कपटी मुनिके आश्रमके पास है। पुनः गहरी गुफामें डरकर जा बैठा, यह समझकर कि वैसे राजा पीछा न छोड़ेगा, अवश्य मारेगा, मेरे प्राण ले लेगा, और यह गुफा अत्यन्त अगम है। इसके भीतर नहीं आ सकेगा, यथा—*'अगम देखि नृप अति पछिताई।'* पर मुख्य बात यही थी कि आगे भागने और राजाको ले जानेका प्रयोजन ही न था। (ग) *'अगम देखि नृप अति पछिताई'* इति। अगम्य देखकर उसमें प्रवेश न कर सकते थे, अतएव शिकार हाथसे निकल जानेके कारण पश्चात्ताप हुआ। (पछताना यह कि सब परिश्रम व्यर्थ हुआ, शिकार भी न मिला और अब प्राणोंके लाले पड़े हैं, इत्यादि।) (घ) *'फिरेउ महाबन परेउ भुलाई'* इति। लौट पड़े, उसी रास्ते। तब भूले कैसे? इससे जनाया कि प्यासके कारण रास्ता छोड़कर इधर-उधर जलाशय ढूँढ़ने लगे। मार्गपर कोई जलाशय रहा होता तो न मार्ग छोड़ते न रास्ता भूलते। मार्गपर कोई जलाशय न था, इसीसे खोजने लगे जैसा दोहेसे स्पष्ट है। राजाने बुद्धिसे जलका अनुमान किया होगा, कोई जल-पक्षी पास देख पड़े होंगे, जैसे श्रीहनुमान्‌जीने अनुमान किया था, यथा *'चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं॥'* (४। २४) अथवा जलसे भीगे कोई जीव देख पड़े होंगे उससे अनुमान हुआ कि निकट ही कहीं जलाशय है। इस तरह कपटी मुनिके आश्रममें पहुँचे। आश्रमके पास जल है ही। पुनः भुलानेका कारण व्याकुलता है। जल बिना एवं भूख-प्याससे राजा और घोड़ा दोनों व्याकुल हैं इसीसे भूल गये, यथा *'लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलै न जल घन गहन भुलाने॥'* (४। २४) पुनः साधारण वन होता तो न भूलता, यह महावन है, अतः भूल गया।

टिप्पणी—३ (क) *'खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत.........'* इति। भूख-प्यास दोनों लगी हैं। (ख) *'जल बिनु भएउ अचेत'* का भाव कि भूखसे अचेत नहीं हुए, प्यासके कारण अचेत हो गये। दिनभर जल पीनेका अवकाश न मिला, परिश्रम भारी पड़ा, इसीसे प्यास अधिक लगी हुई है। (मनुष्य भूख सह भी सकता है पर प्यास बिना जानपर आ बनती है।) (ग) *'खोजत सरित सर'।* भाव कि राजाको नदी या तालाबसे ही जल मिल सकता था, बावली और कूप एक तो वनमें मिलना असम्भव, दूसरे कूएँसे जल निकालते कैसे? घोड़ेको जल कैसे पिलाते? अतएव बापी-कूपका खोजना न कहा।

नोट—राजाका चित्त शिकार हाथसे निकल जानेके कारण उदास है। उसपर फिर वनके दुःख काँटे, झाड़, भूख, प्यास और संध्याका समय। घोड़ा भी शिथिल है, शिकारी जानवरोंको भी शिकार निकल जानेसे दुःख होता है। भूख-प्यास भी दोनों ही लगी है। घोड़ेकी व्याकुलतासे सवार भी बेकार हो जाता है।

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस* नृपति कपट मुनि बेषा॥ १॥
जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई†। समर सेन तजि गएउ पराई॥ २॥
समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥ ३॥
गएउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥ ४॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसै तापस के साजा॥ ५॥

शब्दार्थ—**कपट**=नकली, बनावटी। **आश्रम**=साधुका स्थान। **समय**=दिन, एकबाल, भाग्योदय, प्रतापकी प्रबलता, बढ़तीके दिन। **असमय**=अदिन, अभाग्यके दिन, बुरे दिन। **साज**=सजाव, वेष।

---

* जहँ बस नृपति जती के बेषा—(रा० व० श०)।

† छोड़ाई—(रामायणीजी)

अर्थ—वनमें फिरते-फिरते एक आश्रम देख पड़ा। वहाँ कपटसे मुनिका वेष बनाये हुए एक राजा रहता था॥ १॥ जिसका देश राजा भानुप्रतापने छीन लिया था (क्योंकि) लड़ाईमें सेना छोड़कर वह भाग गया था॥ २॥ भानुप्रतापका समय और अपना अत्यन्त असमय समझकर॥ ३॥ उसके मनको-बहुत ग्लानि हुई इससे घर न लौटा और न वह अभिमानी राजा भानुप्रतापहीसे मिला (मेल-मिलाप, संधि ही की)॥ ४॥ वह राजा दरिद्रकी तरह मनमें क्रोधको मारकर तपस्वीके वेषमें वनमें रहने लगा॥ ५॥

नोट—१ *'तहँ बस नृपति कपट मुनि बेषा'* कहकर फिर उसके कपट मुनिवेषसे वनमें बसनेके कारण, *'जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई'* से लेकर *'बिपिन बसै तापस के साजा'* तक कहे। भानुप्रतापके भयसे ७० योजनपर, फिर अति गँभीर वनमें और उसपर भी रूप बदले हुए रहता है—इसीसे *'कपट'* शब्दका प्रयोग हुआ।

पं० राजबहादुर लमगोड़ा—सामाजिक, मनोवैज्ञानिक उपन्यास-कलाके दृष्टिकोणसे यह प्रसंग विचारणीय है।

टिप्पणी—१ (क) *'फिरत बिपिन'*=जलाशय खोजते फिरतेमें। *'आश्रम एक देखा'* इससे सूचित हुआ कि आश्रमके आगे दूसरी तरफ जल है। यदि जल इधर ही होता तो पहिले जल मिलता, पीछे आश्रम। मुनियोंके स्थानको आश्रम कहते हैं। राजा मुनि बना है इसीसे उसके स्थानको आश्रम कहा। (ख) *'तहँ बस नृपति कपट मुनि बेषा'* इति। *'कपट मुनि'* का भाव कि छल करनेके लिये मुनि बना है, वस्तुत: राजा है, यथा—*'राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥'* (६। ५६) (ग) *'जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई'* का भाव कि राज्य छीन लिया था, प्राण भी ले लेता; इसीसे भागकर प्राण बचाया। (घ) *'समर सेन तजि गएउ पराई'* से सूचित किया कि पहिले यह संग्राम करनेको उद्यत हुआ, सेना लेकर लड़ने चला, रही भानुप्रतापकी सेना और उसका बल यह जब उसने देखा कि बहुत भारी है तब धैर्य जाता रहा और सबको वहीं छोड़कर भाग गया। (ङ) ☞यहाँ प्रथम देशका छुड़ाना कहते हैं, पीछे समरमें सेना लेकर आना और भागना। इस क्रममें तात्पर्य यह है कि जब भानुप्रताप देश छुड़ाने लगा तब राजा अपना देश बचानेके लिये लड़नेको तैयार हुआ पर शत्रुको बहुत प्रबल देखकर लड़ा नहीं, भाग गया।* [पंजाबीजी कहते हैं कि कपटी मुनिका नाम *'समरसेन'* था।]

टिप्पणी—२ (क) *'समय प्रतापभानु कर जानी'* इति। क्षत्रियके लिये रणसे भागना बड़ी लज्जा और दोषकी बात है; इसीपर कहते हैं कि समय भानुप्रतापके अनुकूल है, उनका भाग्य उनका प्रताप उदयपर है, इत्यादि। समयके अनुकूल बरतना नीति है। नीतिकी आज्ञा है कि समयपर राजा किसी भी प्रकारसे अपने प्राण बचा सकता है। देवतालोगतक शत्रुको प्रबल देखकर भाग जाते रहे हैं, यथा—*'देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥'* (१७९। ४) (ख) *'आपन अति असमय अनुमानी'* इति। प्रथम भानुप्रतापका समय (अच्छे दिन) हुआ तब अन्य सब राजाओंका *'असमय'* हुआ; इसीसे भानुप्रतापने सबको जीता और जीतकर देश छीन लिये। राजाने भानुप्रतापका समय देखा, अर्थात् देखा कि यह तो सातों द्वीप जीत लेगा, सर्वत्र इसका राज्य हो ही जायगा, अतएव यह तो राजा ही बना रहेगा, रहे हम तो राजासे रंक हो गये, इससे जान पड़ता है कि हमारा *'अति असमय'* है, हमारे सितारे, हमारे नक्षत्र, हमारे दिन बहुत बुरे हैं। (ग) *'गएउ न गृह मन बहुत गलानी·······'* इति।—भाव कि राजा बहुत अभिमानी है, इसीसे उसने भानुप्रतापसे मेल न किया, उनसे मिला भी नहीं। क्षत्रिय होकर रणसे भाग आया इस बातकी ग्लानि मनमें बहुत मान रहा है, इसीसे घर भी न गया कि किसीको क्या मुँह जाकर दिखाऊँ। ☞यह सोचकर कि यह भी राजा हम भी राजा, जैसे यह क्षत्रिय वैसे हम क्षत्रिय, हम इससे क्यों मिलें, क्यों इसके सामने सिर झुकावें, मिला नहीं। जो राजा भानुप्रतापके वशमें हो गये और जो मिले उन्हें उसने छोड़ दिया। यह न मिला इससे इसका देश भी छीन लिया गया और ग्लानिके कारण यह घरवालोंसे भी न मिला। घर-बार

*नीति भी है कि उपद्रव, अकाल, अपनेसे बलवान् शत्रुके चढ़ आनेपर दुष्टसंग पड़ने इत्यादि अवस्थाओंमें जो भाग जाता है वह जीवित रहता है। यथा चाणक्य—'उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे। असाधुजनसंपर्के पलायति स जीवति॥' (वि० टी०)

भी छूटा, अतएव वनमें जाकर बसा कि वहाँ खोजनेको न आवेगा।

नोट—२ *'मिला न राजहिं नृप अभिमानी'* इति। राजनीतिके चार अङ्ग हैं—साम, दाम, भय, भेद। अपनेको कमजोर देख सन्धि (मेल) कर ली जाती है। इस राजाने मेल न किया, क्योंकि यह अभिमानी है।

टिप्पणी—३ *'रिस उर मारि रंक जिमि राजा।'''''* इति (क) राज्य छुड़ा लिया, राज्यसुख छूट गया, यही *'रिस'* है, जैसा आगे *'समुझि राजसुख दुखित अराती। अँवा अनल इव सुलगै छाती॥'* से स्पष्ट है। (ख) *'रिस उर मारि।'* भाव कि 'रिसके मारे लोग सब काम बिगाड़ देते हैं, जूझ जाते हैं, यथा—*'आवा परम क्रोध कर मारा। गरज घोर रव बारहि बारा॥'*, *'सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि करि चरन नारि समुझावा॥'* इत्यादि, यह बात समझकर राजाने अपने क्रोधको मारा (दबाया), संग्राममें जाकर जूझा नहीं। (ग) *'रंक जिमि'*—भाव कि जैसे रंक (कंगाल, दरिद्र, भिक्षुकको कोई गाली दे तो उस) से कुछ करते तो बन नहीं सकता (उसका कुछ बस नहीं चलता, वह कुछ कर नहीं सकता। वह बेचारा करे क्या लाचारीसे) मन-ही-मनमें क्रोधको मार रखता है (बस चलता तो खा ही लेता), वैसे ही भानुप्रतापने जब राजाको रंक बना दिया तो वह भी मनमें क्रोध दबाये रखे हैं। (क्रोध करे भी तो कर ही क्या सकता है? अपनी ही हानि है रहे-सहे प्राणोंसे भी हाथ धोना पड़े। निर्बल क्रोध करे तो मारा जाय।) (घ) *'बिपिन बसै तापस के साजा।'* भाव कि जब प्रतिष्ठित लोगोंके मानकी हानि होती है तब वे या तो मर जाते हैं या कहीं दूर चले जाते हैं। यथा—**'सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरशरणम्'**, यह दूर चला आया। वनमें और वह भी तपस्वीके वेषमें रहता है जिसमें कोई सहसा पहिचान न सके, न ढूँढ़ सके। घने वनमें कौन आवेगा। भानुप्रताप भारी वैरी है, वह पता पावे तो खोजकर वध करे जैसे युधिष्ठिरने दुर्योधनका पता लगाकर उसका वध कराया, यथा—*'भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥'* (२। २२९) *'रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिय न छोट करि।'* (३। २१)

तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा॥६॥
राउ तृषित नहि सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥७॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥८॥
दोहा—भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरु दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ॥१५८॥

अर्थ—राजा उसके पास गया तब उसने पहचान लिया कि यह भानुप्रताप है॥६॥ राजा प्याससे व्याकुल है (इस कारण उन्होंने) उसे न पहिचाना*। सुन्दर (मुनि) वेष देख उसे महामुनि समझे॥७॥ घोड़ेसे उतरकर (राजाने) प्रणाम किया। (परन्तु) बड़ा चतुर है, अपना नाम न बतलाया॥८॥ राजाको प्यासा देख उसने सरोवर दिखा दिया। राजाने घोड़ेसहित प्रसन्नतापूर्वक स्नान और जलपान किया॥१५८॥

टिप्पणी—१ (क) *'तासु समीप'*। भाव कि जिसका देश भानुप्रतापने छीन लिया, जो राजासे रंक हो गया, जिसका घर-बार सब छूट गया है, जो अभिमानी है, क्रोधको भीतर भरे हुए दिन-रात क्रोधाग्निमें जलता रहता है और तपस्वी-वेषमें छिपकर कालकी प्रतीक्षा करता हुआ वनमें बैठा है, उसके पास (*'तासु'* का सम्बन्ध ऊपरकी *'जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई'* इत्यादि सब चौपाइयोंसे है)। (ख) *'गवन नृप कीन्हा'* का भाव कि ऐसेके पास भानुप्रताप गये, अतएव इनकी अब भलाई नहीं है, यथा—*'तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गए कल्यान न होई॥'* (१। ६२। ६) (ग) *'यह प्रतापरबि तेहि तब चीन्हा'* इति। *'तब'* अर्थात् जब राजा कपटी मुनिके समीप गये तब। राजाने कपटी मुनिको दूरसे ही देख लिया था। देखकर समीप चले आये कि दर्शन करें और जलाशय पूछें कि कहाँ है, कम-से-कम उनके पास जल तो अवश्य

* 'नहिं सो पहिचाना' का अर्थ एक खर्रेमें यह मिला है कि 'सो अर्थात् जिससे पहचाना जाता था वह पहिचान नहीं है, मुनिवेष बनाये है', अतः न पहिचान सका।

मिल जायगा। जबतक समीप न गये थे तबतक उसने राजाको न पहिचाना था। (घ) *'राउ तृषित नहिं सो पहिचाना'*। प्याससे व्याकुल हैं, यथा—*'खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत। खोजत व्याकुल सरित सर जल बिनु भएउ अचेत॥'* (१। १५७)—*'अचेत'* है, अतः न पहिचान पाया। (ङ) *'देखि सुबेष महामुनि जाना'* इति। यथा—*'लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥'* (१। ७। ५) भाव कि यदि तृषासे व्याकुल न होते तो सुवेष देखकर भी महामुनि न जानते, पहिचान ही लेते।

टिप्पणी—२ (क) *'उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा'* इति। (देवमन्दिर, तीर्थ, संत-महात्माओं इत्यादि) गुरुजनोंको देखकर सवारीसे उतरकर, (अस्त्र-शस्त्र उतारकर, अलग रखकर) (तब उनको) प्रणाम करना चाहिये, यथा—*'उतरे राम देव सरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥'* (२। ८७) राजाने सुवेष देख महामुनि जाना, अतः घोड़ेसे उतरकर विधिवत् प्रणाम किया। (ख) *'परम चतुर न कहेउ निज नामा'* इति। नाम न प्रकट करनेसे *'परम चतुर'* कहा। यथा—*'सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप। मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव॥'* (१। १६३) ☞पुनः, *'न कहेउ निज नामा'* इस कथनका प्रयोजन यह है कि प्रणाम करनेके समय अपना और अपने पिताका नाम कहकर प्रणाम करना चाहिये, यथा—*'पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥'* (१। २६९। २) *'जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥'* (१। ५३। ७) *'कोसलेस दसरथ के जाए। नाम राम लछिमन दोउ भाई॥* (४। २) *'बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पदसरोज मेले दोउ भाई॥ रामु लषनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥'* (१। २६९) (भानुप्रतापने अपना नाम न बताया इसीसे अन्तिम चरणमें इसके कारणकी आवश्यकता हुई। मन्त्रीने इसे नीतिमें परम निपुण बना दिया था)।

टिप्पणी—३ (क) *'भूपति तृषित बिलोकि तेहि'* इति। इससे जनाया कि राजाने अपनेसे प्यासे होनेकी बात न कही। उसीने प्यासे देखकर अपनेसे ही बिना पूछे कहा कि आप प्यासे जान पड़ते हैं, जाइये उस सरमें प्यास बुझा आइये। (कैसे जाना कि प्यासे हैं? चेष्टासे। इसीसे *'बिलोकि'* पद दिया।) ☞तृषित देखकर जलाशय बताया, यह बड़ी चतुराई और बुद्धिमानीका काम है। वह कपटसे साधु बना है, इसीसे उसने अपनी दयाका परिचय दिया, आचरणसे साधु होना दिखाया। जिसमें राजा समझे कि हमें व्याकुल देखकर हमपर महात्माको बड़ी दया लग आयी। सन्त दयालु होते हैं, दूसरेका दुःख देख दया लग आती है, यथा—*'नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता॥'* (३। २) कपटी मुनि यही बात आगे स्वयं कहता है, यथा—*'चक्रबर्त्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें॥'* (ख) *'सरबर दीन्ह देखाइ'* इति। ☞साधुने सरोवर दिखा दिया। इसमें दूसरा (भीतरी कपटका) आशय यह है कि राजा कहीं पानी पीकर उधर-ही-उधर न चला जाय, इसीसे साथ चला गया। और ऊपरसे यह दिखा रहा है कि राजा जल बिना अचेत है, अकेले सरोवर ढूँढ़नेमें क्लेश होगा, इसलिये साथ गया। यह आशय आगेकी चौपाईसे स्पष्ट है—*'निज आश्रम तापस लै गएऊ'*। साथ न जाता तो *'निज आश्रम लै गएऊ'* कैसे कहते? (ग) *'मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति'* इति। मृगयामें शूकरका पीछा करनेमें बड़ा परिश्रम पड़ा, दूसरे ग्रीष्मके दिन थे, गर्मीसे भी तपे हुए थे, अतएव स्नान किया और प्याससे *'अचेत'* हो रहे थे, अतः जलपान किया। (घ) *'हरषाइ।'* जैसा जलाशय चाहिये था, वैसा ही मनके अनुकूल मिल गया, अतः हर्षपूर्वक स्नान-पान किया (और घोड़ेको कराया)।

गै श्रम सकल सुखी नृप भएऊ। निज आश्रम तापस लै गएऊ॥ १॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥ २॥
को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुंदर जुवा जीव पर हेलें॥ ३॥
चक्रबर्त्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें॥ ४॥
नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥ ५॥

शब्दार्थ—**आसन**=ऊन, मूँज, कुश आदिके बने हुए चौखँटे बिछौने जो प्रायः पूजन, भोजनके समय बैठनेके काममें आते हैं। **आसन देना**=सत्कारार्थ बैठनेको कोई वस्तु देना, बैठाना। **जुबा** (युवा)=जवानी, १६ वर्षसे ३५ वर्षतककी अवस्था। **जीव**=प्राण, जीवन। परहेलना (सं० प्रहेलन)=निरादर करना, परवा न करना, तिरस्कार करना। यथा—*'मैं पिउ प्रीति भरोसे गरब कीन्ह जिय माहिं। तेहि रिस हौं परहेली रूसेउ नागर नाह॥'* (जायसी) **अवनीश**=पृथ्वीका स्वामी, राजा।

अर्थ—सारी थकावट दूर हुई और राजा सुखी हुआ तब (वह) तपस्वी उसे अपने आश्रमपर ले गया॥ १॥ सूर्यास्त-समय जानकर बैठनेको आसन दिया। फिर तापस कोमल वचन बोला॥ २॥ तुम कौन हो? वनमें कैसे अकेले फिर रहे हो? तुम्हारी सुन्दर युवा अवस्था है। अपने जीवनका निरादर कर रहे हो अर्थात् प्राणोंकी कुछ परवा नहीं करते॥ ३॥ चक्रवर्ती राजाओंके लक्षण तुममें देखकर मुझे बड़ी दया लगती है॥ (राजाने कहा—) हे मुनीश! सुनिये। एक भानुप्रताप नामका राजा है, मैं उसका मन्त्री हूँ॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'गै श्रम सकल सुखी नृप भएऊ'* इति। स्नान करनेसे थकावट दूर होती है और सुख प्राप्त होता है, यथा *'मज्जन कीन्ह पंथश्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ॥'* (अ० ८७। ७) *'देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जन कीन्ह परम सुख पावा॥'* (३। ४१) *'करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गएउ हृदय हरषाना॥'* (७। ६३) *'अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै। मज्जनु करिअ समरश्रम छीजै॥'* (लं० ११५) (ख) *'निज आश्रम तापस लै गएऊ',* इससे पाया गया कि आश्रमसे जलाशय पृथक् कुछ दूरीपर है और यह कि तापस राजाको अपने आश्रममें ले जानेके लिये सरोवरपर ठहरा रहा कि ये स्नानादिसे निवृत्त हो लें तब साथ लेकर जायँ नहीं तो बताकर चला आता। (ग) *'आसन दीन्ह अस्त रबि जानी'।* तात्पर्य कि अब लौटनेका समय नहीं रह गया, ऐसे घोर वनमें रात्रिमें चलते न बनेगा, जैसा कि उसके आगेके *'निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान'* इन वचनोंसे स्पष्ट है। [तपस्वीको भय हुआ कि राजा चैतन्य हुआ है, कहीं मुझे पहचान न ले, इसलिये सूर्यास्तके पहले दूर-ही-दूर था। बोलातक नहीं। (वि० त्रि०) मेरी समझमें दैवयोगसे समय आदि सब उसके अनुकूल हो गये थे।] (घ) *'पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी'* इति। ☞राजा भूखे-प्यासे थे, यथा—*'खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।'* उनको सरोवर बताकर उनकी प्यास शान्त की, आश्रममें ले गया, आसन दिया, क्षुधा शान्त करनेके लिये कंद-मूल-फल दिये, घोड़ेको घास दी, इत्यादि। सब बातोंके कथनका प्रसङ्गमें कोई प्रयोजन न था, इसीसे ग्रन्थकारने नहीं लिखा। मृदु वाणी बोला क्योंकि संत मृदु वाणी बोलते हैं और खल तो कठोर ही बोलते हैं (*'बचन बज्र जेहि सदा पिआरा'*), खल मृदु वाणी जब बोलते हैं तब केवल छलनेके लिये, यथा—*'बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाहिं महा अहि हृदय कठोरा॥'* (७। ३९) तपस्वीमें दोनों बातें हैं। वह संत बना है और खल तो है ही। अतएव *'मृदु'* वचन बोला। (अपनेको संत जनाने और भीतरसे राजाके साथ छल करनेकी घातमें है। क्योंकि, उसे अपना कार्य साधना है, राजासे दाँव लेना है।)

नोट—१ *'आसन दीन्ह'* और *'पुनि तापस बोला'* से अनुमान होता है कि आसन देनेपर भी राजा तुरत बैठा नहीं, तब यह समझकर कि राजाकी तुरत चले जानेकी इच्छा है, उन्हें रोक रखनेके लिये बातें छेड़ दीं। सूर्यास्तका समय है ही, कुछ और समय बीत जाय तो फिर राजा सहज ही रुक जायगा।

नोट-२—कुछ महानुभावोंका मत है कि *'अस्त रबि'* शब्द यहाँ साभिप्राय है। तपस्वी सोचता है कि प्रतापरूपी भानु जो उदित था उसके अस्तका समय अब आ गया। ऐसा समझकर वह इस तरहकी बातें कर रहा है। (प्र० सं०)

टिप्पणी—२ (क) *'को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें।……'* इति। ☞ये बातें उस समय पूछनेकी थीं जब प्रथम भेंट हुई, पर उस समय उसने न पूछा क्योंकि राजा प्याससे व्याकुल थे। जब राजा जल-पानकर सुखी हुए तब यह प्रश्न किये। इससे कपटी मुनिकी बुद्धिमत्ता प्रकट होती है। (ख) कपटी मुनि राजाको

पहचानता है, यथा—*'यह प्रतापरबि तेहि तब चीन्हा'* और अनजान बनकर पूछता है। इसका कारण यह है कि अभी भानुप्रतापका नाम बतानेका मौका नहीं है। यदि अभी कपटी मुनि उनका नाम बता दे तो उनके मनमें सन्देह उत्पन्न हो जायगा कि यह कोई जान-पहिचानका आदमी है, छल न करे। धीरे-धीरे जब राजाकी प्रतीति और प्रीति अपनेमें हो जायगी तब अपनी सिद्धाई दिखानेके लिये भानुप्रताप और उनके पिताका नाम बतावेगा। जल्दी करनेसे काम बिगड़ जाता है; अतएव उसने क्रमसे राजाको अपने वशमें किया। (ग) *'बन फिरहु अकेलें'* और *'सुंदर जुवा जीव परहेलें'* का भाव कि तुम तो दिव्य महलोंमें रहने योग्य हो, वनमें फिरने योग्य नहीं हो। तुम्हारे हजारों सेवक, सिपाही, सेना रहना चाहिये तब आश्चर्य है कि तुम अकेले हो। यह कैसे जाना? उसका समाधान स्वयं आगे करता है कि **'चक्रबर्ति के लच्छन तोरें'**। सुन्दर शरीर है, युवावस्था है तब भी प्राणोंका अनादर करते हो, हथेलीपर प्राणोंको लिये वनमें फिरते हो। भाव कि सुन्दर जवान पुरुष ऐसा कभी नहीं करते। [पुनः भाव कि 'अभी तुम युवा हो, वानप्रस्थकी अवस्था नहीं, तब तुम अकेले महावनमें कैसे आये? क्या किसी संकटमें फँस गये हो? जिसके भयसे तापस बनकर यहाँ रहता था यह यहाँ स्वयं आ पहुँचा, अतः उसके आनेका अभिप्राय तथा उसकी परिस्थिति जाननेके लिये प्रश्न करता है। (वि० त्रि०)]

नोट—३ प्राणोंकी तुम्हें परवा नहीं? ऐसा पूछनेका कारण बताते हैं कि सामुद्रिक-शास्त्रानुसार तुम्हारे चक्रवर्ती राजाके लक्षण पाये जाते हैं। राजाका अकेले वनमें फिरना उचित नहीं, न जाने कब क्या आपत्ति आ पड़े। राजाके भलेमें सबका भला है, उसके सुखसे प्रजा सुखी रहती है। इसीसे दया लगना कहा।

टिप्पणी—३ (क) ***'चक्रबर्ति के लच्छन तोरें'*** इति। (इससे जनाया कि सामुद्रिक-शास्त्रका विशेष ज्ञाता है)। लक्षण अङ्गमें होते हैं, अङ्ग देखकर कहे जाते हैं, यथा—*'राज लछन सब अंग तुम्हारे'।* अतः यह जाना गया कि अङ्ग देखकर चक्रवर्तीके लक्षण होना कहता है। इसीसे कहा कि *'देखत दया लागि'।* (ख) *'दया लगि'* कहा। क्योंकि दया लगना संतका धर्म है, यथा—*'कोमल चित दीनन्ह पर दाया'।* 'अति दया लगी' कहनेका भाव कि हमारी दया तो सभी जीवोंपर रहती है पर तुम्हारे ऊपर अत्यन्त दया लग आयी। तात्पर्य कि तुम्हारे अङ्गोंमें चक्रवर्तीके लक्षण हैं, जिससे निश्चय है कि तुम सब जीवोंके रक्षक हो, तुम्हारे सुखसे सभी जीवोंको सुख है और तुम्हारे दुःखसे सभीको दुःख हुआ चाहे। ☞दयाका स्वरूप पूर्व दिखा आये हैं कि तृषित देखकर सरोवर बताने गया, आश्रमपर ले आया, आसन दिया, यह सब *'अति दया'* है पुनः *'अति'* का दूसरा भाव कि सामान्य क्लेशमें सामान्य दया होती है और भारी पुरुषको भारी क्लेशमे देखा। अतः *'अति दया'* हुई।

नोट—४ सामुद्रिक-शास्त्रमें चक्रवर्तीके लक्षण इस प्रकार हैं । यथा—'**केशाग्रं वृषणं जानु समं यस्य स भूपतिः। ऊरुश्च मणिबन्धश्च मुष्टिश्च नृपतेः स्थिरा॥ नाभ्यन्तःकुक्षिवक्षोभिरुन्नतैः क्षितिपो भवेत्। भ्रुवो नासापुटे नेत्रे कर्णावोष्ठौ च चूचकौ॥ कर्पूरौ मणिबन्धौ च जानुनी वृषणौ कटिः। करौ पादौ स्फिचौ यस्य समौ ज्ञेयः स भूपतिः॥**' (सामुद्रिक)।

टिप्पणी—४ *'नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव।…'* इति। (क) राजा नीतिविरुद्ध नहीं करता! नाम बताना नीतिविरुद्ध है, इसीसे नाम नहीं बताया। जैसे प्रथम प्रणाम करनेपर नाम न बताया था—*'परम चतुर न कहेउ निज नामा।'* वैसे ही अब भी न बताया। (ख) तापसने चक्रवर्तीके लक्षण कहे सो भी घटित होने चाहिये, क्योंकि महात्माका वचन मिथ्या नहीं है (जो उसने कहा सो ठीक ही है,) अतएव अपनेको राजाका मन्त्री बताया। मन्त्री राजाके समान होता है, जो लक्षण राजामें होते हैं वे मन्त्रीमें भी होते हैं। (ग) तापसने चक्रवर्तीके लक्षण कहे और इस समय भानुप्रताप चक्रवर्ती राजा है। इसीसे राजाने अपनेको भानुप्रतापका मन्त्री बताया। (नहीं तो और किसी राजाका नाम ले लेते) (घ) राजाने कपटी तापसको महामुनि जाना, यथा—*'देखि सुबेष महामुनि जाना'।* इसीसे *'सुनहु मुनीसा'* अर्थात् मुनीश सम्बोधन किया। (ङ) तापसके *'को*

तुम्ह' इस प्रश्नका उत्तर इस अर्धालीमें समाप्त हुआ। *'कस बन फिरहु अकेलें'* का उत्तर आगे देते हैं। [तापसने चक्रवर्तीके लक्षण बताये, इससे राजाने समझा कि ये कोई बड़े भारी मुनि हैं। इसीसे इन्होंने जान लिया। अतः राजाने विचारा कि इन्हें युक्तिसे उत्तर देना चाहिये कि अपना नाम भी प्रकट न हो और मुनिको सन्देह भी न हो। अतः अपनेको चक्रवर्तीका मन्त्री बताया। अपनेको छिपानेके लिये राजा अपनेको मन्त्री बताता है। अतएव यहाँ 'व्याजोक्ति' अलङ्कार है—*'कछु मिस करि कछु और बिधि कहैं दुरैकै रूप। सबै सुकबि ब्याजोक्ति तेहि भूषण कहैं अनूप॥'* अर्थात् किसी खुलती हुई बातको छिपानेकी इच्छासे कोई बहानेकी बात बिना निषेधके द्वारा कही जाय।]

फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़ें भाग देखेउँ पद आई॥ ६॥
हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥ ७॥
कह मुनि तात भयउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा॥ ८॥

दो०—निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु* सुजान।
बसहु आज अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान॥
तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलै सहाइ।
आपुनु† आवै ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥ १५९॥

शब्दार्थ—**अहेर**=शिकार। **अहेरें**=शिकारमें। वह जीव जिसका शिकार किया जाय उसे भी 'अहेर' कहते हैं। **बिहान**=सबेरा। **आपुनु**=आप ही; स्वयं। यथा *'आपुनु चलेउ गदा कर लीन्हीं॥'* (१८२।४)

अर्थ—शिकारके पीछे फिरते हुए भूल पड़ा हूँ, बड़े भाग्यसे (यहाँ) आकर (आपके) चरणोंका दर्शन पाया॥ ६॥ हमें आपका दर्शन दुर्लभ है, मैं समझता हूँ कि कुछ भला होनेवाला है॥ ७॥ मुनिने कहा—हे तात! अँधेरा हो गया, (यहाँसे) तुम्हारा नगर ७० योजनपर है॥ ८॥ हे सुजान! सुनो, रात भयङ्कर अँधेरी है, वन घना और गहरा है, उसमें रास्ता नहीं है। ऐसा जानकर तुम आज यहीं रहो, सबेरा होते ही चले जाना। तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसी भवितव्यता (हरिइच्छा, होनेवाली) होती है वैसी ही सहायता मिल जाती है। वह भावी आप ही उसके पास आ जाती है और (आकर) उसको वहीं ले जाती है (जहाँ सहाय करनेवाला है)॥ १५९॥

टिप्पणी—१ *'फिरत अहेरें परेउँ भुलाई।'''''''* इति। (क) ☞कपटी मुनिके प्रश्नका तात्पर्य यह अभिप्राय लेनेका है कि राजा यहाँ अपनी ओरसे आया है कि कालकेतुके भुलानेसे आया है। यदि कालकेतुके भुलानेसे आया है, वही इनको ले आया है तब तो सब काम बन गया, राजाको छलनेका पूर्ण योग लग गया (क्योंकि जो कुछ मैं अपनी सिद्धाई कहूँगा वह कालकेतु जो अभी आता ही होगा, अपनी मायासे सच्ची कर देगा और यदि यह अपनेसे ही भटककर आ गया है तब तो इसको रोक रखना व्यर्थ ही होगा; क्योंकि कालकेतुका कौन ठिकाना कि आवे या न आवे।) तापस पूछता है—*'कस बन फिरहु अकेलें?'* राजा उसका उत्तर देते हैं कि *'फिरत अहेरें'* किसी संकटसे विवश होकर यहाँ नहीं आया, किंतु शिकार करते-फिरते थे, वनमें भुला गये। इस उत्तरसे कपटी मुनिको निश्चय हो गया कि कालकेतु भुला लाया है, क्योंकि उसने इससे करार किया था कि मैं किसी दिन राजाको शिकारमें भुलाकर तुम्हारे पास ले आऊँगा, पीछेसे मैं भी आऊँगा, तुम सब बात कह रखना। इसीसे अब वह राजासे रातमें यहीं रुक जानेको कहता है। (ख) *'बड़े भाग देखेउँ पद आई'* यथा *'बड़े भाग पाइअ सतसंगा।'* [*'दया लागि'*

* सूझ—(छ०)। †'आपुनु' 'ताहि लिआवहि ताहि पहि'—(छ०)। ऐसा भी अर्थ होता है—'या तो वह आप ही उसके पास आती है या उसीको वहाँ ले जाती है।' विशेष टिप्पणी ५ देखिये। (प्र० सं०)

की जोड़में यहाँ '*बड़े भाग*' कहा। यहाँ 'अनुज्ञा अलङ्कार' है। वनमें भूलना दोष है, दु:ख है। उसे मुनिदर्शनसे भाग्य मान लिया।]

टिप्पणी २—'*हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा।*''''''''' ' भाव कि जिसका दर्शन खोजनेपर भी नहीं मिल सकता वह रास्ता भुला जानेसे मिल जाय तो जानना चाहिये कि भला होनेवाला है और बड़ा भाग्य है। क्योंकि बड़े ही भाग्यसे अलभ्य लाभ होता है। भूतकालमें पुण्य अच्छा रहा तो वर्तमानकालमें संतदर्शन हुआ, यथा '*पुन्यपुंज बिनु मिलहिं न संता।*' संत मिले इससे आगे होनहार अच्छा है अर्थात् भविष्य भी अच्छा हो जायगा। (पुन: भाव कि हम नगरके रहनेवाले और राजस-तामस वृत्तिके और आप वनमें सात्त्विकवृत्तिसे रहनेवाले, तब भला हमें आपका दर्शन कैसे मिल सकता?)

पं० प० प्र०—यद्यपि भानुप्रताप निष्काम और ईश्वरार्पण करके सब धर्म-कर्म करता था तो भी उसके चित्तमें ऐश्वर्य, भोग-कामना सुप्तावस्थामें थी, यह कविकुलचूड़ामणिने बड़ी गूढ़ युक्तिसे यहाँ जनाया है। वह प्रसुप्त कामना राजस-तामस-संस्कार बलिष्ठ स्थानमें प्रवेश करनेपर और उस कपटमुनिके कुसंस्कारोंके प्रभावसे जाग्रत् हो गयी।

'*फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखेउँ पद आई॥ हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा।*' यहाँतक जो राजाने कहा वह उचित ही है। पर '*जानत हौं कछु भल होनिहारा*' उसके इस वाक्यसे उसके हृदयकी गुप्त वासना कुछ अंशमें प्रकट हो रही है। अखिल विश्वका सम्राट् है। जो कुछ चाहिये सब प्राप्त है। '*अर्थ धर्म कामादि सुख सेवै समय नरेसु।*' प्रजा भी सब प्रकार सुखी है। कुछ भी दु:ख नहीं है। तब भला कौन-सा भला होनेको शेष था जिसके लिये उसने '*जानत हौं कछु भल होनिहारा*' ऐसी आशा प्रकट की। राजामें भगवद्भक्तिका न तो लवलेश है और न भगवद्भक्तिकी रुचि ही है, इसीसे तो धर्मरुचि स्वयं भक्तिप्रिय होता हुआ भी राजाको केवल राजनीति ही सिखाता रहा। रावण होनेपर भी यही देखनेमें आता है। विभीषणजीने जब केवल राजनीतिका उपदेश दिया तब उसका आदर किया है, पर जब राम-भक्तिका उपदेश देने लगा तब क्या हुआ यह सुन्दरकाण्डमें प्रकट है।

टिप्पणी—३ '*कह मुनि तात भएउ अँधियारा*''''' ' इति। (क) ☞सूर्यास्त होनेपर आसन दिया, यथा '*आसन दीन्ह अस्त रबि जानी।*' इतनी वार्ता होते-होते अँधेरा हो गया। इससे निश्चय हुआ कि कृष्णपक्षकी रात्रि थी और समस्त रात्रि अँधियारी रात थी, इसीसे आगे दोहेमें निशाको घोर कह रहा है। (अमावस्याको तान्त्रिक छलके प्रयोग भी किये जाते हैं। अतएव मुनिको प्रयोगका योग भी अच्छा मिल गया।) सूर्यास्तसे बातें करनी शुरू कीं और इतनी देरतक बातोंमें लगाये रहा कि अँधेरा हो गया, यही बातोंमें लगानेका मुख्य उद्देश्य था। (ख) ☞राजाका घोड़ा केकय देशसे विन्ध्यतक दोही पहरमें गया और लौट आया, यथा '*कानन गएउ बाजि चढ़ि तेही। पुर नर नारि न जानेउ केही॥ गए जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥*' इस हिसाबसे केकय देशसे विन्ध्यतक केवल एक पहरका रास्ता राजाके घोड़ेका निश्चित हुआ। पहरभर दिन चढ़ेतक शिकार खेला, तीन परहतक भारी दौड़ लगायी, तब कपटी मुनिके पास पहुँचे। इतना बीच (फासला) विन्ध्यसे महावनतकका है। (ग) '*तात*' कपटी मुनि राजापर छोह करके रात्रिमें टिकनेको कहता है, इसीसे छोहके प्रकरणमें वत्स, बालक वा पुत्रभावसे '*तात*' सम्बोधन करता है। (घ) '*जानत हौं कछु भल होनिहारा*' इन वचनोंसे कपटी मुनि ताड़ गया कि राजा मुझे महामुनि समझकर कुछ लाभकी आशा-पाशमें बँध रहा है, अत: अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये वह उसे रोकनेके लिये ये वचन कह रहा है।

टिप्पणी ४—'*निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान।*''''''''' ' इति। (क) ☞तापस यहाँ देश, काल और वस्तु तीनोंकी कठिनता दिखाता है। देश दूर है, ७० योजन है। निशा घोर है अर्थात् काल भयानक है। वन गम्भीर है अर्थात् वस्तु अगम है। (ख) '*बसहु आजु*' अर्थात् ऐसा जानकर आज यहाँ निवास

करो। इस कथनसे पाया जाता है कि राजा अब भी जानेको तैयार हैं, आसन अभीतक ग्रहण नहीं किया है, घोड़ा लिये खड़ा है। निशा घोर है, देख नहीं पड़ता। इसपर यदि राजा कहना चाहे कि हम घोड़ेपर सवार हैं, अँधेरेका कोई भय नहीं, उसीपर प्रथमसे ही कहता है कि *'बन गंभीर'* है, घोड़ा निबह नहीं सकता। इसपर यदि वह कहे कि घोड़ा इस रास्तेसे निकल जायगा। उसपर कहता है कि *'पंथ न।'* *'कह मुनि तात भएउ अँधियारा'* के सम्बन्धसे 'निसा' को 'घोर' कहा। *'जहँ नाहिंन गज बाजि निबाहू'* के सम्बन्धसे *'गंभीर बन'* कहा। और *'फिरत अहेरें परेउँ भुलाई'* के सम्बन्धसे *'पंथ न'* (अर्थात् भूल जानेका डर है) कहा। (ग) *'सुजान'* का भाव कि तुम जानते हो कि रात्रिमें चलना मना है। (घ) *'जाएहु होत बिहान'* इति। ठहरानेसे राजा ठहरनेको कहते हैं इसीसे कपटी मुनि कहता है कि जल्दी चले जाना, सबेरा होते ही चले जाइयो। (नोट—यह भी राजी करनेकी चाल है कि हम रोकते थोड़े ही हैं, तुम्हारे भलेको कहते हैं, सबेरा होते ही चले जाना।)

टिप्पणी ५—*'तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलै सहाइ।.........'* इति। (क) *'जसि भवतब्यता'* का भाव कि ऐसे धर्मात्मा राजाको भला ऐसा विघ्न होना चाहिये? न होना चाहिये। भावीवश ऐसा हुआ। किसी पूर्वके जन्मका भारी पाप उदय हुआ। (ख) *'मिलै सहाइ'।* भाव कि भवितव्यताका कोई रूप नहीं है, वह 'सहायक' के द्वारा काम करती है। जैसी भावी है वैसी ही *'सहाय'* मिलती है अर्थात् भवितव्यता अच्छी होती है तब अच्छी और बुरी होती है तब बुरी *'सहाय'* मिलती है। (ग) *'आपुनु आवै ताहि पैं'* अर्थात् वह भावीके वश आप ही सहायके पास आता है जैसा यहाँ हुआ। भावीवश राजा सहायके पास आया। राजाका भवितव्य है कि उसका तन, धन, राज्य सभी कुछ नष्ट हो जाय, वैसा ही उस भावीको सहाय मिल गया—कपटी मुनि। शीघ्र ही नाश कर डाला। (घ) *'ताहि तहाँ लै जाइ'* अर्थात् (या तो वैसा होता है, वैसा न हुआ तो यह होता है) भावी सहायको उसके पास ले जाती है। उत्तरार्द्ध *'आपुनु आवै......... लै जाइ'* का भाव यह है कि जिस तरह उसका काम बने वही करती है। ☞ दूसरी प्रकार इस तरह भी अर्थ हो सकता है कि 'होनहारवालेके पास भावी आप ही आती है और आकर उसको वहीं ले जाती है जहाँ सहाय करनेवाला है।' भाव कि भावी प्रथम सहाय तैयार करती है, फिर जीवके पास आती है और उसे सहायके पास ले जाती है। यह अर्थ समीचीन है। [खर्रेमें लिखा है कि 'उस प्राणीका भोग यदि वहीं हुआ तो भावी उसके पास आकर उसी जगह भोग भोगाती है और यदि उसका भोग बाहर हुआ तो उसको वहीं ले जाकर भोगाती है। **'सहाइ'**=संयोग। विनायकीटीकाकार लिखते हैं कि *'आपुनु आवै.........'* यह कथन नीति-शास्त्रके अनुसार है। जैसे—**'तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः। सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता॥'** अर्थात् वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है, वैसा ही उद्योग लग जाता है और सहायता भी वैसी ही मिल जाती है जैसी होनहार होती है।]

श्रीलमगोड़ाजी—कविकी उपस्थिति कितनी आवश्यक है? परन्तु यह विचारणीय है कि किस संक्षिप्तरूपमें वह घटनाके रहस्यपर आलोचना करके प्रकाश डालता है?

नोट—१ श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि यह सम्मत तो याज्ञवल्क्यका है पर ग्रन्थकार सबका सिद्धान्त कहते हैं, इसलिये यहाँ उन्होंने अपना नाम रख दिया है। वैसी ही सहाय मिलती है अर्थात् उसीके योग्य काम करनेवाले मिल जाते हैं। *'आपुनु आवइ।.........'* अर्थात् जिस शत्रुके हाथ बुराई होना है उसके पास वह भावीवश आप ही पहुँच जाता है, जैसे, कपटी मुनिके पास राजा पहुँच गया। अथवा, *'ताहि तहाँ......'* अर्थात् जहाँ बुराई होनेवाली है तहाँ बुराई करनेवाले शत्रुको ले जाती है, जैसे कालकेतु राक्षस सूकररूपमें भानुप्रतापके पास पहुँचा और भुलाकर वनमें ले आया। आगेके लिये भी यही सहाय मिले जो राजाके यहाँ जाकर उसका नाश करायेंगे।

वि० त्रि०—इस प्रकार अर्थ करते हैं—'राजा मृगयाको जाता है। वहाँ कालकेतु सूकर बनकर (भवितव्यताका सहाय होकर) आता है और राजाको ले जाकर कपटी मुनितक पहुँचा देता है, जहाँ राजा स्वयं कपटी मुनिका शिकार हो जाता है।'

श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि यहाँ भवितव्यता प्रारब्ध नहीं है, केवल प्रभुकी इच्छा है, क्योंकि राजा 'प्रतापी' नामक सखा है जो प्रभुकी आज्ञासे राजा हुआ।

नोट—२ *'आपु न आवइ·········'* पाठ अशुद्ध है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि लोग घरमें बैठे-बैठे मर जाते हैं, कहीं साँपने डस लिया, कहीं छत गिर पड़ी उससे दबकर मर गये, यही भाव ***'आपुनु आवइ'*** का है। यह सम्मत लाला भगवानदीनजीका भी है। इसमें 'विकल्प अलङ्कार' है।

भलेहि नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा॥ १॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि* निज भाग्य सराही॥ २॥
पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करौं ढिठाई॥ ३॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥ ४॥

अर्थ—'बहुत अच्छा, स्वामी!' राजा (ऐसा कहकर) आज्ञाको सिरपर धरकर घोड़ेको पेड़में बाँधकर आ बैठा॥ १॥ राजाने उसकी बहुत प्रकारसे प्रशंसा की और चरणोंको प्रणाम करके अपने भाग्यको सराहा॥ २॥ फिर सुन्दर कोमल वचन बोले—हे प्रभो! पिता जानकर मैं ढिठाई करता हूँ॥ ३॥ हे मुनीश्वर! हे नाथ! मुझे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम बखानकर कहिये॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) ***'भलेहि नाथ'।*** भाव कि आपने बहुत अच्छा कहा, ऐसी घोर रात्रिमें चलना अच्छा नहीं है। (ख) ***'आयसु धरि सीसा।'*** भाव कि महात्माकी आज्ञा बड़ी प्रसन्नतासे मानी। बड़ोंकी आज्ञा माननेमें ऐसा ही कहा जाता है, यथा—***'सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥'*** (ग) ***'बैठ महीसा'*** से सूचित किया कि अभीतक राजा (घोड़ेकी बागडोर थामे) खड़े-खड़े बातें करता रहा था। चलनेपर उद्यत था, अब घोड़ा बाँधकर बैठा। (घ) ***'नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही'।*** हमारे बड़े पुण्य हैं, बड़ा भाग्य है कि आपके चरणोंका दर्शन हुआ इत्यादि। जैसे पूर्व कहा था कि ***'फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखेउँ पद आई॥'*** पुनः, तापसने राजाको प्याससे व्याकुल देख सरोवर बताया, आश्रमपर ले आया, घोर रात्रिमें वनमें न जाने दिया तथा यह देखकर कि यह ऐसे घोर वनमें बसे हैं, राजाने इस कपटीको पूर्ण सन्त समझा, अतएव सन्त समझकर सन्तलक्षण कह-कहकर प्रशंसा की। ***'बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥ सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥ कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥ सबहि मानप्रद आपु अमानी।'*** (७। ३८) इत्यादि सन्तलक्षण एक-एक करके उनमें कहने लगे, यही बहुत भाँतिकी प्रशंसा है। (पूर्व जो कहा था कि ***'बड़े भाग देखेउँ पद आई'*** उसीके सम्बन्धसे यहाँ चरणोंको प्रणाम कर भाग्यकी सराहना करना कहा।)

टिप्पणी २—***'पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई।·········'*** इति। (क) कपटमुनिकी वाणीको मृदु कहा था, यथा—***'पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी'।*** उसकी वाणीको *'सुहाई'* विशेषण न दिया था क्योंकि वह छलयुक्त है। राजाकी वाणीको *'मृदु'* और *'सुहाई'* दोनों विशेषण देकर जनाया कि इनकी वाणी कोमल और निश्छल है। (ख) ***'जानि पिता'*** पिता जाननेका भाव कि पिता शरीरकी रक्षा करता है—**'पातीति पिता।'** आपने जल देकर शरीरकी रक्षा की, प्राण बचाये और शरीरकी रक्षाके लिये ही रात्रिको वनमें न जाने दिया। (कपटीने राजाको *'तात'* अर्थात् वत्स, पुत्र कहा था, यथा—***'कह मुनि तात भएउ अँधियारा।'*** *'तात'* शब्द प्यारमें पुत्र, पिता, भ्राता सभीके लिये प्रयुक्त होता है। मुनिके सम्बन्धसे यहाँ *'तात'* से 'पुत्र' का ही

---

* बंद्य— १६६१।

अर्थ लिया जा सकता है। उसी सम्बन्धसे राजाने *'जानि पिता'* कहा)। (ग) *'करौं ढिठाई'।* भाव कि महात्माओंसे धृष्टता न करनी चाहिये (मैं जो धृष्टता करता हूँ वह पिता जानकर, आपका वात्सल्य अपने ऊपर देखकर करता हूँ। माता-पितासे बालक ढीठ होता ही है, यथा—*'हौं माचल लै छाड़िहौं जेहि लागि अर्‌यो हौं', 'मेरे माय बाप दोउ आखर हौं सिसु अरनि अर्‌यो।'* (विनय०) (घ) *'मोहि मुनीस सुत सेवक जानी'* अर्थात् मैं आपको अपना पिता जानता-मानता हूँ—*'जानि पिता.......'*, आप मुझे अपना आज्ञाकारी पुत्र जानिये। नाम पूछनेके लिये पुत्र और सेवक बने क्योंकि महात्माओंको अपना नाम बतानेमें संकोच होता है—'**आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च। श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥**'; इसीसे प्रार्थना करके पूछते हैं। वहाँ कोई और है नहीं, यदि होता तो उससे पूछ लेते, अतएव मुनिसे ही पूछते हैं। (ङ) *'नाथ नाम निज कहहु बखानी।'* सेवकका धर्म है कि अपने स्वामीका नाम जाने और पुत्रको पिताका नाम जानना चाहिये, अतः नाम पूछनेकी आवश्यकता हुई।

नोट—बैजनाथजी लिखते हैं कि *'बखानी'* का भाव यह है कि जाति, गुण, क्रिया, यदृच्छा आदिके जो नाम हों सो कहिये। राजा जन्म-संस्कार आदि सब हाल जानना चाहता है।

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥५॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा॥६॥
समुझि राजसुख दुखित अराती। अवा अनल इव सुलगै छाती॥७॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदय हरषाना॥८॥

दोहा—कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि* अब निर्धन रहित निकेत॥१६०॥

शब्दार्थ—सुहृद=निश्छल, शुद्ध हृदयवाला। **अराती** (अराति)। **रातना**=अनुरक्त होना, मन लगाना। यथा—*जिन्हकर मन इन्ह सन नहिं राता,* **अराती**= न अनुरक्त होनेवाला=शत्रु। **सुलगै**=जलती है; भभकती है। **सरल**=सीधे-सादे, कपट-छल-रहित; स्वाभाविक; भोले-भाले।

अर्थ—राजाने उसको न पहचाना, उसने राजाको पहचान लिया। राजाका हृदय निश्छल है और वह कपटमें प्रवीण है॥५॥ एक तो वह शत्रु, फिर जातिका क्षत्रिय, उसपर भी राजा; (अतः) वह छल-बलसे अपना काम निकालना चाहता है॥६॥ वह शत्रु राज्य-सुखको सोचकर दुःखी है, उसकी छाती कुम्हारके आवाँ (भट्ठी) की आगकी तरह (भीतर-ही-भीतर) सुलग रही है॥७॥ राजाके सीधे-सादे वचन कानोंसे सुनकर अपने वैरका स्मरण करके वह हृदयमें हर्षित हुआ॥८॥ कपटरूपी जलमें डुबाकर वह युक्ति-समेत कोमल वाणी बोला कि अब तो हमारा नाम भिखारी है और हम धन-धामरहित हैं (वा, भिखारी निर्धन, रहित-निकेत हैं)॥१६०॥

नोट—१ सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपन्यासकालका लुत्फ देखिये। (लमगोड़ाजी)

टिप्पणी—१ (क) *'तेहि न जान नृप'।* पूर्व कपटी मुनिको न पहचाननेका कारण यह बतलाया था कि राजा भूख-प्याससे व्याकुल था, यथा—*'राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥'* (१।१५८।७)। राजा स्नान-जलपान कर अब सचेत हुए और अब समीप ही बैठे हैं, अतः अब तो पहचानना चाहिये था पर राजाने न पहचाना। इसीसे उसका दूसरा कारण लिखते हैं, वह यह कि भूप सुहृद् है। (ख) *'भूप सुहृद सो कपट सयाना'* अर्थात् राजाका हृदय सुन्दर है, निष्कपट है और मुनि कपटमें चतुर है; इसीसे न पहचाना, यथा—*'सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानै*

---

* १६६१ में 'भिखारी' पाठ है।

तीय सुभाऊ।' (२। १६२) [यह (सरलता, सुशीलता और धर्मपरायणता) ही सुहृदताके लक्षण हैं।] पुनः, यथा—'*नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान। सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान।*' (२। २२७) जो सुहृद् होते हैं वे दूसरोंको भी वैसा ही समझते हैं। ['*कपट सयाना*' से स्पष्ट कर दिया कि पूर्व जितनी बातें उसने कीं, वह सब कपटमय थीं, स्वार्थसाधनार्थ थीं।] (ग) '*बैरी पुनि छत्री पुनि राजा*' इति। तात्पर्य कि ये सब एक-से-एक कठिन होते हैं, ये तीनों छल-बलसे अपना काम निकालनेकी सदा इच्छा रखते हैं। [पुनः भाव कि इनमेंसे एक भी होना छल-बलसे काम करनेके लिये पर्याप्त था पर यहाँ तो तीनों गुण एकहीमें मौजूद हैं।] विशेष आगे नोट २ में देखिये।

(घ) '*छल बल कीन्ह चहै निज काजा*' इति। कपटी मुनिने ठीक ऐसा ही किया। प्रथम छल किया कि कालकेतु सुअर बनकर छलकर राजाको यहाँ ले आया और इसने ऊपरसे दया, कोमलता दिखाकर राजाको धोखेमें डालकर उनके नाशका उपाय रचना प्रारम्भ किया, पीछे बलका प्रयोग किया। यथा—'*तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए।*' स्वयं भी संग्राम किया और राजाको मारा। पुनः भाव कि तापस राजा है, इससे उसने छल किया। राजाके लिये छल करनेकी आज्ञा नीतिमें लिखी है। क्षत्रिय है इसीसे बल किया और बैरी है इसीसे अपना '*काज*' किया अर्थात् राजाको मारकर राज्य लिया। पुनः '*छल बल*' तीनोंमें लगा सकते हैं, तीनों ही छल-बल करते हैं। (ङ) '*कीन्ह चहै निज काजा*' का भाव कि राजाने तो उसे पिता बनाया, आप सुत, सेवक बना तब तो '*तापस*' को ऐसा छल न करना चाहिये था, इसीपर कहते हैं कि वैरी, क्षत्रिय और राजा इन तीनोंका हृदय कठोर होता है, यथा—'**नवनीतं हृदयं ब्राह्मणस्य वाचि क्षुरो निशितस्तीक्ष्णधारः। तदुभयमेतद्विपरीतं क्षत्रियस्य वाङ् नवनीतं हृदयं तीक्ष्णधारम्।**' (महाभा० १। ३। १२३) अर्थात् ब्राह्मणका हृदय मक्खनके समान कोमल होता है और वाणी छुरेकी तीक्ष्ण धार है। क्षत्रियका इसके विपरीत होता है। क्षत्रियकी वाणी मक्खन-समान और हृदय तीक्ष्णधारवाला अर्थात् वज्र-समान कठोर होता है। ये (बाप, बेटा, भाई, स्वामी, सेवक) कुछ भी नाता नहीं मानते, सदा अपना काम छल-बलसे निकालते हैं, यह उनका सहज स्वभाव है।

नोट—२ प्रथम कहा कि 'कपटमें सयाना' है अर्थात् कपट भी ऐसा करता है कि कोई भाँप न सके, जानना तो दूर रहा। फिर '*सयाना*' होनेका कारण बताया—'*बैरी पुनि छत्री पुनि राजा।*' इससे तीनों सयाने एकत्र हो गये हैं। यहाँ 'द्वितीय समुच्चय' अलङ्कार है। वैरी सदा शत्रुकी घातमें रहता है, यथा—'*रिपु रिन रंच न राखब काऊ।*' (२। २२९) '*रिपु पर कृपा परम कदराई॥*' (अर० १९) क्षत्रिय क्रोधी और बलवान् होते हैं, बदला लेनेसे नहीं चूकते, यथा—'*तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्रिजाति कर रोष।*' (लं० २३) राजा सहज अभिमानी और स्वार्थ-परायण होते हैं जैसे बने अपना काम निकालना चाहते हैं, दूसरेकी बढ़ती नहीं देख सकते, समय पाकर उपकार भी भुलाकर अपकार करते हैं, दो राजा एक देशमें नहीं रह सकते जैसे दो तलवार एक मियानमें नहीं रह सकतीं। ये तीनों छल-बलसे काम लेते हैं पुनः, ३—'*बैरी पुनि*'...... इस अर्द्धालीके एक चरणमें '*छल, बल* और *निज काजा*' इन तीनको कहकर जनाया कि वैरी छल, क्षत्रिय बल और राजा अपने कामसे काम रखते हैं, जैसे बने। (पांडेजी)

टिप्पणी—२ (क) '*समुझि राजसुख दुखित अराती।*......' इति। आवेंकी अग्नि भीतर-ही-भीतर सुलगती रहती है, प्रकट नहीं होती, वैसे ही कपटी मुनिको रह-रहकर राज्यसुख याद आता है, इससे उसकी छाती दुःखसे भीतर-ही-भीतर जलती है। वह अपना दुःख प्रकट नहीं करता ['*अवाँ अनल इव सुलगै छाती*'—(५८। ४) '*तपै अवाँ इव उर अधिकाई।*' में देखिये।] '*समुझि राज सुख*' अर्थात् इसी दुःखसे शत्रुता माने हुए हैं; इसीसे '*अराती*' कहा। (ख) '*सरल बचन नृपके सुनि काना*' इति। सरल-(सीधे-सादे मनुष्य-)से ही कपट चलता है, चतुरसे नहीं चलता, इसीसे '*सरल*' जानकर हर्षित हुआ कि अब यह हमसे बचकर नहीं जा सकता। (ग) '*बयर सँभारि हृदय हरषाना।*' वैर सँभालकर अर्थात् वैरका स्मरण

करके, यह हमारा वैरी है यह याद करके सुखी हुआ। [मिलान कीजिये दोहावलीके *'सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपु नाउ। बूड़त लखि पग डगत लखि चपरि चहूँ दिसि आउ॥'* (५२०) इस दोहेसे। इसमें शत्रुका सयानापन दरसाया है।] (घ) *'हृदय हरषाना।'* भाव कि अपने दुःखको भीतर-ही-भीतर आवेंकी अग्निकी भाँति छिपाये था, अब हर्ष है सो भी प्रकट नहीं करता। तात्पर्य कि दुःख-सुख दोनों छिपाये हुए है क्योंकि राजापर खुल जाय तो बड़ी हानि हो जायगी। (ङ) ☞जो ऊपर कहा था कि *'बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा॥'* उसे यहाँ चरितार्थ करते हैं—वैरी है, अतः राजसुख समझकर दुःखित है, हृदय जलता रहता है। इसीसे *'अराती'* कहा। क्षत्रिय है, वैर स्मरणकर सुखी हुआ। छत्रिय पिछला वैर 'सँभारते' हैं और राजा है, इसीसे कपटयुक्त वाणी बोला। राजाको कपट करना उचित है, यथा—*'कीन्हेउ कपट लाग भल मोहीं।'*

वि० त्रि०—*'सुनि काना।'*......' इति। कानसे सुननेका भाव कि उसे हृदयमें स्थान नहीं दिया। यह देखकर कि राजा बड़ा सरल मालूम पड़ता है, इसके सरल वचनोंमें चित्त न पिघले, अतः वैरको सँभाला कि इसीने मेरा सर्वस्व हरणकर मुझे वनचारी बना रखा है।

टिप्पणी—३ *'कपट बोरि बानी मृदुल'*......' इति। (क) अपना नाम नहीं बताता यही कपट है, यथा—*'कीन्हेउ कपट'*......' ☞नाम न बतानेकी बात प्रसङ्गभरमें है। इसीसे *'कपट बोरि'* कहा अर्थात् जो कुछ मृदु वचन आगे कह रहा है वह सब कपटके हैं। राजाने कपटी मुनिको पिता बनाया, आप पुत्र और सेवक बना, तब वह राजाकी प्रीति-प्रतीतिकी परीक्षा करने लगा कि देखें राजा सत्य ही सेवक बनता है या ऊपरसे ही ऐसा कहता है। (ख) *'बोलेउ जुगुति समेत'* इति। अपना नाम नहीं बताता, इस प्रकार अपनी उदासीनता दिखाता है कि हमको किसीसे पहचान करनेका प्रयोजन क्या? यह उसके आगेके *'मैं न जनावउँ काहु'* इन वचनोंसे स्पष्ट है। यही युक्ति है कि यदि राजाको प्रीति-प्रतीति होगी तो फिर प्रार्थना करेगा। राजाने घबड़ाकर ऐसा ही किया। इससे प्रीति और विश्वासकी परीक्षा हो गयी। यथा—*'सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी।'* (१६१। ६) परीक्षा करके तब आगे छल करता है। (ग) *'नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत'* यह दीनता अपनी दिखाकर अपना महात्मापन झलका रहा है। जिसमें राजा समझें कि ऐसे बड़े होकर भी महात्मा बड़े ही निरभिमानी हैं। (घ) *'अब'* का भाव कि आगे बहुत कुछ था अब भिखारी, निर्धन और अनिकेत हैं। हमारा अवतार निर्धनके यहाँ नहीं हुआ [व्यंग्य यह है कि हम बड़े ऐश्वर्यमान् थे, राजा थे, हमारे भी महल आदि थे, जो सब तुमने छीन लिया। (बै०)] ☞भानुप्रताप भी उसके अङ्गमें देख रहा है कि सब राजलक्षण हैं (अतः उसका परिचय पूछनेके लिये उत्सुक हुआ ही चाहे। दोहेमें जो कहा है कि *'बोलेउ जुगुति समेत'* वह युक्ति *'अब'* शब्दमें है। श्रीपंजाबीजी लिखते हैं कि *'अब'* में युक्ति और अभिप्राय यह है कि इसे आगे चलकर कहना है कि हम ब्रह्माके पुत्र हैं, अनेक तपस्या की है, पूर्वकल्पमें अनेक शक्तियाँ रची हैं, इत्यादि-इत्यादि और अब तो हम सब त्याग बैठे।

कह नृप जे बिग्याननिधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥ १॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ*। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ॥ २॥
तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि केरें॥ ३॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥ ४॥
जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥ ५॥

* 'सदा अपनपौ रहहिं दुराये' (व्यासजी;) 'सदा रहहिं अपनपौ दुराये.........' (श्रावणकुंज) 'रहहिं अपनपौ सदा०' (ना० प्र०)।

शब्दार्थ—**गलित**=गला हुआ, जीर्णशीर्ण, नष्ट-भ्रष्ट। **सरीखे**=सदृश, समान। **गलित अभिमान**=जिनका अभिमान नष्ट हो गया, निरभिमानी। **अपनपौ**=आत्मगौरव, मान, मर्यादा, ममता, अभिमान, अपने रूपको। **अकिंचन**=निर्धन, दरिद्र, दीन, परिग्रहत्यागी। **किंचन**=थोड़ी वस्तु। **अकिंचन**=जिनके पास थोड़ी भी वस्तु न हो, जिसे कुछ भी चाह नहीं, जिनके भगवान् ही एक धन हैं, जिनकी किसीमें अहं-मम बुद्धि नहीं है। **अधन**=धनरहित, निर्धन। **अगेह**=गेह (घर) रहित। **सम**=समान, सरीखे। **जोसि सोसि** (**योऽसि सोऽसि**=**यः असि सः असि**=जो हो सो हो, जो भी हों।

अर्थ—राजाने कहा कि जो आप-सरीखे विज्ञानके खजाना और निरभिमानी होते हैं॥ १॥ वे सदा अपने गौरवको, अपने स्वरूपको छिपाये रहते हैं। (क्योंकि) बुरा वेष बनाये रहनेमें सब प्रकार कुशल* मानते हैं॥ २॥ इसीसे सन्त और वेद पुकारकर कहते हैं कि परम अकिंचन ही भगवान्‌के प्यारे हैं॥ ३॥ आप-सरीखे निर्धन, भिखारी और गृहहीनोंसे ब्रह्मा-शिवको भी सन्देह होता है†॥ ४॥ आप जो हैं सो हैं (अर्थात् जो कोई भी हों सोई सही) मैं आपके चरणोंको नमस्कार करता हूँ! हे स्वामी! अब आप मुझपर कृपा कीजिये॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) ***'तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना'*** इति। ***'तुम्ह सारिखे'*** कहकर जनाते हैं कि जितने विज्ञाननिधान निरभिमानी सन्त हैं उन सबोंमें आप प्रधान हैं। (ख) ***'जे बिज्ञाननिधाना गलित अभिमाना'*** का भाव कि विज्ञाननिधान होनेसे अभिमान नष्ट हो जाता है। ज्ञानसे देहाभिमान छूट जाता है, यथा—***'बहु प्रकार तेहि ज्ञान सुनावा। देह जनित अभिमान छुड़ावा।'*** (४। २८) ***'ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं।'*** (३। १५) दूसरा भाव यह भी हो सकता है कि 'अपने विज्ञानका अभिमान जिनको नहीं है।' (ग) ***'सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ।'*** इति। राजा जानते हैं कि 'भिखारी, निर्धन, अनिकेत' ये नाम नहीं हैं, मुनि (छिपाव) करते हैं, इसीसे वे कहते हैं कि विज्ञानी निरभिमानी अपनेको छिपाये रहते हैं। (घ) ***'सब बिधि कुसल कुबेष बनाए'*** इति। बहुत लोगोंके संघट्टसे भजनमें विक्षेप होता है, लोकमान्यता तपका नाश करती है, यथा—***'लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु।'***, राग-द्वेष बढ़ता है—यही 'सब विधि' है। गुप्त रहनेसे सब विधिसे बचत है (नहीं तो कोई लड़का माँगता है, कोई धन, कोई नौकरी इत्यादि। प्रायः आजकल लोग इसीलिये सन्तके पास जाते हैं)। तात्पर्य कि अपनपौ छिपानेके लिये कुवेष बनाये रहते हैं। (ङ) ***'तेहिं तें', 'परम अकिंचन प्रिय हरि केरें'*** के साथ है। इसी कारण अर्थात् गुप्त रहने और निरभिमानी होनेसे (परम प्रिय हैं)। अकिञ्चन गुप्त रहते हैं और निरभिमानी होते हैं। ☞कपटी मुनिने अपनेको भिखारी कहा; उसीके उत्तरमें राजाने उसे ***'विज्ञाननिधान गलित अभिमाना'*** कहा। तापसने अपनेको 'निर्धन, रहित निकेत' कहा; उसके उत्तरमें राजा उसको ***'अकिंचन परम प्रिय हरि केरें'*** कहते हैं। अर्थात् आप भगवान्‌को परमप्रिय होनेके लिये (सर्वस्व त्यागकर) भिखारी, निर्धन और अनिकेत बने हैं।

टिप्पणी २—***'तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि·······'*** इति। (क) भाव कि ऐसे निष्किञ्चन ब्रह्मलोक, शिवलोक ले लेनेको समर्थ हैं। ब्रह्मा और शिवको सन्देह हो जाता है कि हमारा लोक न ले लें। अथवा शिव-विरंचि सन्देहमें पड़ जाते हैं कि हम इन्हें क्या दें। (ख) शिव-विरंचिको सन्देह होना कहा क्योंकि ये तपके फलदाता हैं। (ग) ☞ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिदेव हैं। यहाँ तीनोंको कहा है। जब अकिञ्चन और निरभिमानी हुए तब हरिके परमप्रिय हुए (क्योंकि कुवेष और अकिञ्चनता इत्यादि जितनी भी बातें हैं वे सब भगवान्‌को प्रिय लगनेके लिये हैं। हरिके परमप्रिय होनेसे ब्रह्मा और शिवको सन्देह हुआ कि भगवान्‌से हमारा लोक न माँग लें अथवा, यह सन्देह होता है कि हम तो तपका ही फल दे सकते हैं, हरिके परमप्रिय होनेका फल क्या दें? इनको देनेयोग्य कोई वस्तु हमारे पास नहीं है। [आप

* दूसरा अर्थ—'सब प्रकारसे निपुण होनेपर भी वे कुवेष बनाये रहते हैं कि जिसमें कोई न जाने।' (पंजाबीजी)

† पंजाबीजी यह अर्थ करते हैं······· 'मुझे शिव-ब्रह्माका सन्देह होता है कि आप वे ही तो नहीं हैं।'

ऐसे अधन, भिखारी और गृहहीन ही ब्रह्म, रुद्रपद पाते हैं। अतः आप ऐसे महापुरुषोंसे उन्हें सन्देह होता है। ये ज्ञानी देवता हैं, अतः इन्हें त्रास नहीं होता, सन्देहमात्र होता है। इन्द्र भोगी है, अतः उसे त्रास हो जाता है। यथा—*'सुनासीर मन महँ अति त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥'* (वि० त्रि०)]

नोट—विनायकीटीकाकार लिखते हैं कि 'इसका गुप्त अर्थ यह भी हो सकता है कि ब्रह्मा और शिव-सरीखे साधुओंको ऐसे साधुओंके विषयमें सन्देह होता है कि वे झूठे हैं। ऐसे सांकेतिक भावके शब्द अनायास ही सत्यता अथवा भविष्यसूचक ईश्वरकी प्रेरणासे निकल पड़ते हैं।' वीरकविजी लिखते हैं कि 'यहाँ ब्रह्मा और शिवजीके सन्देहद्वारा लक्षणामूलक गूढ़ व्यंग्य है कि जो दूसरोंको धनेश बना देनेवाले, दाताओंके शिरोमणि और वैकुण्ठधाम देनेवाले हैं; वे स्वयं सदा निर्धन, अगेह तथा मँगतोंके वेषमें रहते हैं। मानसाङ्कमें 'सन्देह हो जाता है कि ये वास्तविक सन्त हैं या भिखारी' यह भाव कहा है।

टिप्पणी—३ (क) *'जोसि सोसि।'* जब कपटी मुनिने नाम न बताया तब राजाने महात्मा जानकर हठ न किया, यही कहा कि जो भी हों सो हों हमारा नमस्कार है। कथनका तात्पर्य कि हमें तो आपके चरणोंसे प्रयोजन है। (ख) *'मो पर कृपा करिअ अब स्वामी।'* राजाकी प्रार्थना थी कि मुझे सुत, सेवक जानकर नाम कहिये, पर कपटीने नाम न बताया। इससे जाना गया कि मुनिने सुत, सेवक न माना। अतएव राजा विनती करते हैं कि अब मेरे ऊपर कृपा कीजिये, मुझे अपना सुत और सेवक जानिये, आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपको अपना स्वामी मानता हूँ।

प० प० प्र०—[१५९ (६-७) में बता आये हैं कि राजाके हृदयमें भगवद्भक्तिकी रुचि भी न थी] इस मुनिकी कृपासे वैराग्य, ज्ञान, भक्ति माँगनेकी अथवा मन्त्रोपदेश लेनेकी भी इच्छा राजाके मनमें पहले या पश्चात् कहीं देखी नहीं जाती। वह मुनिकी कृपासे कुछ-न-कुछ अलौकिक ऐश्वर्यादिकी इच्छाको अब पूर्ण कर लेना चाहता है जो जगत्में दुर्लभ है। पर जबतक *'बर माँग'* ऐसा मुनि न कह दें तबतक वह उस वासनाको प्रकट नहीं करेगा। उस कपटी चतुर राजाने तो भानुप्रतापके प्रथम बचन *'जानत हौं कछु भल होनिहारा'* से ही ताड़ लिया कि राजाके हृदयमें कुछ ऐहिक कामना है। राजाके इस कामनाङ्कुरको कपट मुनि बार-बार खाद्य और जल देता रहा। प्रतापभानु तो राह ही देखता था कि गुरु महाराज कब *'बर माँगु'* कहें और मैं वर माँगूँ। इतने बीचमें उसने यह भी निश्चित कर लिया कि क्या माँगना चाहिये। (आगे *'अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं।'* (१६४। ५) में देखिये।)

सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥ ६॥
सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥ ७॥
सुनु सतिभाउ कहौं महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला॥ ८॥

दो०—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावौं काहु।
लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु॥
सो०—तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि॥ १६१॥

शब्दार्थ—**सहज**=जो बनावटी न हो, स्वाभाविक। **आपु**=अपने विषय, सम्बन्धमें, प्रति। **अपनाई**=अपने वशमें, अपनी ओर वा अपने अनुकूल करके। **केकि**=मोर, मुरैला। **पेखु**=देखो। **असन**=भोजन।

अर्थ—अपने ऊपर राजाका स्वाभाविक प्रेम और अधिक विश्वास देख सब प्रकार राजाको अपने वशमें करके अपना अधिक प्रेम दिखाता हुआ बोला॥ ६-७॥ हे राजन्! सुनो, मैं सत्य-ही-सत्य कहता हूँ, मुझे यहाँ बसे हुए बहुत काल बीत गया॥ ८॥ अबतक मुझे कोई न मिला था और मैं (अपनेको) किसीपर प्रकट नहीं करता; क्योंकि लोक-प्रतिष्ठा अग्निके समान है जो तपरूपी वनको भस्म कर

देती है। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुन्दर वेष देखकर मूर्ख ही नहीं, किन्तु चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं। देखिये मोर देखनेमें सुन्दर होता है उसके वचन अमृतके समान हैं, परन्तु सर्प उसका भोजन है॥ १६१॥

टिप्पणी—१ *'सहज प्रीति भूपति कै देखी।'* इति। (क) राजाके विश्वास और प्रेम दोनोंकी विशेषता दिखानेके लिये प्रीतिको *'सहज'* और विश्वासको 'विशेष' कहा। (ख) *'देखी'* का भाव कि कपटी मुनिने राजाकी प्रीति-प्रतीतिकी परीक्षा लेनेके लिये ही दुराव किया था। छिपाव करनेपर भी प्रेम और विश्वास कम न हुए इसीसे दोनोंको *'विशेष'* कहा। (ग) *'जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥'* यह सहज प्रीति है। और *'कह नृप जो बिज्ञान निधाना'* से लेकर *'होत बिरंचि सिवहिं संदेहा'* तक, यह विश्वास है कि ये कोई बहुत भारी महात्मा हैं।

टिप्पणी—२ (क) *'सब प्रकार राजहि अपनाई।'* अपनानेका भाव कि राजाने विनती की कि मुझे अपना सुत सेवक जानकर अपना नाम कहिये, उसने अपना नाम न बताया, ऐसा करनेसे अपनाना न निश्चित हुआ, तब राजाने अपनानेके लिये प्रार्थना की—*'मो पर कृपा करिअ अब स्वामी।'* अत: अब सब प्रकारसे राजाको अपनाया अर्थात् कहा कि तुम हमारे सेवक हो, पुत्र हो, शिष्य हो। (ख) *'बोलेउ अधिक सनेह जनाई।'* अर्थात् अधिक प्रेम दिखाकर बोला कि तुम हमारे सुत-सेवक हुए, हम तुमको अपना सुत-सेवक जानकर अपना नाम कहते हैं नहीं तो न कहते। पुन: *'अधिक सनेह'* का भाव कि पूर्व स्नेह (दिखाया) था और जब अपनाया तब अधिक स्नेह हुआ। (ग) *'जनाई'* का भाव कि वस्तुत: स्नेह है नहीं, झूठा स्नेह प्रकट करता है, यथा—*'रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेह जनाई॥'* [नीति भी यही है कि *'जो रीझै जेहि भावसे तैसे ताहि रिझाव। पीछे युक्ति विवेकसे अपने मतपर लाव॥'* (वि० टी०) धूर्तोंका पहिला काम यही होता है कि अपने ऊपर विश्वास दृढ़ करा लेते हैं तब अपने कपटजालके पसारमें हाथ लगाते हैं। मन्थराने यही किया था, यथा—*'सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥'* इसी भाँति कपट मुनिने जब देख लिया कि यह मुझे ब्रह्म-रुद्रकी कोटिमें समझने लगा, विनय, परिचय अत्यन्त विश्वास करने लगा तब अधिक स्नेह जनाकर माया फैलायी। (वि० त्रि०)]

टिप्पणी ३—*'सुनु सतिभाउ कहौं महिपाला।'*……' इति। (क) *'सतिभाउ कहौं।'* भाव कि प्रथम जब राजाने नाम पूछा तब उसने दुराव किया, राजा जान गये कि यह नाम नहीं है जो यह बताते हैं; इसीसे फिर प्रार्थना की; इसीसे अब वह कहता है कि मैं *'सतिभाउ'* से कहता हूँ जिसमें इस नामको भी झूठा न समझ ले। आगे जो बातें उसे कहनी हैं वह सब झूठी हैं, उनको राजा झूठ न माने किन्तु सत्य ही जाने इस अभिप्रायसे वह प्रथम *'सतिभाउ कहौं'* ऐसा कहता है अर्थात् मैं सत्य ही कहता हूँ। अब छिपाव नहीं करता हूँ। (ख) *'महिपाला।'* राजाने अपनेको भानुप्रतापका मन्त्री बताया—*'नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥'* और कपटी मुनिने उससे *'महिपाल'* सम्बोधन किया, सचिव न कहा। ऐसा करके कपटी मुनि अपनी सर्वज्ञता दिखाता है। अर्थात् बताता है कि तुमने हमसे छिपाया पर हम जानते हैं कि तुम भानुप्रताप हो, जैसा वह आगे स्वयं ही कहेगा। यदि वह राजाको सचिव कहता तो अज्ञता पायी जाती। (ग) *'बीते बहु काला।'* अर्थात् बहुत काल (युगों) तप किया, (यह भी युक्तिका वचन है। दस दिन भी बहुत होते हैं। राजा इससे समझा कि यहाँ इनको रहते कल्प-के-कल्प बीत गये और वह तो वस्तुत: राज्य छिन जानेपर यहाँ आ बसा।)

टिप्पणी—४ *'अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु।'*……' इति। (क) राजाने प्रशंसा की थी कि *'सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ॥'* वही बात वह भी कहने लगा कि अबतक हमें कोई न मिला और न हमने किसीको जनाया अर्थात् हम सदासे अपनेको छिपाये ही रहे हैं। कभी कहीं गये नहीं, न किसीसे मिले। *'न मिलेउ कोउ'* अर्थात् एक आप ही मिले। *'न जनावउँ काहु'* अर्थात् आपको प्रथम-प्रथम जनाया। (ख) *'लोकमान्यता अनल सम'*……' लोकमान्यताको विनयपत्रिकामें दूषण कहा है, यथा—*'बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि।'*

नोट—१ दो प्रकारसे सन्तको लोग जानते हैं। एक तो यों कि कोई उनके पास पहुँच जाय तो उससे दूसरोंको पता लग जाता है और दूसरे यों कि सन्त स्वयं कहीं भिक्षाटनके लिये जायँ और विभूति आशीर्वादादि देकर दूसरोंको अपनी सिद्धता दिखाकर अपनेको प्रसिद्ध करें। यही बात तापस कह रहा है कि न तो आजतक कोई हमें मिला और न हम ही किसीके पास गये।

☞साधु-सन्तों, तपस्वियोंके लिये यह उपदेश है। जो लोग दान-पुण्य-तपस्या-भजन आदि करके लोकमें प्रतिष्ठा चाहते हैं उनका वह दान, तप आदि व्यर्थ हो जाता है। बैजनाथजी भी लिखते हैं कि तपस्वीको चाहिये कि तपोधनको गुप्त रखे तभी बच सकता है, नहीं तो आर्त्त-अर्थार्थी अनेक सेवा-शुश्रूषादि मान बढ़ाकर तपको लूट लेंगे। जैसे विश्वामित्रकी बड़ी तपस्या त्रिशङ्कुने लूटी, कुछ अप्सराओं और कुछ विप्रपुत्रने लूटी। '*लोकमान्यता*……' में पूर्णोपमालङ्कार है।

टिप्पणी—५ '*तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।*……' इति। (क) मूढ़ ही नहीं, चतुर मनुष्य भी भूल जाते हैं, इसीपर मोरका दृष्टान्त देते हैं कि देखो मोर सुन्दर है, वचन उसका अमृत-समान है पर भोजन सर्प है। तात्पर्य कि वेष और वचन सुन्दर हैं, करनी खराब है। ऐसे ही खलोंका हाल है, यथा—'***बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाहिं महाअहि हृदय कठोरा॥***' राजा परम चतुर थे पर कपटी मुनिके स्नेहमय वचन और वेषसे धोखा खा गये, यथा—'***बचन बेष क्यों जानिए मन मलीन नर नारि। सूपनखा मृग पूतना दसमुख प्रमुख बिचारि॥***' '***हृदय कपट बर बेष धरि बचन कहैं गढ़ि छोलि। अब के लोग मजूर ज्यों क्यों मिलिए मन खोलि॥***' (दोहावली ४०८, ३३२) (ख) ☞'***तुलसी देखि*** ……***नर***' यह बात प्रसङ्गके बीचमें लिखनेका भाव कि जो कपटी मुनिने कहा कि '***अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु। लोक***……' बस, यही बात सुनकर राजा भूल गये, भ्रमसे समझ लिया कि यह कोई बड़ा भारी महात्मा है। इसीपर कहते हैं कि '***तुलसी***……।'

नोट—२ यदि ऐसा अर्थ लें कि 'मूढ़ भूलते हैं, चतुर नहीं', तो भाव यह होगा कि जो रामभक्त हैं वे ही चतुर हैं, जो भक्ति छोड़ दूसरे पदार्थकी चाह नहीं करते, यथा—'***रामहि भजहिं ते चतुर नर***', '***सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न मागेसि अस बरदाना॥*** ……***रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहि अति भाई॥***' राजा साधारण धर्ममें भले ही रत रहा, ज्ञानी भले ही रहा, पर उसमें रामभक्ति बीजका लेश न था, उसको अमर और अकण्टक शतकल्प क्या बल्कि सदाके लिये अजरत्व, अमरत्व और संसारके राज्यकी प्रबल ऐषणा थी, यह अहङ्कार ही उसके पतनका कारण हुआ, इसीसे वह भूला, क्योंकि वह मूढ़ था, उसे अपने तन, धन और राज्यका मोह था, धर्म-कर्ममें कर्तृत्वाभिमान था। और '***अभिमान गोविन्दहि भावत नाहीं।***' यदि वह भक्त होता तो भगवान् उसकी रक्षा अवश्य करते, उन्होंने स्वयं श्रीमुखसे कहा है—'***बालक सुत सम दास अमानी॥ सदा करौं तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥***' 'चतुर' होता तो प्रलोभनमें कभी न भूलने पाता और न घोर विप्रशापसे नष्ट होनेकी नौबत आती।

नोट—३ 'पूर्व राजाने तापसका वेष देखकर धोखा खाया, यथा—'***देखि सुबेष महामुनि जाना।***' और यहाँ वचनपर भूला अतएव '***सुधासम बचन***' कहा। '***मूढ़ न चतुर नर***' गहौरा देशकी बोली है अर्थात् चतुर और मूढ़ दोनों भूल जाते हैं।' (पं० रामकुमारजी)

नोट—४ इस सोरठेमें राजाके धोखा खानेका कारण ग्रन्थकार नीतिद्वारा समझाते हैं। जैसे मोरके सुन्दर रूप और बोलीसे सभी मोहित हो जाते हैं वैसे ही साधुवेष और स्नेहमय वचनोंसे सभीको धोखा हो जाता है।

नोट—५ कुछ टीकाकारोंने यह अर्थ किया है कि—'मूर्ख भूलते हैं, चतुर लोग नहीं भूलते।' ऐसा अर्थ करते हुए वे इस सोरठेका भाव यह कहते हैं कि पहले जब राजा कपटी मुनिके पास गया था तो वह प्याससे अति व्याकुल था इससे न पहचान सकता था। पर अब तो उसे पहिचान लेना था। राजा चतुर है, उसे धोखा न खाना था। यद्यपि तापसने अपनी सर्वज्ञता जनानेके लिये '***महिपाला***' सम्बोधन किया तथापि इसे तो सोचना था कि हमने तो अपनेको मन्त्री कहा और यह हमें राजा कहता है, हो-

न-ही यह कोई भेदी है। ऐसा सोचकर भलीभाँति विचार कर लेना उचित था। यथा—*'कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परबास। कियो दुराउ चहै चातुरी सो सठ तुलसीदास॥ हँसनि मिलनि बोलनि मधुर कटु करतब मन माँह। छुअत जो सकुचै सुमति सो तुलसी तिनकी छाँह॥'* (दोहावली ४४०, ४०९)

त्रिपाठीजी लिखते है कि 'मुनिका वेष है ऐसे घने जंगलमें रहता है जहाँ मनुष्यका गन्ध नहीं, ऐसी वैराग्ययुक्त वाणी है, ऐसे मनुष्यको महामुनि न माननेका कोई कारण नहीं है, फिर भी श्रीग्रन्थकार सावधान करते हैं कि ऐसी अवस्थामें भी लट्टू हो जाना मूढ़का काम है। ये सब साधुके लक्षण नहीं हैं—'**न लिङ्गं धर्मकारणम्**' क्योंकि खल लोग इन सब बातोंकी नकल कर लेते हैं। मोरका सुन्दर वेष और बोली देखकर कौन समझेगा कि यह साँप खाता होगा। अतः वेष, वाणी आदि बाह्य चिह्नोंका कोई मूल्य नहीं। सन्तमें एक लक्षण होता है कि उसकी नकल किसीके किये हो नहीं सकती। वह ग्रन्थकारके शब्दोंमें सुनिये—*'उमा सन्त की इहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई॥'*

प्रोफेसर दीनजीका मत है कि 'चतुर भूलते हैं मूढ़ नहीं भूलते' यह अर्थ अधिक सङ्गत है, क्योंकि मूढ़ भूलेंगे क्या? वे तो मूर्ख हैं ही, चतुर ही लोग वेष देखकर भूलते हैं, वे गुण नहीं जानते (जैसे मोर खूबसूरत नहीं होता। उसके कण्ठकी नीलिमा ही सुन्दर होती है और अङ्ग नहीं), गँवारको इतनी फिक्र नहीं होती, वह तो दण्डवत् कर चलता होगा।'

नोट ६—यहाँ *'मोर'* और *'अहि असन'* का दृष्टान्त देकर यह भी जनाया है कि जैसे मोर अहिकुलका नाशक है वैसे ही यह कपटी मुनि भानुप्रतापके कुलका नाशक होगा।

नोट ७—गोस्वामीजीने अन्यत्र दोहावलीहीमें मोरके विषयमें *'अहि अहार कायर बचन'* कहा है और यहाँ *सुधासम बचन'* कहा। कारण यह कि मोरकी बोली दो तरहकी होती है, आनन्दमय और दुःखमय। आनन्दमय केवल वर्षाकालमें होती है, दूसरी बोली घबराहटकी होती है। वर्षा और गरजके समय उसकी बोली दूरसे सुहावनी लगती है, पाससे वह भी नहीं।—(दीनजी)

नोट ८—यहाँ यह शङ्का होती है कि इस भावसे तो वेषपूजामें अश्रद्धा होगी जो भागवत-धर्मका एक बड़ा अङ्ग है। इसपर बैजनाथजी लिखते हैं कि राजा हरि-इच्छासे मूढ़ हो गया था, परन्तु जो वेषमात्रके उपासक हैं वे तो समदृष्टिवाले होते हैं। उनको 'भूलमें पड़ना' कहना अयोग्य है। उन्हें परीक्षाकी जरूरत ही नहीं।

अलङ्कार—*'बचन सुधासम असन अहि'* में अनमिल वस्तुओंका वर्णन 'प्रथम विषम' अलङ्कार है।

तातें गुपुत रहौं जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रजोजन नाहीं॥ १॥
प्रभु जानत सब बिनहि जनाएँ। कहहु कवन सिधि लोक रिझाएँ॥ २॥
तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें॥ ३॥
अब जौं तात दुरावौं तोही। दारुन दोष घटै अति मोही॥ ४॥
जिमि जिमि* तापसु कथै उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा॥ ५॥

शब्दार्थ—**किमपि**=कोई भी, कुछ भी, यथा—*'अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा। का देउँ तोहि तिलोक महँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥'* (लं०) **प्रजोजन**=काम, मतलब, सरोकार। **सुचि** (शुचि)=पवित्र। **जनाएँ**=प्रकट किये, हि, कहे। **रिझाएँ**=प्रसन्न किये वा करनेमें। **घटै**=लगेगा, लगता है। **कथै**=कहता है; (को) बात करता है, बोलता है। **उदासा**=उदासीनता, वैराग्य वा निरपेक्षता; झगड़े-टंटेसे अलग रहनेका भाव। **उपज**=उत्पन्न होता है, बढ़ता है।

अर्थ—इसीसे मैं जगत्‌में गुप्त रहता हूँ। भगवान्‌को छोड़ किसीसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता॥ १॥

*जिम—१६६१

प्रभु तो बिना कहे ही सब जानते हैं; भला कहिये तो लोकको रिझानेमें क्या सिद्धता है॥ २॥ तुम पवित्र और सुन्दर बुद्धिवाले हो, (इससे) तुम मुझे परम प्रिय हो। मुझपर तुम्हारा प्रेम और विश्वास है॥ ३॥ (अतएव) हे तात! यदि अब मैं तुमसे छिपाऊँ तो मुझे बड़ा कठिन दोष लगेगा॥ ४॥ ज्यों-ज्यों तपस्वी उदासीनताकी बातें कहता था त्यों-त्यों राजाका विश्वास उसपर बढ़ता जाता था॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'तातें गुपुत रहउँ'* इसका सम्बन्ध *'लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु'* से है। लोकमान्यता तपको जला डालती है, इसीसे अपना तप बचानेके लिये गुप्त रहता हूँ, नहीं तो जाकर किसी तीर्थमें रहता। (ख) राजाने जो कहा था कि *'परम अकिंचन प्रिय हरि केरें'* उसीपर कहता है कि *'हरि तजि किमपि प्रजोजन नाहीं'*, मुझे केवल हरिसे प्रयोजन है तात्पर्य कि सब प्रयोजन हरिसे पूरे होते हैं, यथा—*'सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिंन दुर्लभ कछु मोही॥'* (ग) *'प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ……।'* भगवान् बिना जनाये सब जानते हैं अर्थात् मनकी, वचनकी और तनकी इन सबकी जानते हैं और सब कुछ देनेको समर्थ हैं तब लोगोंको रिझानेका तो कुछ प्रयोजन रह ही न गया। जो पूर्व कहा कि *'मैं न जनावउँ काहु'* उसीका यहाँ कारण बताता है कि क्यों नहीं किसीपर अपनेको प्रकट करता। (घ) *'कहहु कवन सिधि लोक रिझाएँ।'* तात्पर्य कि लोगोंके रिझानेमें परिश्रम होता है फिर भी कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और प्रभुसे कहना भी नहीं पड़ता, कहनेमात्रका भी परिश्रम नहीं और सिद्धि सब कुछ प्राप्त हो जाती है। (ङ) ☞लोकमें और प्रभुमें अपार भेद दिखाते हैं। लोक जनानेसे जानता है, बिना जनाये नहीं जानता और प्रभु बिना जनाये जानते हैं, लोकको खुशामद करनेसे भी कुछ प्राप्ति नहीं होती और भगवान् बिना कहे सब कुछ देते हैं; अतः *'मैं न जनावउँ काहु।'* *'प्रभु'* शब्दसे जनाया कि वे सर्वसमर्थ हैं, जीव अल्पज्ञ और असमर्थ है।

नोट—१ *'ताते गुपुत रहउँ……'* इत्यादि वचनोंको सुनकर राजाका चित्त कुछ उदास हो गया कि फिर भला ये हमसे भी क्यों बतावेंगे तब वह कपटी मुनि कहता है कि तुमसे नहीं छिपा सकता, क्योंकि *'तुम्ह सुचि……दारुन दोष घटै अति मोही।'* अथवा राजाको सन्देह हो सकता था कि 'तो' हमसे क्यों कहा, अतएव *'तुम्ह सुचि सुमति……'* कहा।

टिप्पणी—२ *'तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें'* इति। (क) शुचि अर्थात् निश्छल। सुमति अर्थात् बुद्धिमान्। [वेदविहित मार्गमें सात्त्विकी श्रद्धा होनेसे *'सुमति'* कहा। यथा—**'मतिर्नाम वेदविहितमार्गेषु श्रद्धा'** इति (शाण्डिल्योपनिषदि) (वि० त्रि०)] *'सुचि'* को सुमतिका विशेषण मानें तो भाव होगा कि तुम्हारी बुद्धिमें पाप नहीं है, तुम्हारी बुद्धि पवित्र है। *'परम प्रिय मोरें'* का सम्बन्ध *'सुचि, सुमति'* और *'प्रीति प्रतीति मोहिपर तोरें'* से है। (ख) *'प्रीति प्रतीति……'* यथा—*'सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥'* प्रथम राजाकी प्रीति-प्रतीति देख चुका है तब ऐसा कहता है कि हमपर तुम्हारा प्रेम और विश्वास है। तुम शुचि हो इसीसे तुम्हारी प्रीति शुचि है। ☞प्रीतिकी प्रशंसा उसकी पवित्रताकी ही होती है, यथा—*'प्रीति पुनीत भरत कै देखी'*, *'सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत……।'* (२२९) *'उमा बचन सुनि परम बिनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता॥'* (१२०। ८) और तुम सुमति हो इसीसे तुम्हारी हमपर प्रतीति हुई अर्थात् तुमने अपनी सुन्दर बुद्धिसे हमको पहचान लिया। तुम्हारी प्रीति-प्रतीति हमपर है, अतः तुम हमको परम प्रिय हो—यह अन्योन्य प्रीति दिखायी। [तात्पर्य कि प्रथम चरणके *'सुचि'* और *'सुमति'* को दूसरे चरणके *'प्रीति'* और *'प्रतीति'* में यथाक्रमसे लगानेसे यह भाव निकला।]

टिप्पणी—३ *'अब जौं तात दुरावउँ तोही।……'* इति। (क) राजाको अपना सुत-सेवक माना, इसीसे *'तात'* सम्बोधन किया। प्रथम जब नाम पूछनेपर कपटी मुनिने न बताया तब राजाने कहा था कि *'सदा अपनपौ रहहिं दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ॥'* इसीपर वह कहता है कि *'अब जौं……'* अर्थात् पहले दुराव किया था, सुत-सेवक न माना था, पर अब तुम्हें परम प्रिय माननेपर भी यदि दुराव करूँ तो मुझे बड़ा पाप होगा। ऐसा कहा जिसमें राजा यह न समझे कि दुराव करते हैं। (ख) *'दुरावौं तोही।'*

भाव कि औरोंसे गुप्त रहनेसे तपकी रक्षा होती है, इससे वनमें गुप्त रहता हूँ। तुमसे गुप्त रहनेसे पाप है। (ग) *'दारुन दोष घटै अति मोही'* अर्थात् प्रीति-प्रतीति करनेवालेसे कपट करनेसे बड़ा भारी दोष लगता है और मैं साधु हूँ इससे मेरे लिये तो यह अत्यन्त दारुण दोष है।

टिप्पणी ४ *'जिमि जिमि तापस कथै उदासा।……'* इति। (क) *कथै उदासा'*=वैराग्य कहता है, उदासीनता प्रकट करता है। *'कथै उदासा'* में यह भी भाव ध्वनित है कि इसकी उदासीनता कथनमात्र है पर सब बात विश्वासहीपर निर्भर है। *'जिमि जिमि……तिमि तिमि'* से पाया गया कि विश्वास उत्पन्न करनेके लिये ही अपनी उदासीनता वर्णन करता है। यद्यपि प्रथम ही विशेष विश्वास देख चुका है—*'आपु बिषय बिस्वास बिसेषी',* तथापि फिर भी विश्वास उपजा रहा है क्योंकि विश्वासीसे ही छल लगता (अर्थात् चलता है)। अतएव बारम्बार विश्वासको पुष्ट करता है। ☞खलोंकी रीति है कि सुन्दर वेष बनाकर वैराग्यके वचन सुनाकर लोगोंको छलते-ठगते हैं। ☞(नोट—*'उपज'* कहकर विश्वासको वृक्ष बनाया। विश्वासका बीज राजामें पड़ चुका है; यथा—*'देखि सुबेष महामुनि जाना।'* तपस्वी वेष देखकर राजाको विश्वास हुआ कि यह मुनि है। सुत-सेवक बना इससे उसका विश्वास प्रकट ही है—*'आपु बिषय बिस्वास बिसेषी।'* अब उस बीजको वृक्षरूप कर रहा है अत: उपजाना कहा। वृक्ष अचल होता है वैसे ही विश्वासको अचल बनाता है।)

देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी॥ ६॥
नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई॥ ७॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥ ८॥
दोहा—आदिसृष्टि उपजी जबहि तब उतपति भै मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहिं देह न धरी बहोरि॥ १६२॥

शब्दार्थ—आदि=सबसे पहलेकी, प्रथम।

अर्थ—(जब उसने राजाको) कर्म, मन और वचनसे अपने वशमें देखा तब वह बगध्यानी (शिकारपर घात लगाये बैठा हुआ) तापस बोला॥ ६॥ हे भाई! हमारा नाम 'एकतनु' है। यह सुन राजा फिर मस्तक नवाकर बोला॥ ७॥ मुझे अपना अत्यन्त सेवक जानकर नामका अर्थ बखानकर कहिये॥ ८॥ (उसने उत्तर दिया कि) जब 'आदिसृष्टि' उत्पन्न हुई तभी मेरी उत्पत्ति हुई। 'एकतनु' नाम है, इसका कारण यह है कि फिर (दूसरी) देह नहीं धारण की॥ १६२॥

श्रीलमगोड़ाजी—सारी वार्ता ही नाटकीय तथा उपन्यासकलाकी Dialogue (वक्तृताद्वन्द्व) की जान है। उसमें कविकी बीच-बीचकी आलोचनाएँ सोनेमें सुगन्धका काम करती हैं।

टिप्पणी—१ (क) *'देखा स्वबस कर्म मन बानी'* इति। *'कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥'* इत्यादि वचनोंसे प्रशंसा की, इससे 'वाणीसे' वशमें जाना। *'जोसि सोसि तव चरन नमामी।……'* इससे कर्मसे वशमें जाना। *'सहज प्रीति भूपति कै देखी'* इससे मनसे वशमें जाना। (ख) *'तब बोला तापस बगध्यानी।'* बगध्यानीका भाव कि जैसे बगला मछली मारनेके लिये साधु बनकर बैठता है, वैसे ही यह कपटी मुनि राजाका नाश करनेके लिये साधु बनकर बैठा है। *'तब'* का भाव कि प्रथम प्रीति और विश्वास अपने ऊपर देखा था। प्रीति-प्रतीतिसे लोग वशमें होते हैं, यह बात भी अब देख ली। दोनों बातें देख लीं *'तब'*।

नोट १—बगला मछली पकड़नेके लिये बहुत सीधा-सादा बनकर नेत्र बन्दकर नदी-तालाब आदि जलाशयोंके किनारे खड़ा रहता है, परन्तु मछली जलके किनारे आयी नहीं कि उसने गड़प लिया। बगलेको यह मुद्रा केवल अपने घातके लिये होती है। इसीसे बनावटी भक्तोंको 'बगला भगत' कहते हैं। इस शब्दका प्रयोग ऐसे समय होता है जब कोई व्यक्ति अपना बुरा उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये बहुत सीधा

बन जाता है। जो ऊपरसे बहुत उत्तम और साधु जान पड़े परन्तु जिसका वास्तविक उद्देश्य दुष्ट और अनुचित हो, जो पूर्ण पाखण्डी, कपटी हो उसे 'बकध्यानी' कहते हैं। इस तापसको बकध्यानी कहा क्योंकि यह केवल वेषमात्रसे साधु है, उसके वचन कपटसे भरे हुए हैं और मनमें तो वह अपनी घात ताक रहा है, यथा—'*जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ।*' (१७०। ८) जैसे बगला मछलीकी घातमें रहता है वैसे ही यह राजाको परिवारसहित नाश करनेकी ताकमें है। बगलेके पाखण्डको एक कविने श्रीरामचन्द्रजीद्वारा व्यङ्गोक्तिसे यों प्रकट किया है—'**पश्य लक्ष्मण पम्पायां बकः परमधार्मिकः। शनैः शनैः पादनिक्षेपं जीवहत्याभिशङ्कया॥**'

टिप्पणी—२ (क) '*नाम हमार एकतनु भाई*' कपटी मुनिने अपना कोई प्रसिद्ध नाम न बताया। क्योंकि जितने प्रसिद्ध मुनि हैं वे सब राजाके सुने-जाने हैं। प्रसिद्ध नाम बतानेसे कपट खुल जानेकी सम्भावना थी, अतएव एक अपूर्व नाम '*एकतनु*' बताया। (ख) '*भाई*'। यहाँ राजाको वह भाई नहीं कह रहा है। राजाको तो '*महिपाल, नृप, तात*' विशेषण देकर सम्बोधन करता है। '*भाई*' कहकर बोलनेकी रीति है। (ग) '*सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई*'। इससे स्पष्ट है कि कपटी मुनि अपना नाम बताकर '*नाम हमार एकतनु भाई*' कहकर चुप हो गया। अपनी ओरसे नामका अर्थ यह विचारकर न कहा कि इससे पता चल जायगा कि राजा इस नामको भी '*नाम*' समझता है या अभी 'दुराव' ही समझता है, (पूरा विश्वास हमपर हुआ या अभी कमी है।) यदि इसे वह '*नाम*' न समझेगा, किन्तु समझता होगा कि हमसे छिपाते हैं, तब तो अर्थ न पूछेगा और यदि इसे सत्य ही हमारा नाम समझेगा तो अर्थ पूछेगा। राजाके मनका अभिप्राय जाननेके लिये केवल नाम कहा। पुनः, सम्भवतः उसने विचारा होगा कि यदि मैं अपनेसे कहूँगा तो राजाको सन्देह होगा और न कहूँगा तो भी अपूर्व नाम सुनकर सन्देह होगा कि एकतन तो सभीके होते हैं, तब इनके '*एकतनु*' नामका क्या आशय है। अद्भुत नाम सुनकर उसके जाननेकी उत्कण्ठा होगी। अतएव अपनेसे न कहना उचित समझकर चुप साध ली। राजाको सुनकर जिज्ञासा हुई ही। (घ) '*सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई।*' '*पुनि*' का भाव कि जैसे पूर्व चरणोंमें प्रणामकर प्रार्थनापूर्वक नाम पूछा था वैसे ही बड़ी नम्रताके साथ नामार्थ पूछते हैं—'*तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥*'

नोट—२ '*एकतनु भाई*' ये वचन सत्य भी हैं। '*एकतनु*' अर्थात् हम अपने बापके एकलौते बेटे हैं, '*भाई*' अर्थात् तुम्हारे भाई-बिरादरी हैं, तुम राजा हम भी राजा, तुम क्षत्रिय हम भी क्षत्रिय। जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा चार भाँतिके नाम होते हैं। अतएव राजा नामका कारण विस्तारसे जानना चाहता है। (वै०)

टिप्पणी—३ '*कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक*······' इति। (क) अपना सेवक (गूढ़ तत्त्व भी) सुननेका अधिकारी होता है, यथा—'*जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥*' (११०। १) अतः '*कहहु*······*मोहि सेवक जानी*' कहा। (ख) '*सेवक अति*' कहनेका भाव कि नाम जब पूछा तब अपनेको सुत सेवक कहा था, यथा—'*मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी।*' (१६०। ४) '*मो पर कृपा करिअ अब स्वामी।*' (१६१। ५) वैसे ही अब नामार्थ पूछनेमें भी अपनेको '*सुत' सेवक*' कहते हैं। '*अति सेवक*', '*सुत सेवक*' होता है। (जैसे हनुमान्‌जीको उनकी अति सेवाके कारण सुत कहा है,—'*सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं*', '*हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना*', '*सुनु सुत बिपिन करहिं रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥*') (वा, '*अति सेवक*' का भाव कि आपको छोड़कर मैं दूसरा स्वामी जानता ही नहीं। वि० त्रि०) (ग) '*कहहु नाम कर अरथ*'। ☞ देखिये पहिले उसने अपना नाम बतानेमें '*कपट*' किया; अब बिना पूछे अर्थ भी नहीं बताता। '*कहहु*······' से जनाया कि राजाको नामका अर्थ न समझ पड़ा। उसने सोचा कि 'एकतन' तो सभी हैं (दो तनका तो कोई देखने-सुननेमें नहीं आया) तब इनका नाम एकतन क्यों हुआ?

टिप्पणी—४ '*आदिसृष्टि उपजी जबहिं*······' इति। (क) राजा, नामार्थके पश्चात् पिताका नाम न पूछ

पड़े इसका भी उपाय तापस प्रथम ही नामार्थमें ही किये देता है। सृष्टिके आदिमें अपनी उत्पत्ति कहता है इससे पिताका और गुरुका नाम भी पूछनेकी गुञ्जाइश नहीं रह गयी। पिताका अथवा गुरुका नाम मालूम होनेसे भी राजा कपटी मुनिको जान सकता सो भी अब नहीं जान सकता। दूसरे इस अर्थसे राजा यह सोचकर चुप हो जायगा कि इतने पुराने पुरुषोंको हम कैसे जान सकनेको समर्थ हो सकते हैं।

नोट—३ *'एकतनु'* का अर्थ कैसी अनोखी रीतिसे समर्थन करता है। राजा तो यह समझे कि जब प्रथम कल्पके प्रथम सत्ययुगके आदिमें सृष्टि हुई तभी मैं पैदा हुआ और तबसे आजतक अनेक प्रलय और महाप्रलय हो गये पर मेरा वही शरीर बना रहा और सत्य-सत्य भीतरी गुप्त अर्थ यह है कि मेरे पिता-मातासे जो *'आदिसृष्टि'* अर्थात् प्रथम सन्तान हुई वह मैं ही हूँ। अर्थात् अपने माता-पिताका सबसे बड़ा पुत्र हूँ। *'एकतनु भाई'* से एकलौते बेटेका भाव भी निकल सकता है। इसी तरह *'देह न धरी बहोरि'* का भीतरी अर्थ है कि जबसे पैदा हुआ तबसे अबतक जीवित हूँ, न मरा, न दूसरी देह पायी।

नोट—४ *'आदिसृष्टि'* इति। सृष्टि ब्रह्मकी लीला है। ब्रह्म अनादि और अनन्त है। उसकी लीला भी अनादि अनन्त है। अतः सृष्टि भी अनादि है।

यह नहीं कहा जा सकता कि सृष्टिकी उत्पत्ति और लयके कार्यका कबसे प्रारम्भ हुआ अर्थात् सृष्टिका उत्पन्न और लय होना प्रथम-प्रथम कबसे हुआ। हमारे ग्रन्थोंसे पता चलता है कि न जाने कितने ब्रह्मा हो गये। कपटी मुनिके इस शब्दसे यह भी साबित हो सकता है कि हमारे सामने सैकड़ों ब्रह्मा हो गये।

यदि यह मानें कि *'आदिसृष्टि'* से वर्तमान ब्रह्माकी रची हुई प्रथम सृष्टि अभिप्रेत है तब यह प्रश्न होता है कि ब्रह्माने प्रथम-प्रथम सृष्टि कब रची।

सिद्धान्तशिरोमणिकार स्वामी श्रीभास्कराचार्यजीका मत है कि ब्रह्माने पैदा होते ही सृष्टि रची। पर 'सूर्यसिद्धान्त' में सृष्टिके आरम्भके विषयमें ऐसा उल्लेख है—'**ग्रहर्क्षदेवदैत्यादिसृजतोऽस्य चराचरम्। कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः।**' (२४) इसकी व्याख्या पं० सुधाकर द्विवेदी जी इस प्रकार लिखते हैं—'**ब्रह्मदिनादितः शतघ्नवेदसप्तवेददिव्याब्देषु गतेषु ब्रह्मा सृष्टिं रचयित्वा आकाशे नियोजितवान्। ब्रह्मगुप्तादयो ब्रह्मदिनादावेव ग्रहादिसृष्टिं कथयन्ति।**' अर्थात् ब्रह्माजीके दिनके आरम्भसे ४७४०० दिव्यवर्ष (अर्थात् हमारे १७०६४००० वर्ष बीतनेपर सृष्टिकी रचना हुई और ब्रह्मगुप्तादि पण्डितोंके मतसे ब्रह्माकी उत्पत्तिके साथ ही सृष्टिका आरम्भ हुआ।

सिद्धान्तशिरोमणिके मतसे *'आदिसृष्टि उपजी जबहिं·····'* का भाव होगा कि ब्रह्माजीकी उत्पत्तिके साथ ही मैं भी उत्पन्न हुआ; मेरी और ब्रह्माकी आयु लगभग एक ही है और सूर्यसिद्धान्तके मतानुसार भाव यह है कि ब्रह्माजीके प्रथम दिनमेंसे जब ४७४०० दिव्य वर्ष बीते तब मेरी उत्पत्ति हुई।

कालकी प्रवृत्तिके सम्बन्धमें यह श्लोक है—'**लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव। मधोः सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः॥**' (१५) (सिद्धान्तशिरोमणि सं० १९२९, विद्याविलास प्रेस, काशी।) अर्थात् लङ्कापुरीमें जब सूर्यका उदय हुआ, उसी समयसे रविवार चैत्रशुक्लके आरम्भसे दिन, मास और वर्ष आदिकी एक साथ ही सर्वप्रथम प्रवृत्ति हुई।

जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं॥ १॥
तप बल तें* जग सृजै बिधाता। तपबल बिष्नु भए परित्राता॥ २॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा॥ ३॥
भएउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा॥ ४॥
करम धरम इतिहास अनेका। करै निरूपन बिरति बिबेका॥ ५॥

* तैं—१६६१।

शब्दार्थ—'**सृजै**'=उत्पन्न करता है। '**बिधाता**'=ब्रह्मा। '**परित्राता**'=विशेष रक्षा करनेवाला। **संघारा** (संहार)=प्रलय, नाश। **पुरातन**=पुरानी, प्राचीन।

अर्थ—हे पुत्र! मनमें आश्चर्य न करो। तपसे कुछ भी कठिन नहीं॥ १॥ तपस्याके बलसे ब्रह्मा सृष्टि उत्पन्न करते हैं। तपके बलसे विष्णु (सृष्टिके) पालनकर्ता हुए॥ २॥ तपहीके बलसे शिवजी संहार करते हैं। तपसे संसारमें कुछ भी कठिन नहीं है॥ ३॥ यह सुनकर राजाको बड़ा अनुराग हुआ तब वह पुरानी कथाएँ कहने लगा॥ ४॥ कर्म, धर्म और उनके अनेकों इतिहास (कहे और साथ ही) ज्ञान और वैराग्यका निरूपण करने लगा॥ ५॥

श्रीलमगोड़ाजी—तपवाला Peroration (वक्तृताका जोरदार अंश) इतना सुन्दर है कि कविकी जितनी तारीफ की जाय कम है। वक्तृता प्रतिद्वन्द्वी अवाक् रह जाता है।

टिप्पणी—१ *'जनि आचरजु करहु मन माहीं'* इति। (क) ☞सृष्टिके आदिमें उत्पत्ति हुई, यह सुनकर आश्चर्यकी प्राप्ति हुई; उसीका निवारण करता है। *'मन माहीं'* से जनाया कि राजाने आश्चर्यकी शङ्का वचनसे कुछ भी प्रकट न की। मनमें आश्चर्यकी उत्पत्तिको रोक वह प्रथम ही किये देता है। [प्रोफे० दीनजी कहते हैं कि 'नामका अर्थ कहकर उसने सोचा कि राजाको सन्देह होगा कि जबसे आदिसृष्टि हुई तबसे आजतक ये कैसे बने रह सकते हैं, इसीसे वह पहलेहीसे गढ़न्तकर कह चला कि *'तप......'*, जिसमें राजा सन्देह करने ही न पावें। अथवा सन्देह मनमें हुआ। चेष्टा देखकर उसने राजाके मनोगतभावोंको जान लिया और अपनी बात पुष्ट करने लगा। इसीसे कहा कि *'जनि आचरजु करहु मन माहीं'* अर्थात् मैं तुम्हारे मनके भावको समझ रहा हूँ। तुम आश्चर्य न करो। इस तरह यहाँ 'पिहित अलङ्कार' हुआ।] (ख) *'सुत'*। राजाने पूर्व प्रार्थना की थी *'मोहि मुनीस सुत सेवक जानी।'* इसीसे अब *'सुत'* कहकर सम्बोधन कर रहा है। (राजाने उसको *'पिता'* कहा है, यथा—*'जानि पिता प्रभु करौं ढिठाई'* और अपनेको सुत कहा। पर कपटी मुनिने अभीतक अपने मुखसे *'सुत'* नहीं कहा था। अब अधिक विश्वास करानेके लिये *'सुत'* कहकर जनाया कि हम भी तुम्हें पुत्र मानते हैं; इसीसे हमने गुप्त बात कही और उसे समझाते भी हैं।) (ग) *'तप तें दुर्लभ कछु नाहीं।'* (सुत कहकर उसके चित्तको अपने वशमें करके) अब अपनेमें तपबल निश्चय कराता है। कैसा तपबल है? ब्रह्मा-विष्णु-महेशके समान। इसीसे आगे तीनोंका तपबल कहता है। कुछ दुर्लभ नहीं है, इस कथनका भाव यह है कि तपबलसे त्रिदेव उत्पत्ति, पालन, संहार करते हैं। तपबलसे हमारी देह नाशको प्राप्त न हुई, इसमें अब आश्चर्य ही क्या? तपबलसे कुछ दुर्लभ नहीं है, यह कहकर जनाता है कि हमको त्रैलोक्यमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यही बात आगे वह स्वयं स्पष्ट कहता है—*'सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिंन दुर्लभ कछु मोही॥'*

टिप्पणी—२ (क) *'तप बल तें जग सृजै बिधाता।.......'* इति। उत्पत्ति, पालन और संहार तीनों क्रमसे कहता है। सृष्टिके द्वारा तपका बल दिखाता है। तपबलसे ब्रह्मा सृष्टि रचते हैं, भाव कि ब्रह्मा पहले सृष्टि करनेमें असमर्थ हुए, तब आकाशवाणी हुई कि तप करो, तप करो। तब उन्होंने भारी तप किया जिससे सृष्टि कर सके। इससे भी बड़ा काम उसका पालन करना है। यदि एक क्षण भी आलस्य कर जायँ तो सृष्टिमें गड़बड़ मच जाय और यह सब प्रजा नष्ट हो जाय, सो तपबलसे विष्णुभगवान् सृष्टिकी रक्षा करते हैं। शिवजी सृष्टिका संहार करते हैं। *'जग'* पद आदिमें देकर सबके साथ जनाया। (ख) तपसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है अर्थात् तपका बल भारी है, यह कहा था, इसीसे भारी बल दिखानेके लिये त्रिदेवका बल कहा। (ग) *'तप तें अगम न कछु संसारा'* इति। इससे दिखाया कि जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करना अगम है, पर तपके बलसे सुगम हो गया। जब ऐसा बड़ा कठिन काम सुगम है तब संसारमें और कौन काम है जो तपसे न हो सके? सभी असम्भव काम सम्भव हो सकते हैं। (पुनः इससे यह भी दिखाता है कि केवल त्रिदेवहीमें यह शक्ति नहीं है, किन्तु जो कोई भी तप करे वही उत्पत्ति-पालन-संहार आदि कर सकता है) और यह भी न समझो कि तीनों देवता एक-ही-

एक काम कर सकते हैं। एक ही देवता तपके प्रभावसे तीनों काम कर सकता है। तपसे उन्हें एवं किसीको भी कुछ भी अगम नहीं है। इस तरह अपनेको त्रिदेवके समान जनाया।

नोट—१ *'तप तें अगम न कछु संसारा।'* प्रमाण यथा—'**यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् । सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥**' (मनुसंहिता) पुनः यथा—*'तप अधार सब सृष्टि भवानी॥'* (७३। ५)

नोट—२ ब्रह्मा, विष्णु, महेश भगवान् हैं। इन्हें उत्पत्ति, पालन, संहार करनेके लिये कठिन उपवास आदि तप नहीं करने पड़ते। ये तो सङ्कल्पमात्रसे सब कार्य करते हैं। इनके सम्बन्धमें *'तप'* शब्द 'संकल्प या विचार' के अर्थमें प्रयुक्त होता है अर्थात् वे संकल्प करके विश्वकी उत्पत्ति आदि करते हैं। यहाँ *'तप आलोचने'* धातु है। (रा० व० श०) न तो ब्रह्मा कुलालकी भाँति सब वस्तुओंकी रचना करते हैं, न विष्णु माँकी भाँति सबका पालन करते हैं और न शम्भु व्याधकी भाँति संहार करते हैं। यह सब कार्य उनके तपोबलसे आप-से-आप होता रहता है।

टिप्पणी ३ (क)—*'भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा'* इति। *'अति अनुरागा'* का भाव कि तापसपर राजाका प्रेम तो पूर्वहीसे था, पर अब महिमा सुननेसे *'अति'* अनुराग हो गया। (ख) *'कथा पुरातन कहै सो लागा'* इति। जब तपस्वीकी अति कालीनता सुनकर राजाको आश्चर्य न हुआ, उलटे अनुराग हुआ तब प्राचीन कथाएँ कहने लगा। ☞अनुराग हो तभी मनुष्य कथाके श्रवणका अधिकारी होता है यथा—*'लागी सुनै श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई।'* (५। १३) राजाको अत्यन्त अनुराग हुआ तब कथा कहने लगा। *'पुरातन'* कथा कहकर अपना 'पुराणपन' अपनी कालीनता सिद्ध करता है। जिसमें राजाको निश्चय हो जाय कि तपस्वीजी बड़े ही कालीन हैं, यह सब घटनाएँ इनकी देखी हुई हैं। (ग) *'करम धरम इतिहास अनेका'* इति। अर्थात् कर्मकी गति कहता है जो अत्यन्त सूक्ष्म और कठिन है। यथा—*'कठिन करम गति जान बिधाता।'* (२। २८२) [इससे जनाया कि कर्मकी गति या तो ब्रह्मा जानते हैं या मैं और कोई नहीं जानता। 'कर्म' से कर्म, अकर्म और विकर्म तीनों भेद सूचित कर दिये। भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि इन तीनोंके विषय जाननेयोग्य हैं। इनकी गति कठिन है। बड़े-बड़े विद्वान् भी इन बातोंको यथार्थरूपसे नहीं जानते। यथा—'**कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥**' (गीता ४। १७) '**कवयोऽप्यत्र मोहिताः।**' (गीता ४। १६) इन सबोंके स्वरूप उसने कहे।] धर्म भी अनन्त हैं। धर्मसे चारों वर्णोंके धर्म, चारों आश्रमोंके धर्म, स्त्रियोंके धर्म, स्वामिधर्म, सेवकधर्म, दानधर्म और मोक्षधर्म इत्यादि अनेक धर्मोंका ग्रहण हो गया। (धर्मके विषयमें पूर्व दोहा ४४ *'ब्रह्म निरूपन धर्म बिधि……'* में विस्तारसे लिखा गया है।) अनेक इतिहास कहता है अर्थात् कर्म-धर्मके उदाहरण इतिहाससे देता है। पुनः, कर्मधर्मकी कथाएँ कहता है तथा और भी इतिहास कहता है। [उदाहरणार्थ इतिहास कहे कि अमुक-अमुक राजाओंने ऐसे-ऐसे कर्म किये और उनसे ये-ये फल प्राप्त किये। (घ) *'करै निरूपन बिरति बिबेका'* इति। ज्ञान और वैराग्यके स्वरूप सूक्ष्म हैं। अतः उनका निरूपण करना कहा—दोहा ४४ भी देखिये।]

उदभव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥ ६॥
सुनि महीप तापस बस भएऊ। आपन नाम कहन तब लएऊ॥ ७॥
कह तापस नृप जानौ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥ ८॥

सो०—सुनु महीप असि नीति जहँ* तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ† चतुरता बिचारि तव॥ १६३॥

---

* ऐसा ही १६६१ में है।

† पाठान्तर—'परम चतुरता निरखि तव।'

अर्थ—उत्पत्ति, पालन और संहारकी कहानियाँ कहीं और भी अगणित आश्चर्य (की बातें) बखानकर कहीं॥ ६॥ सुनकर राजा तपस्वीके वशमें हो गया और तब अपना नाम कहने लगा॥ ७॥ वह (तापस) बोला कि राजन्! मैं तुम्हें जानता हूँ। तुमने कपट किया, वह मुझे अच्छा लगा॥ ८॥ राजन्! सुनो, ऐसी नीति है कि राजा अपना नाम जहाँ-तहाँ नहीं कहते, तेरी यही चतुरता समझकर तुझपर मेरा अत्यन्त प्रेम है॥ १६३॥

टिप्पणी—१ (क) *'कहेसि अमित आचरज बखानी।'* तात्पर्य कि प्रथम प्रसिद्ध उत्पत्ति, पालन और संहारकी कथाएँ कहीं, यथा—*'तपबल तें जग सृजै बिधाता। तपबल बिष्नु भए परित्राता॥ तपबल संभु करहिं संघारा।'* अब अप्रसिद्ध आश्चर्य बखानकर कहता है। वह यह कि कभी ब्रह्मा पालनका कार्य करते हैं और विष्णु उत्पत्ति करते हैं। यथा—*'जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥'* (५। २१) कभी ब्रह्मा ही तीनों कर्म करते हैं, यथा—*'जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥'* (२। २८२) और कभी भगवान् ही उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, यथा—*'आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥'* (६। १५) इत्यादि। (ख) *'बखानी'* बखानकर कहनेका भाव कि जो कभी न सुनी थीं ऐसी-ऐसी अद्‌भुत बातें बहुतेरी कहीं जिसे सुनकर आश्चर्य हो।

नोट—१ *'उदभव पालन प्रलय कहानी'*—द्विभुज शार्ङ्गधनुष-बाणधारी श्रीसाकेतबिहारीकी जब इच्छा हुई कि सृष्टिकी रचना हो तब उन्होंने प्रथम जल उत्पन्न कर उसमें चतुर्भुजरूपसे शयन किया। इसीसे नारायण कहलाये अर्थात् जल है घर जिनका। उनके कमलनाभिसे ब्रह्मा हुए जिनको त्रिगुणात्मक सृष्टि रचनेकी आज्ञा हुई। श्रीमद्भागवत स्कन्ध २में इसकी कथा है जो पूर्व लिखी जा चुकी है। भगवान् विष्णु नारायण आदि रूपोंसे और अवतार ले-लेकर प्रजाकी रक्षा करते हैं। उन अवतारोंका वर्णन किया। *'प्रलय'*—कभी शिवजीद्वारा और कभी शेषजी, सूर्यभगवान्, इत्यादिद्वारा सृष्टि फिर लय हो जाती है। कूर्मपुराणमें नित्य (जो प्रतिदिन लोकमें क्षय हुआ करता है), नैमित्तिक (कल्पान्तमें तीनों लोकोंका क्षय), प्राकृत (जिसमें महदादि विशेषतक विलीन हो जाते हैं) और आत्यन्तिक (ज्ञानकी पूर्णावस्था प्राप्त होनेपर ब्रह्ममें लीन हो जाना) चार प्रकारके प्रलय कहे गये हैं। यथा—**'नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः। आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी॥'** (भा० १२। ४। ३८) (प्र० सं०)।

पद्मपु० सृष्टिखण्डमें एक बारकी सृष्टि इस प्रकारकी पुलस्त्यजीने बतायी है—'जब ब्रह्माजी सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्त हुए उस समय उनसे देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न हुई जो मानसी प्रजा कहलायीं। तदनन्तर प्रजापतिने देवता, असुर, पितर और मनुष्य—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी तथा जलकी भी सृष्टि करनेकी इच्छासे अपने शरीरका उपयोग किया। उस समय सृष्टिकी इच्छावाले मुक्तात्मा प्रजापतिकी जंघासे पहले दुरात्मा असुरोंकी उत्पत्ति हुई। उनकी सृष्टिके पश्चात् भगवान् ब्रह्माने अपनी वयस्से इच्छानुसार 'वयों' (पक्षियों) को उत्पन्न किया। फिर अपनी भुजाओंसे भेड़ों और मुखसे बकरोंकी रचना की। इसी प्रकार अपने पेटसे गायों और भैंसोंको तथा पैरोंसे घोड़े, हाथी, गर्दभ, नीलगाय, हिरन, ऊँट, खच्चर तथा दूसरे-दूसरे पशुओंकी सृष्टि की। ब्रह्माजीकी रोमावलियोंसे फल, मूल तथा भाँति-भाँतिके अन्नोंका प्रादुर्भाव हुआ। गायत्रीछन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर तथा अग्निष्टोम यज्ञको प्रजापतिने अपने पूर्ववर्ती मुखसे प्रकट किया। यजुर्वेद, त्रिष्टुपछन्द, पञ्चदशस्तोम, बृहत्साम और उक्थकी दक्षिणवाले मुखसे रचना की। सामवेद, जगतीछन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्रभागकी सृष्टि पश्चिम मुखसे की तथा एकविंशस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम, अनुष्टुपछन्द और वैराजको उत्तरवर्ती मुखसे उत्पन्न किया। छोटे-बड़े जितने भी प्राणी हैं सब प्रजापतिके विभिन्न अङ्गोंसे उत्पन्न हुए। कल्पके आदिमें ब्रह्माने देवताओं, असुरों, पितरों और मनुष्योंकी सृष्टि करके फिर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, राक्षस, सिंह, पक्षी, मृग और सर्पोंको उत्पन्न किया। नित्य और अनित्य जितना भी यह चराचर जगत् है, सबको आदिकर्ता भगवान् ब्रह्माने उत्पन्न किया।'

टिप्पणी—२ *'सुनि महीप तापस बस भएऊ।.....'* इति। (क) तापसके वशमें हो गया अर्थात् यह विचार चित्तमें स्फुरित हो आया कि ये तो भारी महात्मा हैं, इनसे कौन कपट छिप सकता है, ये तो हमें जानते हैं तभी तो हमको इन्होंने महिपाल कहा है। प्रथम कपट किया, नाम न बताया, अब नाम बताना चाहते हैं। तपस्वीने राजाको अपने वशमें जानकर अपना नाम बताया, यथा—*'देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बग ध्यानी॥ नाम हमार एकतनु भाई।'* राजा तपस्वीको अपने वशमें जानकर अपना नाम बतावें सो बात नहीं है, क्योंकि महात्मा किसीके वशमें नहीं होते। राजा स्वयं तापसके वश हो जानेसे अपना नाम बताने लगा। राजाको वशमें करनेके लिये ही उसने अपना माहात्म्य सुनाया था।

नोट—२ पहले भिखारी नाम बताया, फिर कहा कि अच्छा अब हम अपना असली नाम बताते हैं। इस खयालसे कि जब राजा अपना नाम बताने लगेगा तब हमको और भी बातें गढ़नेका अवसर प्राप्त होगा। ऐसा ही हुआ भी (प्रो० दीनजी)। *'कहन तब लएऊ'* से जनाया कि कहनेको हुआ पर कहने न पाया था कि वह बीचमें बोल उठा।

टिप्पणी—३ (क) *'कह तापस नृप जानौं तोही'* इति। जब अपना नाम बताने लगा तब तापस (राजाकी बात काटकर) बोला कि हम तुम्हें जानते हैं। तुम अपनेको मन्त्री बताते हो, पर मन्त्री हो नहीं। तुम तो राजा हो, इसीसे तो हम तुम्हें *'नृप'* कहते हैं। (ख) *'कीन्हेहु कपट लाग भल मोहीं।'* कपट किसीको अच्छा नहीं लगता पर हमको तुम्हारा कपट करना अच्छा लगा। 'भला लगा' कहनेका भाव कि कपटसे और प्रीतिसे विरोध है। कपटसे प्रीतिका नाश होता है, यथा— *'जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति की रिति भलि। बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥'* (५७) पर तेरे इस कपटसे मेरा प्रेम तुझसे हटा वा घटा नहीं वरन् अत्यन्त अधिक हो गया। आगे दोहेमें इन दोनों (कपट भला लगने और प्रीति' अति अधिक होने) का हेतु कहता है कि तुम्हारी चतुरता देखकर यह दोनों बातें हुईं। (ग) *'सुनु महीप'* इति। *'अति प्रीति'* का भाव कि चतुरता विचारकर प्रीति हुई, अतएव जैसी चतुरता है वैसी ही प्रीति है। राजामें 'परम' चतुरता है इसीसे *'अति'* प्रीति हुई, यथा—*'उतरि तुरग ते कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥'* (घ) *'असि नीति'* का भाव कि तुमने नाम न बताया सो ठीक किया, यही नीति कहती है, तुमने अनीति नहीं की। तुम्हारा नामका छिपाना कपट नहीं है किन्तु राजनीतिकी निपुणता है, तुमने उस नीतिका पालन किया है, कुछ कपट नहीं किया।

नाम तुम्हार प्रतापदिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा॥ १॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा॥ २॥
देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई॥ ३॥
उपजि परी ममता मन मोरें। कहौं कथा निज पूँछे तोरें॥ ४॥
अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। माँगु जो भूप भाव मन माहीं॥ ५॥

शब्दार्थ—**निपुनाई**=निपुणता। **ममता**=ममत्व, स्नेह, प्रेम, अपनापन।

अर्थ—तुम्हारा नाम भानुप्रताप है। राजा सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे॥ १॥ हे राजन्! गुरुकी कृपासे मैं सब जानता हूँ, पर अपनी हानि समझकर कहता नहीं॥ २॥ हे तात! तुम्हारी स्वाभाविक सिधाई, प्रीति, प्रतीति और नीतिमें निपुणता देख मेरे मनमें ममत्व उत्पन्न हो गया; इसलिये तेरे पूछनेसे अपनी कथा कहता हूँ॥ ३-४॥ अब मैं प्रसन्न हूँ इसमें संदेह नहीं। राजन्! जो मनको भावे माँग ले॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'नाम तुम्हार प्रतापदिनेसा। सत्यकेतु.....।'* इति। ☞पितासमेत नाम लेनेका भाव कि प्रणाम करनेके समय पितासमेत नाम लेनेकी विधि है। कपटी मुनिको प्रणाम करते समय राजाने पितासमेत अपना नाम न लिया था, इसीसे उसने अपनी सिद्धता दिखानेके लिये, सर्वज्ञताका पूर्ण विश्वास जमानेके लिये दोनोंका नाम खोल दिया। तपस्वी पहले राजाके पिताका नाम बताता पीछे राजाका, परंतु भानुप्रताप

अपना नाम कहने ही लगा था इसीसे (उसने इनकी बात काटकर जिसमें राजाके मुखसे नाम निकलने न पावे, राजा रुक जाय) प्रथम इन्हींका नाम कहा पीछे पिताका। (ख) *'गुर प्रसाद सब जानिअ'* इति। ☞प्रथम सब पदार्थोंकी प्राप्ति तपोबलसे कही, यथा—*'सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं।'* जानकारी गुरुप्रसादसे कहता है क्योंकि बिना गुरुके ज्ञान नहीं होता, यथा—*'बिनु गुर होइ कि ग्यान।'* (इससे यह भी जनाया कि तुम हमें गुरु करोगे तो तुम्हें भी सब सुलभ हो जायगा।) (ग) *'कहिय न आपन जानि अकाजा'* इति।—भाव कि अपनी जानकारी कहनेसे लोकमान्यता होती है, जैसा पूर्व कह चुके हैं, यथा—*'लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु।'*, अतएव नहीं कहते। तात्पर्य कि हम अपनेको छिपाये रखते हैं क्योंकि *'सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ।'* (घ) 'जब सब जानते हो, पिताका नाम बताया, नगरका फासला बताया इत्यादि और यह भी जानते हो कि कहनेसे अकाज होता है तब कहा क्यों? इस सम्भावित शंकाका समाधान स्वयं ही आगे प्रथम ही किये देता है कि *'देखि……।'* (ङ) *'देखि तात तव सहज सुधाई।'* सहज सुधाई, प्रीति, प्रतीति और नीतिकी निपुणता—इन चारका देखना कहा। *'भलेहि नाथ आयसु धरि सीसा'* से *'नाथ नाम निज कहहु बखानी।'* (१६०। १—४) तक *'सहज सुधाई'* है। [यथा—*'सरल बचन नृपके सुनि काना।'* (१६०। ८) *'कह नृप जे बिग्यान निधाना'* से *'मोपर कृपा करिअ अब स्वामी।'* (१६१, १—५) तक सहज प्रीति प्रतीति है।] *'सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥'* यहाँ प्रीति-प्रतीति देखी। *'परम चतुर न कहेउ निज नामा'* यह नीति निपुणता देखी, यथा—*'सुनु महीस अस नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।'*

टिप्पणी—२ (क) *'उपजि परी ममता मन मोरें'* इति। *'उपजि परी'* का भाव कि 'संतको ममता न करनी चाहिये। (संत निर्मम होते हैं। उनका किसीपर ममत्व कैसा? पर तुम्हारी प्रीति-प्रतीति इत्यादि देखकर मुझसे रहा न गया। गुणोंमें सामर्थ्य ही ऐसा है कि आत्माराम मुनियोंको भी खींच लेता है। प्रेमके आगे नेम नहीं रह जाता। बस) 'ममता' उपज पड़ी, तुमपर स्नेह हो गया। अर्थात् हमने तुमको अपना सुत और सेवक मान लिया। (नोट—'ममता वह स्नेह है जो माताका पुत्रके साथ होता है। राजाने अपनेको *'सुत सेवक'* कहा था उसीकी जोड़में इसने *'ममता'* का उपजना कहा। 'उपजना' का भाव ही यही है कि पहले न थी, अब 'प्रेम' आदि बीज पड़नेसे उत्पन्न हो गयी; माता-पिताकी भाँति मेरा सहज प्रेम तुमपर अब हो गया।) (ख) ☞अपनी कथा कहनेके दो हेतु बताये। *'ममता'* और *'पूँछे तोरें।'* राजाने पूछा था; यथा—*'मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥'* ('बखानकर कहो' कहा था, इसीसे नाम, अर्थ उसका कारण तपोबल इत्यादि सब कहे)। दो हेतु कहनेका भाव कि यदि केवल हमारा ममत्व ही तुमपर होता और तुमने पूछा न होता तो भी हम न कहते, इसी तरह यदि केवल तुमने पूछा ही होता पर मुझे तुम्हारे ऊपर ममता न हुई होती तो भी मैं न कहता। यहाँ दोनों कारण उपस्थित हो गये, इससे कहना पड़ा।

टिप्पणी—३ (क) *'अब प्रसन्न मैं'* इति। *'अब'* कहनेका भाव कि तुमपर हमारा ममत्व हो गया, तुमको हमने अपना जाना, अब प्रसन्न हैं। पुन: भाव कि जब तुमने नीति बरती, नीतिके अनुकूल कपट किया तब हमको अच्छा लगा था—*'कीन्हेहु कपट लाग भल मोही'*, और जब तुम निष्कपट होकर अपना नाम बताने लगे तब हम प्रसन्न हो गये। (ख) *'संसय नाहीं'* कहनेका भाव कि कपट करनेसे प्रसन्नता होनेमें संदेह होता है, तुम संशय न करो कि 'हमने मुनिसे कपट किया, नाम न बताया, झूठ बोले कि हम मन्त्री हैं, तब हमपर प्रसन्न कैसे होंगे! केवल हमारी खातिरी हमारे संतोषके लिये ऐसा कहते हैं कि हम प्रसन्न हैं।' (निष्कपट हो गये हो इससे मेरी प्रसन्नतामें भी कुछ संदेह नहीं है।) प्रसन्नतामें विश्वास करानेके लिये *'संसय नाहीं'* कहा। (ग) *'माँगु जो भूप भाव मन माहीं'* इति। ☞छल करनेका और कोई उपाय न देख पड़ा तब वर माँगनेको कहा, यह सोचकर कि जो भी वर माँगेगा उसीमें ब्राह्मण भोजन करानेको कहेंगे। (कपटी मुनिने सोचा कि राजा अब पूरा काबूमें आ गया है, तब

इसके नाशका उपाय करना चाहिये। अतः अब वर माँगनेको कहा।) (घ) *'अब प्रसन्न मैं'* कहकर *'माँगु'* कहनेका भाव कि हमारी प्रसन्नता निष्फल नहीं होती। [वर प्रसन्नता होनेसे ही दिया जाता है, यथा—*'परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर माँगहु देउँ सो तोही।'* (३। ११) *'काग भुसुंडि माँगु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।'* (७।८३) इसीसे *'बर'* मँगवानेके लिये प्रथम अपनेको *'अब प्रसन्न'* कहा।] (ङ) *'भूप'* सम्बोधनका भाव यह है कि तुम सातों द्वीपोंके चक्रवर्ती राजा हो, इससे पृथ्वीके (भूलोकके) तो सब पदार्थ तुम्हारे पास हैं ही फिर भी तुम्हें कोई अभाव अवश्य होगा। तुमने कहा ही था *'मो पर कृपा करहु अब स्वामी।'* अतः जो वस्तु तुम चाहो सो माँगो। अर्थात् हम तुम्हें स्वर्गादि अपर लोकोंके पदार्थ भी देनेको समर्थ हैं।

प० प० प्र०— यद्यपि कपट मुनिने *'अब प्रसन्न'*''''''''*माँगु जो भूप भाव मन माहीं'*—ऐसा कहा। तथापि जिसके मनमें कुछ भी विषयवासना नहीं है, उससे यदि कोई एकाएक कहे कि *'माँगु जो भाव मन माहीं'* तो वह उसी क्षण कुछ भी माँगनेमें असमर्थ ही होगा, (पर राजाने तुरत वर माँगा), जो वर राजाने माँगा है वह तो बिना सोच-विचारके कोई भी न माँग सकेगा। सुतीक्ष्णजीकी हालत तो देखिये। जब भगवान्ने उनसे कहा—*'परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही॥'*, तब भक्तिकी आकांक्षा रखते हुए भी मुनिने क्या कहा?—*'मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा॥'* और प्रतापभानुने क्या माँगा—*'जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। एक छत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥'* क्या बिना पूर्व विचारके ऐसा वर कोई माँग सकेगा? *'कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें॥'* कहा तो सही, पर जो ज्ञानी जीवनमुक्त है, वह ऐसा वर किसीसे क्यों माँगेगा? देखिये तो, राजाने यहाँ भी *'चारि पदारथ'* को ही कहा, भक्तिका नाम भी नहीं लिया, भक्तिका स्मरण भी नहीं हुआ। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि प्रतापभानुको ऐश्वर्यकी लालसा थी, इसीसे उन्होंने पिताके राज्य देनेपर नहीं नहीं किया और सम्राट् होनेपर भी अधिक ऐश्वर्यकी लालसा उसके हृदयमें गुप्त रीतिसे बसी हुई थी, वह निष्कामकर्म वासुदेवार्पित करता था पर कर्तृत्वाहङ्कार नष्ट नहीं हुआ था। उसमें भक्तिका पूरा-पूरा अभाव था। (पूर्व १५९। ६-७ भी देखिये शृङ्खलाके लिये)

वि० त्रि०—*'माँगु जो भूप भाव मन माहीं'* इति। इस तरह वह भीतरी इच्छा जानना चाहता है। भीतरी इच्छा ही कमजोरी है, उसीकी पूर्तिके लिये आदमी अन्धा हो जाता है। धूर्त्त लोग सदा उसे जाननेकी चेष्टा करते हैं, क्योंकि उसे जान लेनेपर ठगनेमें बड़ी सुभीता होती है।

सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना॥६॥
कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें॥७॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। माँगि अगम बर होउँ असोकी*॥८॥

दो०—जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जिनि कोउ।
एक छत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥१६४॥

शब्दार्थ—कल्प—३३। ७ (मा० पी० भाग १) में देखिये। कल्पोंके नाम आगे दिये गये हैं।

अर्थ—राजा सुन्दर वचन सुनकर प्रसन्न हुआ, तपस्वीके चरणोंको पकड़कर बहुत तरहसे उसने विनती की॥६॥ हे दयासागर मुनि! आपके दर्शनसे चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) मेरे हथेलीपर हैं तो भी प्रभुको प्रसन्न देख दुर्लभ वर माँगकर (क्यों न) शोकरहित हो जाऊँ॥८॥ बुढ़ापा और मृत्युके दुःखोंसे शरीररहित हो, संग्राममें कोई जीत न सके, एक छत्र राज्य हो, पृथ्वीपर कोई शत्रु न रह जाय और सौ कल्पतक राज्य हो॥१६४॥

* पाठान्तर—बिसोकी (भा० दा०)।

टिप्पणी—१ (क) *'मुनि सुबचन……।'* वाञ्छित पदार्थ देनेको कहा, इसीसे इन्हें *'सुबचन'* कहा। ☞यहाँ राजाका मन, वचन और कर्म तीनोंसे मुनिके शरण होना दिखाया। मनमें हर्ष है, वचनसे विनय कर रहा है और तनसे चरण पकड़े है। (ख) *'कृपासिंधु मुनि'* का भाव कि राजाने प्रथम कृपा करनेकी प्रार्थना की थी, यथा—*'मो पर कृपा करिअ अब स्वामी।'* अब *'कृपासिंधु'* कहकर जनाते हैं कि आपने मुझपर असीम कृपा की। (बिना सेवा-शुश्रूषाके, बिना जप-तपके चन्द मिनटोंके समागममें इतनी बड़ी कृपा की कि मुँहमाँगा वर देनेको तैयार हो गये। अतः कृपासिन्धु जाना। वि० त्रि०) (ग) *'……दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें।'* इति। भाव कि चारों पदार्थ तो हमको पूर्वहीसे प्राप्त रहे हैं, यथा—*'अरथ धरम कामादि सुख सेवै समय नरेसु।'* (१५४) अब आपके दर्शनसे वे सब मेरे *'करतल'* में हो गये। अर्थात् (पहिले मुझे तो जरूर प्राप्त थे पर दूसरोंको देनेयोग्य मैं न था, अब आपके दर्शनोंसे मैं इस योग्य भी हो गया।) अब मैं चारों पदार्थ दूसरोंको दे सकता हूँ। (घ) *'प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी।……'*—भाव कि आपके दर्शनसे चारों पदार्थ करतल हो गये, अब आपकी प्रसन्नता देखकर अगम वर माँगता हूँ। वह दर्शनका महत्त्व था, यह प्रसन्नताका महत्त्व है। *'अगम'* अर्थात् जहाँतक किसीकी गति आजतक न हुई हो।

टिप्पणी २—*'जरा मरन दुख रहित तनु……।'* (क) *'तनु'* का भाव कि जैसा आपका तन जरामरण दुःखरहित है वैसा ही हमारा भी कर दीजिये। पुनः हम क्षत्रिय हैं, अतः हमारा तन ऐसा बलवान् कर दीजिये कि हमें कोई न जीत सके। (पुनः भाव कि **'शीर्यते इति शरीरम्'** सो शरीर जरा-मरण-रहित हो, यह महादुर्गम वर है। शरीरका नाम ही रोगायतन है, सो, दुःखरहित हो। *'समर जितै जनि कोउ'* प्राणीमात्रसे अजय हो जाऊँ, इस भाँति अलौकिक पराक्रम माँगा। (वि० त्रि०) (ख) *'एक छत्र'* अर्थात् छत्र एकमात्र हमारे ऊपर लगे; दूसरा छत्रधारी कोई राजा न हो। *'रिपुहीन महि……'* अर्थात् हमको जीतने योग्य कोई शत्रु सौ कल्पतक न हो।

नोट—१ *'कलप सत'* इति। यहाँ भानुप्रताप 'शत कल्प' तक राज्य होनेकी प्रार्थना करता है। अतः कल्पोंके सम्बन्धमें कुछ जानकारीकी आवश्यकता हुई।

अमरकोशमें कल्पके विषयमें यह उल्लेख है—**'मासेन स्यादहोरात्रः पैत्रो वर्षेण दैवतः। दैवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्मः कल्पौ तु तौ नृणाम्॥'** (१। ४। २१) अर्थात् हमारे (मनुष्योंका) एक मास पितरोंका एक दिन-रात होता है और हमारा एक वर्ष देवताओंका एक दिन-रात होता है। देवताओंके दो हजार युग-(अर्थात् हमारे दो हजार सत्ययुग, दो हजार त्रेता, दो हजार द्वापर और दो हजार कलियुग-) का ब्रह्माका एक दिन-रात होता है जिसे मनुष्यका दो कल्प कहा जाता है। एक सृष्टि दूसरा प्रलय। ब्रह्माके दिनको कल्प कहते हैं और रात्रिको कल्पान्त, कल्प, प्रलय, क्षय आदि कहा जाता है।

ब्रह्माके एक दिनको कल्प कहते हैं। जैसे हमारे यहाँ मासमें तीस दिन होते हैं और प्रतिपदा, पूर्णमासी और अमावस्या होती हैं वैसे ही ब्रह्माजीके प्रत्येक मासमें तीस दिनके तीस नामवाले कल्प और प्रतिपदा आदि होते हैं।

भा० ३। ११। ३४ की 'अन्वितार्थप्रकाशिका-टीका' में लिखा है कि (स्कन्दपुराणान्तर्गत) प्रभासखण्डके अनुसार श्वेतवाराहसे लेकर पितृकल्पतक, ब्रह्माजीके शुक्ल प्रतिपदासे अमावास्यातक, तीस दिनका एक मास होता है। इन तीसों कल्पोंकी बारह आवृत्ति होनेसे ब्रह्माका एक वर्ष होता है। ब्रह्माजीकी आधी आयुको 'परार्द्ध' कहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कल्पोंके नाम प्रत्येक मासमें वही रहते हैं।

प्रभासखण्डमें कल्पोंके नाम इस प्रकार हैं। यथा—'**प्रथमः श्वेतकल्पस्तु द्वितीयो नीललोहितः। वामदेवस्तृतीयस्तु ततो राथन्तरोऽपरः॥ रौरवः पञ्चमः प्रोक्तः षठः प्राण इति स्मृतः। सप्तमोऽथ बृहत्कल्पः कन्दर्पोऽष्टम उच्यते॥ सद्योऽथ नवमः प्रोक्त ईशानो दशमः स्मृतः। ध्यान एकादशः प्रोक्तस्तथा सारस्वतोऽपरः॥ त्रयोदश उदानस्तु गरुडोऽथ चतुर्दशः। कौर्मः पञ्चदशो ज्ञेयः पौर्णमासी प्रजापतेः॥ षोडशो नारसिंहस्तु समाधिस्तु ततः परः। आग्नेयोऽष्टादशः प्रोक्तः सोमकल्पस्ततोऽपरः॥ भावनो विंशतिः प्रोक्तः सुप्तमालीति चापरः।**

वैकुण्ठश्चार्चिषो रुद्रो लक्ष्मीकल्पस्तथापरः॥ सप्तविंशोऽथ वैराजो गौरीकल्पस्तथान्धकः। माहेश्वरस्तथा प्रोक्तस्त्रिपुरो यत्र घातितः॥ पितृकल्पस्तथान्ते च या कुहूर्ब्रह्मणः स्मृता। त्रिंशत् कल्पस्समाख्याता ब्रह्मणो मासि वै प्रिये॥' (४५—५२) इसके अनुसार कल्पोंके नाम क्रमशः ये हैं—१ श्वेत (श्वेतवाराह) कल्प, २ नीललोहित, ३ वामदेव, ४ रथन्तर, ५ रौरव, ६ प्राण, ७ बृहत्कल्प, ८ कन्दर्प, ९ सद्य, १० ईशान, ११ ध्यान, १२ सारस्वत, १३ उदान, १४ गरुड़, १५ कौर्म (ब्रह्माकी पूर्णमासी), १६ नारसिंह, १७ समाधि, १८आग्नेय, १९ सोमकल्प, २० भावन, २१ सुप्तमाली, २२ वैकुण्ठ, २३ आर्चिष, २४ रुद्र, २५ लक्ष्मी, २६ वैराज, २७ गौरी, २८ अंध्रक, २९ माहेश्वर आर ३० पितृकल्प।

शब्दसागरमें भी तीस नाम दिये हैं। उनमें प्रभासखण्डोक्त नामोंसे कहीं-कहीं भेद है। श० सा० में ११ व्यान; १७ समान; २० मानव; २१ पुमान; २३, २४, २५ क्रमशः 'लक्ष्मी, सावित्री और घोर'; २६ वाराह, २७ वैराज, २८ गौरी—है शेष सब दोनोंमें एक-से हैं।

इसी प्रकार अन्यत्र भी दो-तीन स्थलोंमें तीस कल्पोंके नामोंका उल्लेख मिलता है; परन्तु उनमें भी कुछ नामोंमें भेद है।

कल्पोंकी संख्या और नामोंमें बहुत मतभेद है, हम उसका भी उल्लेख यहाँ किये देते हैं। कोई सात, कोई अट्ठारह और कोई बत्तीस कल्पोंका निर्देश करते हैं।

'प्रतिष्ठेन्दुशेखर' में (स्नान) संकल्पमें सात नाम ये गिनाये हैं—प्राणकल्प, पार्थिवकल्प, कूर्मकल्प, अनन्तकल्प, ब्रह्मकल्प, वाराहकल्प और प्रलयकल्प।

भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्वके चतुर्थ खण्डमें अ० २५ में कल्पोंके नाम इस प्रकार हैं— **'कल्पाश्चाष्टादशाख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु। कूर्मकल्पो मत्स्यकल्पः श्वेतवाराहकल्पकः॥ तथा नृसिंहकल्पश्च तथा वामनकल्पकः। स्कन्दकल्पो रामकल्पः कल्पो भागवतस्तथा॥ तथा मार्कण्डकल्पश्च तथा भविष्यकल्पकः। लिङ्गकल्पस्तथा ज्ञेयस्तथा ब्रह्माण्डकल्पकः॥ अग्निकल्पो वायुकल्पः पद्मकल्पस्तथैव च। शिवकल्पो विष्णुकल्पो ब्रह्मकल्पस्तथा क्रमात्॥'** (५०—५३) अर्थात् अठारह कल्प कहे गये हैं, उनके नाम सुनो—कूर्मकल्प, मत्स्यकल्प, श्वेतवाराहकल्प, नृसिंहकल्प, वामनकल्प, स्कन्दकल्प और रामकल्प, भागवत, मार्कण्ड तथा भविष्यकल्प, लिङ्ग, ब्रह्माण्ड, अग्नि और वायुकल्प, पद्म, शिव, विष्णु और ब्रह्मकल्प।

'आह्निक सूत्रावली' में ३२ कल्पोंकी चर्चा हेमाद्रिकृत स्नान सङ्कल्पमें आयी है जिसमें रथन्तरको आदिमें गिनाया है और श्वेतवाराहको आठवाँ कहा है, यथा—**'परार्द्धद्वयजीविनो ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे एकपञ्चाशत्तमे वर्षे प्रथममासे प्रथमपक्षे प्रथमदिवसे अह्नो द्वितीये यामे तृतीये मुहूर्त्ते रथन्तरादिद्वात्रिंशत्कल्पानां मध्ये अष्टमे श्वेतवाराहकल्पे स्वायम्भुवादिमन्वन्तराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे कृतत्रेताद्वापरकलिसंज्ञकानां चतुर्णां युगानां मध्ये वर्तमाने अष्टाविंशतितमे कलियुगे तत्प्रथमे विभागे।'**

इस सङ्कल्पसे हमें ये बातें मालूम होती हैं—ब्रह्माकी आयु दो परार्द्ध (शब्दसागरके अनुसार हमारे दो शङ्ख वर्ष) हैं। उसमेंसे आधी आयु बीत चुकी। इस समय उनके एक्यावनवें वर्षके प्रथम दिनके दूसरे प्रहरका तीसरा मुहूर्त (दण्ड) चल रहा है। रथन्तरादि बत्तीस कल्पोंमेंसे यह श्वेतवाराह नामक आठवाँ कल्प इस समय वर्तमान है।

हमने कुछ विस्तारसे इसलिये लिखा है कि हमारे देशके वैज्ञानिक अपने सद्ग्रन्थोंको प्रमाण मानकर उसके अनुसार सृष्टिके सम्बन्धमें खोज करें। केवल पाश्चात्त्य वैज्ञानिकोंके पैरोंपर न चलें। ईसाई और मुसलिम खुदाई पुस्तकोंकी अशुद्धता इस सम्बन्धमें तो इतने ही दिनोंमें स्पष्ट हो गयी।

टिप्पणी—३ ***'कल्प सत'*** राज्य हो अर्थात् ब्रह्माके सौ दिनोंतक हमारा राज्य स्थिर रहे। यह भी ध्वनि है कि हमारे राज्यमें ब्रह्माके सौ दिनतक प्रलय न हो। इतने दिन तो राज्य रहे पर जरा-मरणरहित सदाके लिये हो जाऊँ। (पुनः 'कल्प शत' से मेरी समझमें 'सैकड़ों कल्प' यह अर्थ अधिक उत्तम है। भाव कि ब्रह्माकी आयुभर हम अमर रहें और हमारा राज्य अकण्टक हो। यह तृष्णाका स्वरूप है। राजा

चक्रवर्ती है, चारों पदार्थ प्राप्त हैं तो भी सन्तोष नहीं हुआ, तृष्णा शान्त न हुई। ☞सौ कल्प राज्य हो, ऐसा वर माँगनेसे पाया गया कि राजा न तो ज्ञानी ही था और न भगवद्भक्त ही; क्योंकि यदि ज्ञानी होता तो ऐसे महात्माको पाकर भगवत्तत्त्व पूछता, भगवत्प्राप्ति माँगता, राज्य न माँगता। तब यह कैसे कहा गया कि राजा ज्ञानी है? यथा—*'करै जे धरम करम मम बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥'* (१५६। २) उत्तर यह है कि यहाँ 'ज्ञानी' कहनेका अभिप्राय केवल यह है कि राजा धर्मात्मा था, वेद-पुराण सुननेसे उसे यह ज्ञान प्राप्त हो गया था कि बिना भगवान्‌को अर्पण किये कर्म बन्धनस्वरूप है इसीसे जो धर्म करता था वह भगवान्‌को अर्पण कर देता था। बस इतने ही अंशमें राजा 'ग्यानी' था)। (इस वरसे स्पष्ट है कि उसके भीतर प्रौढ़ देहाभिमान है और राज्यकी उत्कट वासना है। चाह ही दुःखरूपी वृक्षका दृढ़शक्तिक बीज है। चाह शेष रह जानेपर, जो सुख है वह भी दुःखरूप है। ज्ञानी राजा चाहके शेष रह जानेसे बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ना चाहता है। वि० त्रि०)

नोट—२ तापससे राजाने जैसा सुना वैसा ही वर माँगा। उसने सोचा कि जब ये आदिसृष्टिसे अपना एक ही तन स्थित रख सके हैं तब इनके लिये कौन बड़ी बात है कि सौ कल्पतक हमारा राज्य इसी शरीरसे करा दें। प्रो० दीनजी कहते हैं कि जिसकी राजसी प्रकृति होती है वह बड़ी आयु चाहता है, जैसे खिजाब लगाकर लोग ईश्वरको धोखा देना चाहते हैं।

नोट ३—राजाके ज्ञानी और भक्त होनेमें सन्देह नहीं वह अवश्य ज्ञानी था। पर यहाँ ठीक वही बात है जो श्रीशंकरजीने पूर्व कही है कि *'ग्यानी मूढ़ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ'* एवं *'राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई॥'* श्रीरामजी मनुजीके पुत्र होने जा रहे हैं। उसी लीलाके लिये उन्हें रावण भी तैयार करना है। आगे भी *'भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर'* यह जो कहा है वह भी इस भावका पोषक है। भावी हरि-इच्छाको भी कहते ही हैं।

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥ १॥
कालौ तुअ पद नाइहि सीसा। एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा॥ २॥
तपबल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह कें कोप न कोउ रखवारा॥ ३॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ सब* बिधि बिष्नु महेसा॥ ४॥
चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई॥ ५॥

शब्दार्थ—कारन (कारण)=वह जिसके बिना कार्य न हो। वह जिसका किसी वस्तु या क्रियाके पूर्व सम्बद्धरूपसे होना आवश्यक हो। साधन। वह जिससे दूसरे पदार्थकी सम्प्राप्ति हो। (श० सा०)

अर्थ—तापस राजाने कहा कि ऐसा ही हो, (पर इसमें) एक कारण है जो कठिन है, उसे भी सुन लो॥ १॥ राजन्! केवल विप्रकुलको छोड़कर काल भी तुम्हारे चरणोंपर मस्तक नवायेगा॥ २॥ तपस्याके बलसे ब्राह्मण सदा प्रबल रहते हैं, उनके कोपसे रक्षा करनेवाला कोई नहीं है॥ ३॥ हे राजन्! जो ब्राह्मणोंको वशमें कर लो तो विधि-हरि-हर सभी तुम्हारे हो जायँ॥ ४॥ ब्राह्मण-कुलसे जबरदस्ती नहीं चल सकती, मैं अपनी दोनों भुजाओंको उठाकर सत्य-सत्य कहता हूँ॥ ५॥

टिप्पणी १—*'कह तापस नृप ऐसेइ होऊ।'* इति। (क) तापस कहनेका भाव कि कपटी मुनिने यह जनाया कि हम तपस्वी हैं, हमारे तपके बलसे ऐसा होगा। *'ऐसेइ होऊ'* यह 'एवमस्तु' का अर्थ है। (ख) *'कारन एक कठिन।'* भाव कि एक कारण कठिन है जो तुमको अजर-अमर न होने देगा। वह कठिन कारण आगे कहता है। 'कारण कठिन है' अर्थात् हमसे इसका निवारण न हो सकेगा। (ग) *'सुनु सोऊ'* का भाव कि जो अगम वर हमने तुमको दिया है उसमें जो कठिन कारण है और

* १६६१ में 'सब' है। पाठान्तर—'बस'।

जो उस कठिन कारणका निवारण है वह भी हम कहते हैं, सुनो। (घ) *'एक'* का भाव कि इस कारणका उपाय हो जाय तो फिर वर रोकनेवाला दूसरा कोई कारण नहीं है। एकमात्र यही है दूसरा कोई नहीं।

टिप्पणी २—*कालौ तुअ पद नाइहि सीसा।'* (क) *'कालौ'* कहनेका भाव कि काल सबको खाता है सो भी तुम्हारे वशमें रहेगा। राजाने *'जरा मरन दुखरहित'* होनेका वर माँगा, उसीपर कपटी मुनि कहता है कि काल भी तुम्हारे चरणोंपर मस्तक नवायेगा अर्थात् वह भी तुम्हारी मृत्यु न कर सकेगा। तब औरोंकी गिनती ही क्या? (ख) *'एक बिप्रकुल छाड़ि।'* भाव कि ब्राह्मण कालसे भी प्रबल हैं। काल तुम्हारे वशमें रहेगा। त्रैलोक्य तुम्हारे वशमें रहेगा। एकमात्र ब्राह्मण वशमें नहीं रह सकते। ☞ राजाने जो वर माँगा है कि *'समर जितै जनि कोउ'* उसीके उत्तरमें कपटी मुनिने *'एक बिप्रकुल छाड़ि……'* कहा अर्थात् काल कुछ न कर सकेगा पर ब्राह्मणोंको तुम भारी वा महाकाल समझो। कालसे हम तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं पर ब्राह्मणोंसे नहीं, जैसा आगे कहते हैं—*'तप बल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह कें कोप न कोउ रखवारा।'* (कपटी मुनिने देख लिया कि भानुप्रतापका राज्य बिना ब्रह्मशापके जा नहीं सकता, अतः ब्राह्मणोंसे भय बतलाकर उसने ब्रह्मद्रोहका बीज बो दिया। वि० त्रि०)

टिप्पणी ३— (क) *'तपबल बिप्र सदा बरिआरा।'* इति। ब्राह्मणकुल तुम्हारे अधीन न होगा, यह कहकर अब उसका कारण कहते हैं कि तपबलसे ये सदा प्रबल हैं। तपका बल पूर्व कह चुके हैं। *'तप बल तें जग सृजै बिधाता।……'* इत्यादि। *'सदा बरिआरा'* कहनेका भाव कि सदा प्रबल कोई नहीं रहता, जब निर्बल हो जाते हैं तब दूसरा उनको जीत ले सकता है, किन्तु यह बात यहाँ न समझो। ये सदा प्रबल रहते हैं, इनका बल कभी नहीं घटता कि जो इन्हें कोई अधीन कर ले। यह न समझो कि हमें तो सौ कल्प रहना है, कभी तो इनका बल कम होगा तब वशमें कर लेंगे। (ख) *'तिन्ह कें कोप न कोउ रखवारा'* इति। तात्पर्य कि विप्रकोपसे हम भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते। (ग) *'जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ सब……॥'* तात्पर्य कि ब्राह्मणोंके वश हो जानेसे त्रिदेव भी तुम्हारी आज्ञानुसार चलेंगे। यथा—*'मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव। मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥'* (३। ३३) ☞ब्राह्मणोंको वशमें करनेको कहा पर उसका उपाय न कहा, इस विचारसे कि राजा जब पूछेगा तब बतायेंगे। युक्ति जल्दी न बतानी चाहिये, यह बात वह स्वयं आगे कहेगा, यथा—*'जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फुरै तबहि जब करिअ दुराऊ॥'* यदि बिना पूछे तुरन्त बता देता तो यह वचन झूठा पड़ जाता। (राजाको इसकी बात काटनेका मौका मिल जाता कि आपने हमसे 'युक्ति' बतानेमें किञ्चित् संकोच न किया और हमसे छिपानेको कहते हैं। ☞आगे जो युक्ति बाँधना है उसकी भूमिका यहींसे बाँध चला है) (घ) *'तौ तुअ सब बिधि बिष्नु महेसा'* का भाव कि जब उत्पन्न, पालन, संहार करनेवाले ही वशमें हो गये तब सब सृष्टि तो वश हो ही चुकी। (नोट—पूर्व तपकी प्रशंसा कर चुका है, इसीसे ब्राह्मणोंका बल भी तपसे ही कहा। भाव कि मैंने जो वर दिया वह तपोबलसे दिया। अतः मेरा वर तपोधनसे ही कट सकता है। और ब्राह्मण तपोधन हैं ही। राजा जानता है कि विप्रोंने जिसपर क्रोध किया उसको किसीने न बचाया इसीसे कहा कि उनको वशमें करो।)

टिप्पणी ४—*'चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई।……'* इति। (क) ब्राह्मणकुलसे जबरदस्ती करनेको मना करता है। भाव कि जैसे सब राजाओंको जबरदस्ती जीत लिया यथा—*'जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं॥'*, वैसी जबरदस्ती विप्रकुलके साथ नहीं चल सकती क्योंकि *'तप बल बिप्र सदा बरिआरा।'* (पुनः भाव कि ब्रह्मादि देवताओंपर भी जोर चल सकता है पर इनसे वश नहीं चलता। पुनः, *'बरिआई'* का भाव कि वे शस्त्रबलसे बश नहीं हो सकते। विश्वामित्र और वसिष्ठके विरोधसे यह सिद्ध हो गया है कि क्षात्रबलसे ब्रह्मबल बहुत अधिक है। वि० त्रि०) (ख) ☞*'सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई।'* प्रतिज्ञा वा प्रण करनेमें भुजा उठानेकी रीति है, यथा—*'पन बिदेह कर कहहि हम भुजा उठाइ*

बिसाल॥' (२४९) *'सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥'* (२। २९९) *'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।'* (३। ९) बातको अत्यन्त पुष्ट करनेके लिये भुजा उठाकर कहा। (ग) *'सत्य कहउँ'।* सत्य-पद दिया जिसमें राजा ब्राह्मणोंको अत्यन्त प्रबल समझे क्योंकि जबतक अत्यन्त प्रबल न समझेगा तबतक उनके वश करनेका उपाय ही क्यों पूछेगा। जिसमें उपाय पूछे इस अभिप्रायसे ऐसा कहा। (नोट—*'चल न बरिआई', 'दोउ भुजा उठाई'* और *'बिप्र श्राप बिनु'* शब्दोंसे गुसरीतिसे जानता है कि विप्रश्रापसे तुम्हारा नाश होगा।)

बिप्र-श्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहु काला॥६॥
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥७॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहुँ सर्वकाल कल्याना॥८॥
दोहा—एवमस्तु कहि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज कहहु त* हमहिं न खोरि॥१६५॥

शब्दार्थ—**मिलब**=मिलाप। **भुलाब**=भुलावा, भटकने या भूल जानेकी बात। त=तो।

अर्थ—हे राजन्! सुनो। ब्राह्मणोंके शाप बिना तुम्हारी मृत्यु किसी भी कालमें न होगी॥६॥ राजा उसके वचन सुनकर हर्षित हुआ (और बोला) हे नाथ! अब मेरा नाश न होगा। (वा, न हो)॥७॥ हे कृपानिधान! हे प्रभो! आपकी प्रसन्नतासे मेरे लिये सब कालमें कल्याण होगा (वा, हो)॥८॥ 'एवमस्तु' कहकर वह कुटिल कपटी (नकली) मुनि फिर बोला कि हमारा मिलना और अपना भटकना (यदि किसीसे) कहोगे तो हमारा कोई दोष न होगा॥१६५॥

टिप्पणी—१ (क) *'बिप्र-श्राप बिनु''''''नास नहिं कवनेहु काला।'* राजाने तो इतना ही माँगा था कि शरीर 'जरामरण दुख रहित' हो जाय, पर कपटी मुनि उसके हृदयका आशय समझ गया कि इनकी मरनेकी इच्छा नहीं है; इसीसे कहता है कि *'कवनेहु काला'* किसी कालमें तुम्हारा नाश नहीं होनेका। किसी कालमें अर्थात् नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, महाप्रलय आदिमें भी तुम बने रहोगे। ☞इससे राजापर अपनी परम प्रसन्नता और कृपा दिखा रहा है। जितना वर राजाने माँगा उससे अधिक दिया। देवता भी अजर-अमर हैं, पर महाप्रलयमें उनका भी नाश होता है और राजाका नाश कभी न होगा, यह अधिकता है, इसीसे राजा हर्षित हुआ। जैसा आगे कहते हैं—*'हरषेउ राउ बचन सुनि तासू।'* (ख) *'हरषेउ राउ'।* इससे सूचित हुआ कि कपटी मुनिने ब्राह्मणोंके कोपका बहुत भय दिखाया था। राजाके हृदयमें भय न हुआ, क्योंकि राजा ब्रह्मण्य है। इसीसे *'बिप्र-श्राप बिनु सुनु महिपाला'* यह सुनकर न डरा और *'तोर नास नहिं कवनेहु काला'* यह सुनकर प्रसन्न हुआ। (ग) *'नाथ न होइ मोर अब नासू।'* कपटी मुनिने जो कहा था कि तेरा नाश किसी कालमें न होगा वही वर राजा माँग रहा है कि अब मेरा नाश न होवे। [*'न होइ'* का भाव यह कि ब्राह्मण हमसे अप्रसन्न ही क्यों होंगे जो हमारा नाश हो। अतएव निश्चय है कि मेरा नाश अब न होगा।]

टिप्पणी—२ (क) *'तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना'* का भाव कि कल्याण निष्कण्टक अविनाशी राज्य, अविनाशी शरीर और सुखमय जीवन इत्यादि बहुत भारी सुकृतसे होते हैं, हमारे ऐसे सुकृत कहाँ हैं, यह सब आपके प्रसाद (प्रसन्नता) से, आपके प्रभुत्व (सामर्थ्य) से और आपकी समुद्रवत् कृपासे होंगे। (ख) *'मो कहुँ सर्वकाल कल्याना'* इति। जब कपटी मुनिने राजाको उसके माँगनेसे अधिक वर दिया कि *'तोर नास नहिं कवनेहु काला'* तब राजाने (यह सोचकर कि मैंने तो सौ कल्पतक राज्य माँगा है, सो तो इन्होंने पूर्व ही दे दिया, अब सदाके लिये अमर कर दिया तो यह निश्चय है कि सौ कल्पके बाद मेरा राज्य

* १६६१ में 'तहँ हमहि' पाठ है।

न रहेगा, शरीर अवश्य रहेगा, किन्तु पराधीन रहकर यदि जीवन भी बना रहा तो वह किस कामका? अतएव वह अब यह वर माँगता है कि मेरा 'सर्वकाल कल्यान' हो। अर्थात् शरीरपर्यन्त राज्य भी बना रहे, हम अविनाशी तो हुए ही, हमारा राज्य भी अविनाशी हो। 'सर्वकाल' अर्थात् सदा निष्कण्टक राज्य रहे। (नोट—पं० रामकुमारजीने *'होइ'* का अर्थ 'होवे' या 'हो' लिखा है। अर्थात् राजा वर माँगता है कि ऐसा हो। इसीसे आगे तापसने *'एवमस्तु'* कहा है। वि० त्रि० भी यही अर्थ करते हैं।)

टिप्पणी ३—*'एवमस्तु कहि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि'*……।' इति। [(क) जब 'तापस' कहा तब *'ऐसेइ होऊ'* भाषाके शब्द कहे और जब मुनि कहा तब *'एवमस्तु'* देववाणीका शब्द कहा, अर्थ एक ही है।] (ख) यहाँ कपट मुनि और कुटिल दो विशेषण देकर जनाया कि कपटी मुनि कपटी भी है और कुटिल भी। *'एवमस्तु'* कहनेमें कपट मुनि कहा, क्योंकि एवमस्तु कपटसे कहा गया है। राजाके इस कथनपर कि 'मेरा नाश न हो, सब कालमें कल्याण हो, तापसने वचनसे तो एवमस्तु कहा पर अन्तः-करणमें वह राजाके नाशका उपाय विचार रहा है, यही कपट और कुटिलता है और *'मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमहिं न खोरि'* ये वचन कुटिलताके हैं। (ग) भुला जानेमें ही इस कपटीके दर्शन हुए हैं, यथा—*'फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखेउँ पद आई॥'* अतएव *'भुलाब निज'* कहा। (घ) *'कहहु त हमहिं न खोरि'* हमारा दोष नहीं है अर्थात् हम पहिलेहीसे तुम्हें जनाये देते हैं, तुम आज्ञा न मानोगे तब हमारा दोष क्या? तुम्हारा नाश तुम्हारी करनीका फल होगा। पुनः भाव कि हम तुमसे न बताते, यह बात छिपा रखते, तो हमको अवश्य दोष लगता। किसीको अपनाकर फिर उससे दुराव करना दोष है (यह भूमिका वह पहले ही बाँध चुका है) यथा—*'अब जौं तात दुरावौं तोही। दारुन दोष घटै अति मोही॥'* (१६२। ४) अतएव दोषसे बचनेके लिये तुमको यह बात भी बता दी जिसमें पीछे यह न कहो कि आपने तो गुप्त रखनेको बताया न था। (ङ) ☞प्रथम बार जब वर दिया तब ब्राह्मणोंको वशमें करनेका आदेश किया, यथा—*'कह तापस नृप ऐसेइ होऊ'* इत्यादि। अब *'एवमस्तु'* कहकर अपनेसे भेंट होनेकी बात दूसरेसे कहनेको मना करता है। ऐसा कहनेमें कपटी मुनिका आन्तरिक अभिप्राय यह है कि राजा लोभके वश होकर दोनों बातें करे; क्योंकि इन दोनों बातोंमें तापसका हित है, उसका स्वार्थ सिद्ध होगा। कहनेको मना करनेमें गुप्त आशय यह है कि कोई जान लेगा तो हमारा भण्डा फूट जायगा, कपट खुल जायगा और प्रत्यक्ष मतलब शब्दोंका यह है कि युक्ति प्रकट कर देनेसे विघ्न होगा, इसीसे प्रकट करनेको मना किया।

नोट—*'मिलब हमार'* और *'भुलाब निज'* दोनों गुप्त रखनेको कहा। क्योंकि एक भी प्रकट होनेसे दूसरा अवश्य प्रकट हो जायगा। मन्त्री परम सयाना है, ताड़ जायगा कि किसी शत्रुने तापस वेष राजाके नाशके लिये बनाकर नाशका उपाय रचा है। वनमें ढुँढ़वाकर उसको मार ही डालेगा। इसीसे बड़ी युक्तिसे मना किया है।

तातें मैं तोहि बरजौं राजा। कहें कथा तव परम अकाजा॥ १॥
छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥ २॥
यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥ ३॥
आन उपाय निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं॥ ४॥

अर्थ—इसीसे मैं तुझे मना करता हूँ। हे राजन्! इस प्रसङ्गके कहनेसे तेरी अत्यन्त हानि होगी॥ १॥ छठे कानमें इस बातके पड़ते ही तुम्हारा नाश होगा,* हमारा यह वचन सत्य है॥ २॥ हे भानुप्रताप! सुनो,

* 'षट् कर्णे भिद्यते मन्त्रस्तथा प्राप्तश्च वार्तया। इत्यात्मना द्वितीयेन मन्त्रः कार्यो महीभृता॥' (सरयूदासजीकी गुटका)। अर्थात् सलाह की हुई बात छठे कानमें पड़ते ही फैल जाती है, इसलिये राजाको किसी एक प्रधान अमात्यके साथ ही सलाह करनी चाहिये।

इस बातके प्रकट होनेसे या विप्रशापसे तुम्हारा नाश होगा॥३॥ और किसी भी उपायसे तुम्हारा नाश न होगा चाहे हरि और हर ही मनमें कोप क्यों न करें॥४॥

नोट—१६६१ में *'कोपहि'* पाठ है। यहाँ हरिहरका निरादर सूचित करनेके लिये भी एकवचनका प्रयोग कहा जा सकता है।

टिप्पणी—१ (क) *'तातें मैं तोहि बरजौं।'* भाव कि मैं गुप्त रहता हूँ, मुझे कोई न जाने और जो कार्य करना है वह भी गुप्त रखनेयोग्य है (जैसा आगे कहेगा), यथा—*'जौं नरेस मैं करउँ रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥'* अत: मैं मना करता हूँ क्योंकि फिर काम न हो सकेगा। (ख) *'तव परम अकाजा'* अर्थात् विशेष कार्यकी हानि है। जो प्रथम कह आये कि *'जरा मरन दुखरहित तनु समर जितै जिनि कोउ।'''''* यह सब कार्य नष्ट हो जायेगा, तुम्हारा मरण होगा। मरण आगे कहता ही है, यथा—*'छठे श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार''''' ।'* अतएव मैं तुझे मना करता हूँ जिसमें *'हमहिं न खोरि।'* बातको स्पष्ट कह देनेसे दोष नहीं लगता, यथा—*'कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं।'* (२७४। ३) अकाजके दो अर्थ हैं। एक तो कार्यका नष्ट होना, दूसरे मरण होना, यथा—*'सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहु राजु अकाजेउ आजू॥'* (२। २४) यहाँ दोनों अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। (ग) *'छठे श्रवन परत।'* भाव कि (दो कान तुम्हारे, दो हमारे, हम दोनोंतक बात रही तबतक हानि नहीं है। जब तीसरेके कानोंमें पड़ेगी तभी छठे कानमें पड़ना कही जायगी अतएव) तीसरेसे न कहना । किसी दूसरेसे कहनेमें कपटी मुनिने अपना शाप लगा दिया कि यह कथा कही नहीं कि मृत्यु हुई। [*'छठें श्रवन'* पदसे श्लेषद्वारा यह गुप्त अर्थ प्रकट होता है कि कालकेतुके कानोंमें यह बात पड़ते ही अवश्य नाश होगा। मेरी वाणी ध्रुव सत्य होगी] (घ) *'नास तोर'* इति। पहले मृत्युका एक ही कारण था; यथा—*'कारण एक कठिन सुनु सोऊ॥ कालौ तुअ पद नाइहि सीसा। एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा॥'* अब मृत्युके दो कारण हुए जैसा आगे वह स्पष्ट कहता है, *'यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥'* (घ) *'सत्य मम बानी'* कहकर भय दिखाया जिसमें किसीसे कहे नहीं। वह शङ्कित है कि कहनेसे कहीं कोई हमारा छल भाँप न ले। (*'सत्य'* का भाव कि अनुनय-विनयसे इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। वि० त्रि०)

नोट—आदिसे बराबर उलटा नाम आया है। यहाँ नाशके साथ ठीक नाम 'भानुप्रताप' दिया है क्योंकि नाश तो इसीका होना है।

टिप्पणी—२ *'यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा'* इति। ☞कपटी मुनि हृदयमें कैसा शङ्कित है, यह शब्दोंमें दिखा रहे हैं। बात प्रकट होनेका अत्यन्त डर लगा हुआ है इसीसे पहले प्रकट करनेमें नाश होना कहता है तब द्विजश्रापसे। 'प्रकटना' मुख्य है, विप्रशाप *'अथवा'* में है अर्थात् गौण है। प्रकट करनेसे उसका कपट खुल जानेकी अत्यन्त सम्भावना है इसीसे प्रकट करनेको बारम्बार मना करता है और बारम्बार भय दिखाता है, यथा—*'मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमहिं न खोरि।'* (१), *'तातें मैं तोहि बरजौं राजा। कहें कथा तव परम अकाजा॥'* (२), *'छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥'* (३) और *'यह प्रगटे अथवा द्विजश्रापा'* (४) लगातार प्रत्येक चौपाईमें मना किया है। यहाँ 'विकल्प अलङ्कार' है। [नोट—क्रमसे भयप्रदर्शन उत्तरोत्तर अधिक होता गया है। प्रथम *'हमहिं न खोरि'* अर्थात् कहोगे तो हमें दोष न देना कि हमसे कहा न था। दूसरेमें *'तव परम अकाजा'* कहा अर्थात् तुम्हारा सब काम बिगड़ जायगा, हमारा क्या जायगा? दो बार तो कहनेसे मना किया। तीसरी और चौथी बार आज्ञा उल्लङ्घन करनेका फल दिखाया एवं प्रकट करनेमें अपना शाप दिया कि तेरा नाश होगा।]

टिप्पणी ३—*'आन उपाय निधन तव नाहीं। जौं हरि हर''''''* इति। (क) *'आन उपाय'* का भाव कि कोई भी तुम्हारे नाशका उपाय करे तो वह कारगर न होगा। (ख) *'जौं हरि हर कोपहिं'* का भाव कि इनके मारनेसे जगत् मरता है, इनके जिलानेसे जीता रहता है; पर इनके भी कोपसे तुम्हारा नाश न होगा। (ग) विप्रके कोपसे नाश होगा इससे जनाया कि ब्राह्मण त्रिदेवसे श्रेष्ठ हैं और विप्रकोप हरिहरके कोपसे

अधिक है, यथा—*'इंद्र कुलिस मम (सिव) सूल बिसाला। कालदंड हरिचक्र कराला॥ जो इन्ह्कर मारा नहिं मरई। बिप्ररोष पावक सो जरई॥'* (७। १०९) तात्पर्य कि हरिहरके कोपसे हम तुम्हारी रक्षा करेंगे, यथा—*'राखै गुर जो कोप बिधाता'* विप्रकोपसे हम नहीं बचा सकेंगे, यथा—*'तपबल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह कें कोप न कोउ रखवारा।'* (घ) ☞प्रथम जो कहा था कि *'जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ सब बिधि बिष्णु महेसा॥'* उसीको यहाँ *'जौं हरि हर कोपहिं'* कहकर स्पष्ट करते हैं। अर्थात् ब्राह्मणभक्तिसे प्रसन्न होकर त्रिदेव वशमें हो जाते हैं इसीसे उनके कोपसे नाश नहीं हो सकता। [नोट—पूर्व विधिहरिहरका वश होना कहा और क्रोधमें दोहीको कहा। कारण कि विधि तो उत्पत्ति भर करते हैं, सो जन्म तो हो ही चुका अब उनका कोई काम न रह गया। दूसरे, अपने द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तुको साधारण मनुष्य भी स्वयं नहीं नष्ट करता तब ब्रह्मा क्यों नष्ट करने लगे। पालन न करनेसे नाश होता है अतएव 'हरि' का नाम लिया और हर तो संहारके देवता ही हैं।]

सत्य नाथ पद गहिं नृप भाषा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा॥ ५॥
राखै गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥ ६॥
जौं न चलब हम कहें तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारें॥ ७॥
एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥ ८॥

दो०—होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखौं कोउ॥ १६६॥

शब्दार्थ—**राखा**=रक्षा की। **त्राता**=रक्षक, बचानेवाला।

अर्थ—राजाने मुनिके चरणोंको पकड़कर कहा कि हे नाथ! आप सत्य कहते हैं (भला) कहिये तो ब्राह्मण और गुरुके कोपसे किसने रक्षा की है? यदि ब्रह्मा कोप करें तो गुरु बचा सकते हैं।* पर गुरुसे विरोध करनेपर जगत्में कोई भी रक्षा करनेवाला नहीं॥ ६॥ जो मैं आपके कहनेपर न चलूँगा तो अवश्य नाश हो जाय, हमें इसका सोच नहीं॥ ७॥ पर, प्रभो! मेरा मन एक ही डरसे डर रहा है कि ब्राह्मण-शाप बड़ा कठिन (भयङ्कर) होता है॥ ८॥ ब्राह्मण किस प्रकार वशमें हों, यह भी कृपा करके कहिये। हे दीनदयालु! आपको छोड़कर मैं किसीको भी अपना हितकर नहीं देखता॥ १६६॥

टिप्पणी—१ (क) *'सत्य नाथ।'* मुनिने कहा कि हमारा वचन सत्य है, यथा—*'छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥'* राजा इसीको पुष्ट करता है कि आपका वचन सत्य है। (ख) *'पद गहि।'* तापसने कहा था कि हरिहर भी कोप करें तो भी किसी प्रकार नाश न होगा, यह सुनकर राजाको हर्ष हुआ। अतएव (कृतज्ञता और प्रसन्नता जनानेके लिये) चरण पकड़े, यथा—*'सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्ह बिधि नाना॥'* (पुनः, *'सत्य मम बानी'* से जैसे प्रतिज्ञापूर्वक कथन सूचित होता है वैसे ही राजाने **'*पद गहि*'** कहा कि सत्य है।) (ग) *'द्विज गुर कोप।'* मुनिने द्विजका कोप कहा था, यथा—*'यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा।'* राजाने द्विज और गुरु दोनोंका कोप कहा। तात्पर्य कि गुरुने कथा कहनेको मना किया, न माननेसे गुरुकोप हुआ, इसीसे राजाने द्विजकोप और गुरुकोप दोनों कहे। (घ) ☞राजाने अब कपटी मुनिको गुरु भी मान लिया, पिता और स्वामी तो पहले ही

---

* 'राखै गुरु०' सुन्दर कविकृत कवित्त इसी विषयपर पढ़ने योग्य है—'गोविन्दके किये जीव जात है रसातलको गुरु उपदेशे सोतो छूटे फंद ते। गोविन्दके किये जीव वश परें कर्मनके गुरुके निवाजे सो तो फिरत स्वच्छन्द ते। गोविन्दके किये जीव बूड़ै भवसागरमें, सुन्दर कहत गुरु काढ़े दुख द्वन्द ते। औरहू कहाँ लौं कछु मुख ते कहौं बनाइ गुरुकी तो महिमा है अधिक गोविन्द ते॥' (सुन्दर विलास)।

मान चुका था। *'मोहि मुनीस सुत सेवक जानी'* यहाँ पिता और स्वामी माना और *'द्विज गुर कोप कहहु को राखा'* यहाँ गुरु माना। (ङ) *'राखै गुर जौं कोप बिधाता।'* प्रथम हरिहरका कोप करना कह आये—*'जौं हरिहर कोपहिं मन माहीं।'* अब ब्रह्माका कोप कहते हैं। इस तरह सूचित किया कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीनोंके कोपसे गुरु बचा सकते हैं। गुरुके विरोधसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश कोई भी नहीं रक्षा कर सकते। उत्तरकाण्डमें कथा है कि शिवजीने शूद्रपर कोप करके शाप दिया तब गुरुने रक्षा की। बृहस्पतिका कोप इन्द्रपर हुआ तब वह राज्यभ्रष्ट हुआ, किसीने रक्षा न की, जब वह बृहस्पतिहीकी शरण गया तब फिर सब बन गया। शुक्रके कोपसे दण्डक राजा भस्म हो गये, किसीने रक्षा न की। वसिष्ठजीके कोपसे त्रिशंकुकी क्या दशा हुई। (नोट—प्रथम *'द्विज गुर कोप कहहु को राखा'* कहकर दोनोंको समान कहा, फिर गुरुकोपमें अधिकता दिखायी। यहाँ 'विशेष अलङ्कार' है।)

टिप्पणी २—(क) *'जौं न चलब हम कहें तुम्हारें……।'* इति। ☞राजाके मनमें है कि हमारा नाश न हो, यथा—*'नाथ न होइ मोर अब नासू।'* रहा गुरुके प्रतिकूल चलना, उससे अपना नाश अङ्गीकार करता है कि हमारा नाश हो, हमें सोच नहीं है। गुरुकी प्रसन्नतासे रक्षा होती है, यथा—*'सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुर प्रसाद रखवारा॥'* (२। ३०६) जब गुरुकी प्रसन्नता न होगी तब तो नाश होगा ही। (ख) *'नास होउ नहिं सोच हमारें'* का भाव कि हम नाशके योग्य काम ही न करेंगे तब हमारा नाश क्यों होगा, और जब नाशके योग्य काम ही करेंगे तब नाश होगा ही, इसमें हमारा ही दोष है; यह समझकर सोच नहीं है। (ग) *'एकहि डर डरपत मन मोरा।'* नाशके लिये दो डर दिखाये हैं, एक तो कथाका प्रकट करना, दूसरा विप्रश्राप, यथा—*'यह प्रगटें अथवा द्विज श्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥'* राजा कहते हैं कि इनमेंसे एक ही डरसे हमारा हृदय धड़कता है, दूसरेसे नहीं। इस कथनका तात्पर्य यह है कि दूसरा डर तो हमारे अधीन है। आपने प्रकट करनेको मना किया। हम न प्रकट करेंगे, यह तो हमारे वशकी बात है, पर दूसरा हमारे वशका नहीं है। इसीसे हमें भय लगता है। (घ) *'प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा'*। *'अति घोरा'* का भाव कि आप ब्रह्मा, विष्णु, महेशके कोपसे बचा लेनेको कहते हैं, ब्राह्मणके कोपसे नहीं, यथा—*'तप बल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह कें कोप न कोउ रखवारा॥'* इससे सिद्ध हुआ कि त्रिदेवका कोप घोर है और विप्रकोप अति घोर है। (वे रुष्ट होते ही शाप दे देते हैं और वह अप्रतिक्रिय होता है। यथा—*'इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरिचक्र कराला॥ जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। बिप्र रोष पावक सो जरई॥'* वि० त्रि०)

टिप्पणी ३— (क) *'होहिं बिप्र बस कवन बिधि'* इति। कपटी मुनिने प्रथम विप्रोंको वशमें करनेको कहा, यथा—*'जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा।'* विप्रोंके साथ जबरदस्ती करनेको मना किया, यथा—*'चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥'* अर्थात् जैसे राजाओंको भुजबलसे जीता, वैसे ब्राह्मण नहीं जीते जाते। (ध्वनि इसमें यह है कि इनके वश करनेका दूसरा उपाय है जो हम जानते हैं।) इसीसे राजा वह उपाय पूछता है जिससे वे वशमें हो जायँ। (ख) *'कहहु कृपा करि सोउ।'* *'सोउ'* का भाव कि जैसे कृपा करके वर माँगनेको कहा और वर दिया, वैसे ही कृपा करके यह भी कहिये। (वा, जैसे आपने बताया कि विप्रको भुजबलसे जीता नहीं जाता, और जैसे यह कहा कि विप्रोंको वश कर लो जिसमें वे कोप ही न करें; वैसे ही वश करनेका उपाय भी कहिये।) (ग) *'तुम्ह सम दीनदयाल निज हितू न देखौं……।'* ☞जो कपटीके पाले पड़ जाता है उसे कपटीके समान दूसरा कोई हितुआ (हितैषी) नहीं देख पड़ता। जैसे कैकेयीको कपटिन मंथराके समान हितैषी कोई न समझ पड़ा, यथा—*'तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कै भइसि अधारा॥'* (२। २३) *'निज हितू न'* अर्थात् मेरे तो आप ही सबसे बड़े हित हैं। जरा-मरण-दुःखरहित किया, सौ कल्पका निष्कण्टक राज्य दिया, ऐसा हितैषी कौन होगा। *'दीनदयाल'* का भाव कि और सब स्वार्थके हित हैं, आप दीनदयाल हैं, मेरी दीनता देखकर आपने दया की।

ब्राह्मणोंको वश करानेमें भी आपको छोड़कर दूसरा हितैषी नहीं देख पड़ता। [द्विजद्रोहका बीज उग गया। जो *'गुर सुर संत पितर महिदेवा। करै सदा नृप सब कर सेवा॥'*, वही राजा आज अपने स्वामी (महिदेव) को अपना वश्य करनेकी विधि पूछता है। (वि० त्रि०)]

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं। कष्ट साध्य पुनि होहि कि नाहीं॥ १॥
अहै एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु* एक कठिनाई॥ २॥
मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई॥ ३॥
आजु लगें अरु जब तें भएउँ। काहू के गृह ग्राम न गएउँ॥ ४॥
जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥ ५॥

शब्दार्थ—**कष्ट साध्य**=जिसके साधन वा यत्नमें बड़ा कष्ट हो, जिसका करना कठिन है। **असमंजस**=दुबिधा, अड़चन, कठिनाई।

अर्थ—राजन्! सुनो, संसारमें बहुतेरे उपाय हैं, पर उनका साधन कठिन है और फिर भी सिद्ध हों या न हों॥ १॥ (हाँ) एक उपाय बहुत ही सुगम है पर उसमें भी एक कठिनता है॥ २॥ हे नृप! वह युक्ति मेरे अधीन है और मेरा जाना तुम्हारे नगरमें हो नहीं सकता॥ ३॥ जबसे मैं पैदा हुआ तबसे आजतक मैं किसीके घर-गाँव नहीं गया॥ ४॥ और जो नहीं जाता हूँ तो तेरा काम बिगड़ जायगा, आज यह बड़ा असमंजस आ पड़ा है॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'बिबिध जतन'* इससे कपटी मुनिने अपनी बड़ी जानकारी दर्शित की। इससे जनाया कि संसारभरके सब यत्न हमारे जाने हुए हैं। राजाने पूछा था कि विप्र कौन विधिसे वश हों वह उत्तर देता है कि एक-दो विधियाँ नहीं किंतु अगणित विधियाँ वश करनेकी हैं। (ख) *'जग माहीं'* का भाव कि जगत्‌के लोग जानते हैं। इस तरह जगत्‌भरके यत्नोंको सामान्य वा साधारण सूचित करके तब अपने यत्नको विशेष और सुगम बताता है जिसमें हमारे कहे हुए यत्नमें श्रद्धा हो। (ग) *'अहै एक अति सुगम उपाई'* इति। पूर्व जगत्‌के उपाय कहे; अब अपना उपाय बताता है। दोनोंमें भेद दिखाते हैं। वहाँ *'बिबिध'* उपाय, यहाँ *'एक'* उपाय। वे कष्टसाध्य हैं, यह *'अति सुगम'* अर्थात् इस उपायमें कठिनता नहीं है [वहाँ कष्ट उठानेपर भी सन्देह है कि कार्य सिद्ध हो वा न हो और यह तो अपने अधीन है। अतः इसमें सफलता निश्चित है। *'कष्ट साध्य पुनि होहि कि नाहीं'* सुनकर राजा निराश हुआ, उदासी छा गयी तब कपटी मुनिने श्रद्धा बढ़ानेवाली बात कही कि 'एक' बहुत ही सुगम उपाय है। वह उपाय 'एक' ही है दूसरा नहीं। *'एक'* कहनेमें भाव कि और सब पराधीन हैं। जिनमें मेरी जरूरत नहीं वे सब कष्टसाध्य हैं। *'अति सुगम'* वही एक है। *'अति सुगम'* कहा, जिसमें राजा इसके लिये हठ करे]। (घ) *'तहाँ परंतु एक कठिनाई।'* उपाय तो अति सुगम है, उपायमें कठिनता नहीं है, कठिनता उससे पृथक् है। भाव कि जगत्‌के जितने उपाय हैं उनके करनेमें कठिनता है और इस उपायके करनेमें कठिनता नहीं है। कठिनतामें इतना ही भेद है। पर कठिनता इसमें जो है वह दूसरी बातकी है जो आगे कहता है, उपाय कठिन नहीं है। ☞उपायको अत्यन्त सुगम और विशेष कहकर तब एक कठिनाई कही जिसमें राजा उपायके लोभसे कठिनता अङ्गीकार कर ले। अर्थात् चलनेके लिये विनय करे। ऐसा ही हुआ भी। ☞प्रथम वर देकर वरके सिद्ध होनेमें एक कठिन कारण लगा दिया कि ब्राह्मणोंको छोड़ सभी तुम्हारे वशमें होंगे, ब्राह्मणोंको वशमें करो—यह अपना प्रयोजन सिद्ध किया।—*'कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥'* और यहाँ वशमें करनेके उपायमें कठिनाई कहता है कि यह उपाय मेरे अधीन है, यह भी अपना प्रयोजन सिद्ध किया।

* १६६१में 'परतु' है।

वि० त्रि०—सरल पुरुषका तबतक पतन नहीं होता, जबतक वह कुटिल न हो जाय, अतः पतन चाहनेवाले हानि-लाभ दिखलाकर उसे कुटिलताकी ओर अग्रसर करते हैं। कपटी मुनिने इसे पहले मन्त्रीसे बात छिपाना सिखाया और अब छल (माया) को स्थान देनेके लिये विवश कर रहा है।

टिप्पणी—२ (क) *'मम आधीन जुगुति नृप सोई।'* अर्थात् इस युक्तिको जगत्‌में दूसरा कोई नहीं जानता, एकमात्र हम ही जानते हैं, वेदों-पुराणोंमें भी नहीं है। तापसका यह कथन सत्य ही है। अन्न खानेसे सब ब्राह्मण वशमें हो जायँ ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं है। ☞प्रथम यत्न कहा, यथा—*'सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं'* फिर उपाय कहा—*'अहै एक अति सुगम उपाई'* और अब युक्ति कहता है—*'मम आधीन जुगुति······।'* इस तरह *'जतन'*, *'उपाई'* और *'जुगुति'* को पर्याय जनाया। (ख) ☞जब राजा मिले तब उनसे प्रीति करनी पड़ी। उस समय मुनिने कहा था कि *'अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावौं काहु'* अब राजाके नगरमें जाना पड़ेगा, इसीसे कहता है कि *'मोर जाब तव नगर न होई।'* यही कठिनाई है कि 'हम जा नहीं सकते' क्यों नहीं जा सकते यह आगे कहते हैं। (ग) *'आजु लगें अरु जब तें भएऊँ।······'* इति। *'जब तें भएऊँ'* से सूचित किया कि हम वनमें ही पैदा हुए अर्थात् मुनिकुलमें वनहीमें रहे। (घ) *'काहू के गृह ग्राम न गएऊँ।'* पूर्व नगरको कह चुका है, *'मोर जाब तव नगर न होई।'* अब 'ग्राम और घर भी नहीं जाता' यह कहता है। तात्पर्य कि हम परम विरक्त हैं इससे ग्राम, पुर, नगर एवं किसीके घर कहीं भी नहीं जाते। यह प्रथम ही कह चुका है कि आजतक हमें कोई भी मनुष्य न मिला क्योंकि हम गुप्त रहते हैं, यथा—*'ताते गुपुत रहौं बन माहीं।'* और न आजतक हम बस्तीमें गये यह यहाँ कहा। न गये क्योंकि हमें किसीसे कोई प्रयोजन नहीं है, यथा—*'हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं।'* इसपर यदि कहें कि बिना किसी मनुष्यके मिले सब बातोंकी जानकारी आपको कैसे हुई तो इसे प्रथम ही कह आये हैं कि *'गुर प्रसाद सब जानिअ राजा।'*

टिप्पणी ३— (क) *'जौं न जाउँ तव होइ अकाजू।'* इति। *'मोर जाब तव नगर न होई'* इस कथनसे कपटकी बात निर्जीव हो गयी (अर्थात् आगे कपट-छल करनेकी बात ही खतम हो गयी), अतएव उसे पुनः सजीव करता है कि *'जौं न जाउँ······।'* (ख) *'बना आइ असमंजस।'* भाव कि हमने असमंजस होनेका काम नहीं किया, असमंजस स्वयं आकर बन गया अर्थात् अच्छी तरह असमंजस हो गया कि टालने योग्य नहीं है। (ग) *'आजू'* का भाव कि अबतक हमें कोई न मिला था इसीसे कभी असमंजसका योग न लगा था, आज तुम्हारे मिलनेसे असमंजसका अवसर प्राप्त हो गया। (घ) ☞कपटी मुनि प्रत्यक्षमें राजाके अकाजको बचाता है, यथा—*'कहें कथा तव परम अकाजा'*, *'जौं न जाउँ तव होइ अकाजू।'* और काज करनेको कहता है, यथा—*'अवसि काज मैं करिहौं तोरा।'* (१६८। ३) *'सब बिधि तोर सँवारब काजा।'* (१६९। ६)

नोट—*'मम आधीन'* अर्थात् और कोई इसे नहीं जानता न कर सकता है। *'गृह ग्राम न गएऊँ'* अर्थात् घरकी कौन कहे ग्रामसे होकर भी न निकला। वह उपाय मेरे अधीन है यह सुनकर राजा प्रार्थना करता परंतु जब उसने कहा कि मैं किसीके घर-गाँव कभी नहीं गया तब राजा क्या कहता? मुनिसे हठ न कर सकता था। कपटी मुनिने यह समझकर फिर अपने वचनोंको सँभाला और कहा कि *'जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना····'* जिसका भीतरी अभिप्राय यह है कि मैं अवश्य जाऊँगा, यदि किंचित् भी प्रार्थना करोगे। *'बना आइ'* का भाव यह कि होनहारवश हरि-इच्छासे ऐसा असमंजस आप ही आ पड़ा, मैं तुमको बुलाने तो गया न था। असमंजस यह कि न जाऊँ तो तेरा काम बिगड़ता है और जाता हूँ तो मुझे दोष लगेगा, इससे न रह ही सकता हूँ और न जा ही सकता हूँ। मेरा नियम भङ्ग न हो और तुम्हारा काम भी बन जाय, इन दोनों बातोंका सामंजस्य नहीं बैठता। (रा० प्र०, पंजाबीजी) यहाँ 'सन्देह अलङ्कार' है। (प्र० सं०)

☞लोभसे अन्धा करके ही धूर्त्त संसारको ठगते हैं। आँख खोलकर यदि देखा जाय तो जनताको वही धूर्त्त वश करनेमें समर्थ होता है, जो अपने प्रलोभनका विश्वास जनताको करा देनेमें समर्थ होता है। बड़े-बड़े बुद्धिमान् ऐसे ही प्रलोभनसे अन्धे होकर महाधूर्त्तको महात्मा मानकर मारे जाते हैं। स्वार्थमें अन्धा होकर राजाने यह न समझा कि केवल नीतिमत्ता तथा सरलतादि गुणको देखकर घंटेभरमें एक महाविरक्तको ऐसी प्रीति कैसे उत्पन्न हो सकती है कि महादुर्लभ वर देकर अपने तपको क्षीण करे और अपने जन्मभरके नियम तोड़ दे। (वि० त्रि०)

अलङ्कार—'*होहिं कि नाहीं*' में वक्रोक्ति है। '*मोर जाब तव नगर न होई।*' इसका समर्थन ज्ञापक हेतुद्वारा किया कि जबसे पैदा हुआ कहीं नहीं गया—'काव्यलिङ्ग अलङ्कार' है।

सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥ ६॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥ ७॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥ ८॥

दोहा—अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल॥ १६७॥

शब्दार्थ—**नीति**=सदाचार, मर्यादाका व्यवहार। **मौलि**=मस्तक।

अर्थ—यह सुनकर राजा कोमल मीठे वचन बोला—हे नाथ! वेदोंने ऐसी नीति कही है॥ ६॥ (कि) बड़े लोग छोटोंपर स्नेह करते हैं। पर्वत अपने सिरोंपर सदा तिनकेको धारण किये रहते हैं॥ ७॥ अथाह समुद्रके मस्तकपर फेन सदा बहा करता है। पृथ्वी अपने सिरपर सदा धूलि धारण किये रहती है॥ ८॥ ऐसा कहकर राजाने पाँव पकड़ लिये (और बोला) हे स्वामी! कृपा कीजिये। हे प्रभो! हे सत्पुरुष! हे दीनोंपर दया करनेवाले! मेरे लिये दुःख सहिये॥ १६७॥

☞कपटी मुनिने अपनी चिकनी-चुपड़ी बातोंसे राजाको मोहित करके स्वार्थी बनाया और आप परमार्थी बना रहा। प्रथम जब राजाने बड़ी प्रार्थना की तब नाम बताया, यथा—'*मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥*' (१) फिर विप्रोंके वश करनेका उपाय बड़ी विनती करनेपर बताया, यथा—'*होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ। तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखौं कोउ॥*' (२) और अब राजाके घर चलनेमें राजासे प्रार्थना करा रहा है। (नोट—'*गरजमंद बावला*' यह मसला यहाँ चरितार्थ हो रहा है।)

टिप्पणी—१ (क) '*सुनि महीस बोलेउ*'। राजा नीतिके ज्ञाता होते हैं, यथा—'*सोचिय नृपति जो नीति न जाना*'। राजा यहाँ महात्मासे नीति कहते हैं, अतएव '*महीस*' पद दिया। (ख) '*निगम असि नीति बखानी*' इति। प्रथम ही दिखा आये कि राजा वेदविधिके अनुकूल चलता है, इसीसे वह वेदोंका प्रमाण देता है, यथा—'*प्रजा पाल अति बेद बिधि*' '*भूप धरम जे बेद बखानें। सकल करै सादर सुख मानें॥*' '*जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग। बार सहस्र सहस्र नृप किये सहित अनुराग॥*' तथा यहाँ '*सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥*' पुनः [(ग) वेदोंका प्रमाण दिया, क्योंकि महात्मा लोग वेदोंके मार्गपर चलते हैं, पुनः इससे वेदोंकी साक्षी देते हैं कि राजनीतिसे इससे विरोध है, छोटोंसे प्रेम करना राजनीतिके विरुद्ध है, यथा—'*प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।*' (६। २३) पुनः, भाव कि वेद अनादि हैं, उनकी अतुलित महिमा है, यथा—'*अतुलित महिमा बेद की तुलसी किये बिचार। जो निंदत निंदित भएउ बिदित बुद्ध अवतार॥*' (दो० ४६४) अतएव वेदोंकी रीति कही।] (घ)'*बोलेउ मृदु बानी*' अर्थात् जैसी प्रार्थनाकी रीति है वैसी।

टिप्पणी—२ (क) '*बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं*' इसके तीन उदाहरण देते हैं। पर्वत, समुद्र और

पृथ्वी। ☞यहाँ उपदेशभागमें यह बताते हैं कि कैसा ही बड़ा क्यों न हो पर (अपनेसे) बड़ेके पास लघु होकर रहना चाहिये, जैसे राजा भानुप्रताप साधुके समीप अपनेको तृण समझे हैं। पर्वत, समुद्र और पृथ्वी ये तीनों 'बड़े' की अवधि (सीमा) हैं तथा ये तीनों प्रसिद्ध हैं; अतएव इन तीनका उदाहरण बड़प्पनमें दिया। (ख) *'जलधि अगाध मौलि बह फेनू।.......'* इति। ☞पर्वतके साथ *'सदा'* और पृथ्वीके साथ सदाका पर्याय *'संतत'* पद दिया है, यथा—*'गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं', 'संतत धरनि धरत सिर रेनू।'* समुद्रके साथ सदा पद नहीं कहा। यह भी साभिप्राय है। तात्पर्य यह कि गिरिपर तृण सदा रहता है और पृथ्वीपर रज (धूलि) सदा रहती है, पर समुद्रमें फेन सदा नहीं रहता। (पुनः *'संतत'* शब्द दोनोंके मध्यमें देहलीदीपक है,—*'जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥'* इस तरह संततको *'जलधि'* के साथ भी लगा सकते हैं। रा० प्र० का भी मत यही है कि समुद्रके मस्तकपर फेन सदा नहीं रहता)। (ग) पर्वत बहुत हैं, इसीसे उसके साथ *'सिरनि'* बहुवचन पद दिया। समुद्र एक है इसीसे मौलि एकवचन पद दिया। इसी तरह पृथ्वीके साथ *'सिर'* एकवचन कहा। (घ) ☞तीन उदाहरण देकर तीन प्रकारकी बड़ाई कहते हैं—ऊँचाईकी, नीचाईकी और विस्तारकी। ऊँचाईमें पर्वत, गम्भीरता (अगाधता) में समुद्र और विस्तारमें पृथ्वीसे बड़ा कोई नहीं है। (पुनः जल, थल, नभ—ये संसारमें तीन हैं, तीनोंमेंसे एक-एक 'बड़े' का दृष्टान्त दिया। जलमें समुद्र सबसे बड़ा, थलमें पृथ्वी और आकाशमें पर्वत सबसे बड़े)। (ङ) ये तीनों जड पदार्थ हैं। जडका ही उदाहरण देनेमें भाव यह है कि यद्यपि ये तीनों 'जड' हैं तथापि ये अपने बड़प्पनको नहीं छोड़ते। जब कि जडोंमें भी जो सबसे बड़े हैं उनकी यह उत्तम रीति है तब आप तो 'चेतन' हैं, महात्मा हैं, आप अपने बड़प्पनका क्यों न निर्वाह करें? यहाँ 'दृष्टान्त अलंकार' है।

वि० त्रि०—सिरपर तृण धारण दासत्व स्वीकारके लिये किया जाता है। पूर्वकालमें जब दास-प्रथा थी, जो लोग अपनेको बेचते थे, वे सिरपर तृण धारण करते थे। पर्वतकी गणना परहितैकव्रत संतोंमें है, सो अपने आश्रितोंके लिये दासताका चिह्न धारण करनेमें संकोच नहीं करता। आप ऐसे विरक्तोंको भी आश्रितके लिये नगर और घर जानेमें संकोच न करना चाहिये। समुद्र अगाध है, अपार है, बड़े-बड़े पुरुषार्थियोंका पुरुषार्थ उसमें नहीं चलता, पर आश्रित होनेके कारण फेन अवस्तु होनेपर भी उसके सिरपर विचरण करता है। आप भी तपोनिधि हैं, आपकी महिमा अगाध और अपार है। मैं आपका आश्रित हूँ, अवस्तु हूँ, मेरे हितको अपनी तपस्याके ऊपर स्थान दीजिये, मेरे कल्याणकी ओर देखिये, अपनी महिमापर दृष्टिपात न कीजिये। पृथ्वी-जैसा गुरु कौन होगा और रेणु-सा लघु कौन है? आश्रित होनेके कारणसे ही पृथ्वी उसे सदा सिरपर धारण करती है। आप गुरु हैं, मुझ-जैसे लघुकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ हैं।

टिप्पणी—३ *'अस कहि गहे नरेस पद।.....'* इति। (क) प्रभु, सज्जन और दीनदयाल सम्बोधन करके, विनय करके चरण पकड़ लिये। भाव यह है कि पहले यह कहा कि बड़े छोटोंको सिरपर धारण करते हैं। इसमें राजाकी धृष्टता पायी जाती है कि यह भी महात्माके सिरपर चढ़ना चाहता है। इसीसे विनीत वचन कहकर चरण पकड़कर जनाता है कि मैं आपके सिरपर चढ़ना नहीं चाहता, मैं तो आपका चरणसेवक हूँ, एकमात्र आपके चरणोंका ही अवलम्ब चाहता हूँ। अथवा पुनः, भाव कि महात्माको कार्यके लिये ले जाना चाहता है और उनका नियम है कि वे कहीं जाते नहीं, अतएव अत्यन्त आर्त्त होकर चरण पकड़े। आर्त्तदशामें भी चरण पकड़नेकी रीति है, यथा—*'सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन। गहेसि जाइ मुनिचरन तब कहि सुठि आरत बैन॥'* (१२६) (ख) *'स्वामी होहु कृपाल।'* भाव कि आप स्वामी हैं, मैं आपका दास हूँ। दास जानकर कृपा कीजिये। (ग) *'मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल'* इति। भाव कि दासके लिये 'प्रभु' दुःख सहते हैं, उसपर भी आप सज्जन हैं और *'संत सहहिं दुख परहित लागी'* यह संत-स्वभाव ही है। पुनः आप दीनदयाल हैं, मैं दीन हूँ, दीनोंपर दया करना सन्त-लक्षण है, यथा—*'कोमल चित दीनन्ह पर दाया। संत सहज स्वभाव खगराया॥'* प्रभु, सज्जन

और दीनदयाल ही दीनोंपर कृपा कर सकते हैं तथा दूसरोंके लिये दुःख सहते हैं। इस तरह प्रयोजनके अनुकूल विशेषण दिये। यहाँ 'परिकराङ्कुर अलङ्कार' है। (घ) *'दुख सहिअ'।* यहाँ दुःख क्या है? अपने नियमको तोड़ना। *'काहू के गृह ग्राम न गएऊँ'* यह अपना नियम छोड़कर हमारे यहाँ चलनेमें आपको दुःख होगा, उसे सहिये अर्थात् हमारे यहाँ चलिये।

वि० त्रि०—आशाके दासोंकी गति दिखलाते हैं। सम्राट् होकर आशाकी डोरीमें पशुओंकी भाँति बँधा हुआ दीन हो रहा है। यही स्वार्थान्धिता उसके नाशका कारण होगी।

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना॥ १॥
सत्य कहौं भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही॥ २॥
अवसि काज मैं करिहौं तोरा। मन तन[1] बचन भगत तैं मोरा॥ ३॥
जोग जुगुति तप[2] मंत्र प्रभाऊ। फलै तबहिं जब करिअ दुराऊ॥ ४॥

शब्दार्थ—*जोग, तप, मंत्र*—३७। १० (मा० पी० भाग १। ८४। ८ की व्याख्या देखिये।)

अर्थ—राजाको अपने वशमें जानकर वह कपटमें प्रवीण तापस बोला॥ १॥ हे राजन्! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। मुझे जगत्‌में कुछ भी कठिन नहीं है॥ २॥ मैं तेरा काम अवश्य करूँगा। तू मन-कर्म-वचन तीनोंसे मेरा भक्त है॥ ३॥ योग, युक्ति, तप और मन्त्रके प्रभाव तभी फलीभूत होते हैं जब गुप्त रखे जाते हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'आपन आधीना।'* चरण पकड़कर दीन वचन कहकर विनती करना अधीनता जनाता है। ☞कपटी मुनिने जो कुछ भी कहा वह सब राजाको वशमें जानकर ही कहा; जैसे कि (१) वशमें जानकर नाम बताया, यथा—*'देखा स्वबस करम मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी॥'* (२) वशमें जानकर वर दिया, यथा—*'सुनि महीस तापस बस भएऊ।⋯'* इत्यादि। (३) और अब वशमें जानकर युक्ति बताता है। (ख) *'बोला तापस कपट प्रबीना'* अर्थात् कपटमें प्रवीण है इसीसे कपटकी बात बोला। अपने वश जानकर अर्थात् यह निश्चय समझकर कि अब कपट करनेमें राजा कुछ कुतर्क न करेगा। (*'कपट प्रबीना'* में यह भी भाव है कि कपटमें परम चतुर है, इसका कपट लखा नहीं जा सकता, यथा—*'कपट चतुर नहिं होइ जनाई।'* (२। १८) (ग) **'सत्य कहौं'** का भाव कि अपने मुख अपनी बड़ाई न करनी चाहिये। बड़ाई करना दोष है। मैं अपनी बड़ाई नहीं करता, केवल एक सत्य बात कहता हूँ क्योंकि झूठ बोलना बड़ा पाप है, यथा—*'नहिं असत्य सम पातक पुंजा'।* हम झूठ नहीं बोलते। पुनः, *'जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही'* ऐसा कहनेमें असत्यकी सम्भावना होती है क्योंकि पूर्णकाम एक ईश्वर ही है, जीव पूर्णकाम नहीं है, इसीसे असत्यका सन्देह *'सत्य कहौं'* कहकर दूर किया। (घ) *'तोही'* का भाव कि तू मन-वचन-कर्मसे हमारा भक्त है, तुझसे दुराव करना महापाप है, यथा—*'तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहिपर तोरें॥', 'अब जौं तात दुरावौं तोही। दारुन दोष घटै अति मोही॥'* अतएव तुझसे कहता हूँ। (ङ) *'जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही'।* जैसा कि प्रथम कहा था कि *'जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं॥'*

वि० त्रि०—कपट मुनि जब राजामें अत्यन्त श्रद्धा देखता है, तब अपनी महिमासूचक एक बात कहता है, फिर उसके परिपाकके लिये समय देता है। यथा—*'सब प्रकार राजहिं अपनाई। बोलेउ अधिक सनेहु जनाई॥ सुनु सतिभाउ कहौं महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला॥'* जब राजामें फिर श्रद्धाका

---

१. क्रम=१७२१, १७६२, छ०। तन—१६६१, १७०४। २. जप=१७२१, १७६२, छ०। तप—१६६१, १७०४ को० रा०।

उद्रेक उठता है तब उससे अधिक महिमासूचक बात कहता है। यथा—*'देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी॥ नाम हमार एकतनु भाई।'* अब उसी बातको जमानेके लिये बातें करता जाता है फिर जब देखता है कि राजाकी श्रद्धा बढ़ती ही जाती है, अब तो मेरे अधीन हो गया, जो चाहूँगा कराऊँगा, तब कपटमें प्रवीण तापस बतलाता है कि मुझे संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है, यह बात मैं तुमसे कहता हूँ। दूसरेसे अपना भेद नहीं खोलता, *'सत्य कहों'*—भाव कि यह शंका न करो कि कदाचित् मेरा किया हुआ उपाय भी निष्फल हो, वह निष्फल हो ही नहीं सकता। मेरे लिये सब कुछ सुलभ है।

टिप्पणी—२ (क) *'अवसि काज मैं करिहौं'* इति। प्रथम कार्य करनेमें असमंजस कहा, यथा—*'जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥'* जब राजाने प्रार्थना की तब कहा कि अवश्य करूँगा। (ख) राजाकी तापसमें मन, कर्म, वचनसे भक्ति है। राजाने स्तुति की; *'बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं', 'संतत धरनि धरत सिर रेनू',* यह वचनकी भक्ति है। *'अस कहि गहे नरेस पद'* यह तन (कर्म) की भक्ति है और *'स्वामी होहु कृपाल'* यह मनकी भक्ति है। मनसे स्वामी माना। (ग) *'जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ····'* इति। इसका प्रत्यक्ष भाव यह है कि ये दुराव करनेसे फलीभूत होते हैं। और उसका आन्तरिक अभिप्राय यह है कि प्रकट होनेमें कोई चतुर मनुष्य हमारे कपटको भाँप न ले और जो युक्ति बतावे तो युक्ति तो कुछ है ही नहीं। मैं रसोई बनाऊँ तुम परोसो, इसमें कौन युक्ति है। यह केवल ब्राह्मणोंके मांसकी रसोई करनेका उपाय है। इसीसे युक्ति छिपायी, राजाको न बतायी। प्रथम अपना मिलना प्रकट करनेको मना किया, उसमें शाप लगा दिया कि बताओगे तो मर जाओगे और अब युक्ति बतानेमें कार्यकी असिद्धि लगा दी। अर्थात् यदि हम तुमको बता देंगे तो तुम्हारा कार्य न सिद्ध होगा, निष्फल हो जायगा। तात्पर्य कि तुम नगरमें जाकर हमारा मिलना न कहना, जब हम आवें युक्ति करें तब हमें कोई न जाने और न यह खुलने पावे कि अन्नमें युक्ति की गयी है; जितना ही छिपाओगे उतना ही शीघ्र कार्य सिद्ध होगा। (☞जितने कपटी हैं वे बात छिपानेपर जोर देते हैं, क्योंकि प्रकट होनेपर उनकी माया चल नहीं सकती। वि० त्रि०)

नोट—जो भूमिका दोहा १६५ *'मिलब हमार भुलाव निज कहहु त हमहिं न खोरि'* पर उठायी थी वह यहाँ प्रकट की। अर्थात् उसका कारण बताता है। (पंजाबीजी)

जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥५॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥६॥
पुनि तिन्ह कें गृह जेंवै जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ॥७॥

शब्दार्थ—**अनुसरई**=अनुसरण करेगा; अनुकूल रहेगा। **अन्न**=खानेका पदार्थ, भोजन। **जेवना**=भोजन करना, खाना।

अर्थ—राजन्! यदि मैं रसोई करूँ और तुम परसो, मुझे कोई न जान पावे॥५॥ (तो) उस अन्नको जो-जो खायगा वह-वह तुम्हारी आज्ञाके अनुकूल चलेगा॥६॥ हे राजन्! यह भी सुनो कि फिर उनके घर जो भी भोजन करेगा वह भी तेरे वशमें हो जायगा॥७॥

टिप्पणी—१ *'जौं नरेस····'* इति। (क) तापसने योग, युक्ति, तप और मन्त्र चारके गुप्त रखनेकी बात कही, इनमेंसे यह कौन है? उत्तर—प्रथम ही उसने जो कहा है, *'मम आधीन जुगुति नृप सोई'* वही युक्ति यहाँ कह रहा है। भाव कि रसोईमें मैं ऐसी युक्ति कर दूँगा कि जो भोजन करेगा वह तुम्हारे वश हो जायगा। हम एक लक्ष ब्राह्मणोंके लिये रसोई बनावें और तुम परसो, इस कथनका तात्पर्य यह है कि इतनी बड़ी रसोई बनानेका सामर्थ्य हममें है, परसनेकी शक्ति हम तुमको दे देंगे। तापसका आन्तरिक अभिप्राय यह है कि राजाके परसते ही कालकेतु आकाशवाणी करेगा, राजाको शाप हो जायगा, परसनेका प्रयोजन ही न पड़ेगा। (ख) *'तुम्ह परुसहु'*—तुम ही परसो। भाव कि जो परसेगा उसीके वशमें ब्राह्मण

हो जायँगे। पुनः *'जौं नरेस····तुम्ह परुसहु'* का भाव कि वहाँ दूसरा कोई रसोइया न रहे और न कोई दूसरा परसनेवाला रहे! (यह कहा क्योंकि डर है कि कोई दूसरा रहेगा तो भण्डा फूट जायगा।) (ग) *'मोहि जान न कोई'* इति। तात्पर्य कि हम किसी दूसरेको दर्शन न देंगे, तुम्हारा कार्यमात्र करेंगे। पुनः भाव कि हमारे प्रकट हो जानेसे ब्राह्मण भोजन करने न आयेंगे क्योंकि हमें तो कोई चतुर मनुष्य भी न पहचान सकेगा, वे सब यही कहेंगे कि न जाने किसकी बनायी रसोई है, रसोइया जाना हुआ ब्राह्मण नहीं है, अतः हम उसकी बनायी रसोई खाने न जायेंगे। हमारे प्रकट हो जानेसे तुम्हारा सब बना-बनाया काम बिगड़ जायगा।

वि० त्रि०—इसी युक्तिमें कपट भरा है, पर अन्धभक्त राजाका उस ओर ध्यान नहीं है। राजाके भोजनमें यदि कोई चूक हो जाय तो रसोईदार और परसनेवालेकी चूक समझी जाती है। उसके लिये राजाको कोई दोषी नहीं बतलाता। अतः कहता है कि तुम परोसो और मुझ रसोईदारको कोई न जाने। अर्थात् ऐसी अवस्थामें जो चूक होगी, उसका जिम्मेदार राजाको छोड़कर और कोई हो नहीं सकता। सभी समझेंगे कि यदि राजाकी सम्मति न थी तो रसोईदार गुप्त क्यों रखा गया।

टिप्पणी—२ *'अन्न सो जोइ····'* इति। *'अन्न सो'* अर्थात् मैं जो रसोई करूँगा वह अन्न। रसोईमें अन्न मुख्य है इसीसे 'अन्न' को भोजन कहते हैं। रसोईमें ब्राह्मणका मांस मिलानेको है इसीसे मांस बनानेका नाम नहीं लेता। यही कहता है कि हमारा बनाया और तुम्हारा परसा हुआ अन्न जो खायेगा। *'आयसु अनुसरई'*—यह युक्तिका प्रभाव बताया। राजाकी आज्ञा मुख्य है इसीसे आज्ञा मानेगा, यह कहा।

टिप्पणी ३—*'पुनि तिन्ह कें····'* इति। *'पुनि'* से जनाया कि जो तुम्हारे यहाँ भोजन करेंगे वे तुम्हारे वशमें हो जायँगे इसके पश्चात् उन भोजन करनेवालोंके घरमें जो भोजन करने जायेंगे वे भी तुम्हारे वशमें हो जायेंगे और फिर इनके घर जो भोजन करेंगे वे भी तुम्हारे वशमें हो जायेंगे। इस तरह *'पुनि····'* का ताँता सर्वत्र लगता चला गया है। भाव यह कि इस प्रकार पृथ्वीभरके ब्राह्मण तुम्हारे वशमें हो जायँगे, जैसा वह आगे स्वयं कह रहा है—*'एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें॥'* (१। १६९) (*'तिन्ह कें गृह'* से यह भी जनाया कि घरका एक व्यक्ति भी यदि भोजन कर गया तो भी उसके घरमें जो-जो हैं जो घरमें भोजन करते हैं वे भी वशमें हो जायेंगे और बाहरवाले जो करेंगे वे भी वशमें हो जायेंगे। एक नगरवालोंका नाता दूसरे नगरमें, दूसरेका तीसरेमें इत्यादि लगा ही रहता है, इस प्रकारसे समस्त नगरोंके ब्राह्मण एक-दूसरेके लगावसे वशमें हो जायेंगे, सबको अपने यहाँ खिलाना भी न पड़ेगा। कैसी सुन्दर युक्ति बतायी! इस प्रकारकी वशीकरणकी रीति तान्त्रिकोंमें बहुत है)।

वीरकविजी—यहाँ असत्से असत्की समताका भावसूचक 'प्रथम निदर्शना अलङ्कार' है। जैसे उसका रसोई बनाना असत् है वैसे ही विप्रोंका वश होना मिथ्या है।

जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप करेहू॥ ८॥

दो०—नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहि करबि जेवनार॥ १६८॥

शब्दार्थ—**संकलप** (संकल्प)=प्रतिज्ञा। **संबत** (संवत्)=एक वर्ष। **नित** (नित्य)=नित्यप्रति, प्रतिदिन। **नूतन**=नये, नवीन। **बरेहु**=वरण करना, न्योता देना।

अर्थ—हे राजन्! जाकर यही उपाय करो। एक वर्ष (भोजन कराने) का संकल्प करना॥ ८॥ नित्य नये एक लाख ब्राह्मणोंको कुटुम्बसहित निमन्त्रित करना। मैं तुम्हारे संकल्प (एक वर्षके अनुष्ठान) तक बराबर दिन-ही-दिन रसोई (तैयार) कर दिया करूँगा॥ १६८॥

टिप्पणी—१ *'संबत भरि संकलप करेहू'* इति। भाव यह कि—(क) उस समय घर-शुमारी (गणना) में तीन करोड़ साठ लाख घर वेदपाठी, क्रियावान् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके थे। एक-एक लक्षका नित्य निमन्त्रण

होनेसे एक वर्षमें तीन सौ साठ लक्ष अर्थात् तीन करोड़ साठ लक्षका निमन्त्रण हो जायगा। इसीसे *'संबत'* भरका संकल्प करनेको कहा। वेदपाठी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रण दिया गया, यथा—*'बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत।'* (१७२) इनकी अपेक्षा जो सामान्य ब्राह्मण थे उनको निमन्त्रण नहीं दिया गया वे *'पुनि तिन्ह कें गृह जेवँ जोऊ।'*......' में आ जायेंगे। पुनः (ख) वर्षभर ब्राह्मण-भोजन करानेकी विधि है अतः *'संबत भरि'*...' कहा। [वा (ग) ब्राह्मणोंको वर्षासन दिया जाता है। अथवा (घ) भावीवश ऐसा संकल्प कराया गया क्योंकि विप्रशापसे संवत्‌के भीतर इसका नाश होना है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि यदि दो-चार दिनका ही संकल्प होता तो एकाएकी ऐसा होनेसे सबको सन्देह हो जाता कि क्या कारण है। (प्र० सं०)] (ङ) कालकेतु तो एक ही दिनमें राजाको शाप दिला देगा। उसमें यह सामर्थ्य है तभी तो उसने कपटी मुनिको वचन दिया कि *'कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई॥'* (१७१। ५) उसने वर्षभरको नहीं कहा था। तापस राजाने एक वर्षका संकल्प करनेको कहा जिसमें राजाको विश्वास हो कि यह बड़ा भारी पुण्य है, इस पुण्यके प्रभावसे ब्राह्मण अवश्य वशमें हो जायेंगे।

टिप्पणी—२ (क) *'नित नूतन'* का भाव कि एकहीको नित्य निमन्त्रण देनेका (नित्यप्रति भोजन करानेका) कोई प्रयोजन नहीं। वह तो एक ही दिनके निमन्त्रणमें भोजन करनेसे वशमें हो जायगा। (ख) *'बरेहु सहित परिवार'* इति। भाव कि यदि परिवारवाले भोजन न करेंगे तो वे वशमें न होंगे। परिवारसहित न्योतना, इस कथनसे यह ज्ञात हुआ कि परिवारकी गणना एक लक्षमें नहीं है। एक लक्ष ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येक ब्राह्मण परिवारसहित निमन्त्रित किया जाय। परिवार चाहे जितना हो उसकी गणना न की जायगी। भीतरी अभिप्राय यह है कि परिवारसहित राजाका नाश कराना है। परिवारसहित निमन्त्रण होनेसे परिवारसहित नाश होनेका शाप होगा। (ग) *'मैं तुम्हरे संकलप लगि'*.........' इति। वर्षभरका संकल्प करनेको कहा। राजा संकोचवश मुनिसे वर्षपर्यन्त रसोई करनेको कह नहीं सकता, इसीसे वह स्वयं ही कहता है कि मैं वर्षभर प्रतिदिन रसोई बनाऊँगा। [भाव यह कि तुम इसकी चिन्ता न करो कि इतने ब्राह्मणोंके लिये रसोई कैसे होगी। मैं तपोबलसे दिन-के-दिन ही नित्य भोजन तैयार कर दिया करूँगा और तुम्हें परसनेका सामर्थ्य भी दूँगा। (प्र० सं०) पं० रामकुमार *'संकलप लगि दिनहि'* का अर्थ 'संकल्पके दिनतक, अर्थात् वर्ष दिन' ऐसा करते हैं।]

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें॥ १॥
करिहहिं बिप्र होम मख सेवा। तेहि प्रसंग सहजेहि बस देवा॥ २॥
और एक तोहि कहौं लखाऊ। मैं एहि बेष न आउब काऊ॥ ३॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥ ४॥
तप बल तेहि करि आपु समाना। रखिहौं इहाँ बरष परवाना[1]॥ ५॥

शब्दार्थ—**होम**=हवन। **प्रसंग**=प्रकर्ष करके संग=संयोग, सम्पर्क, सम्बन्ध। **लखाऊ** (लक्ष्य)=पहचानकी बात, चिह्न। **उपरोहित** (पुरोहित)=वह प्रधान याजक जो यजमानके यहाँ अगुआ बनकर श्रौतकर्म, गृहकर्म और संस्कार तथा शान्ति आदि अनुष्ठान करे-कराये। पूर्वकालमें पुरोहितका बड़ा अधिकार था। पुरोहितका पद कुलपरम्परागत होता था।

अर्थ—हे राजन्! इस प्रकार (इस विधि या साधनसे) अत्यन्त थोड़े कष्टसे समस्त ब्राह्मण तेरे वशमें हो जायेंगे॥ १॥ ब्राह्मण लोग जो होम, यज्ञ और सेवा-पूजा करेंगे, उसके सम्बन्धसे देवता सहज ही वशमें हो जायेंगे॥ २॥ तुमसे एक और पहचानकी बात बताता हूँ। मैं इस वेषमें कभी न आऊँगा॥ ३॥ हे राजन्! मैं तुम्हारे पुरोहितको अपनी मायाके बलसे हर लाऊँगा॥ ४॥ तपके बलसे उसे अपने समान बनाकर यहाँ एक वर्षपर्यन्त रखूँगा॥ ५॥

१. परमाना—पाठान्तर

टिप्पणी—१ (क) *'एहि बिधि''''''''* '—भाव कि अन्य जो भी विधियाँ हैं वे कष्टसाध्य हैं और इस विधिमें अत्यन्त अल्प कष्ट है। भोजन करानेमात्रका, परसनेभरका कष्ट है। (ख) *'होइहहिं'* अर्थात् निश्चय ही हो जायँगे। भाव कि अन्य साधनोंके करनेपर भी सन्देह ही रहता है कि सफलता हो या न हो, यहाँ—*'कष्ट साध्य पुनि होहिं कि नाहीं'* और इस साधनमें सफलता भी निश्चित है। (ग) *'सकल बिप्र बस तोरें'* इति। संवत्‌भरका संकल्प करना और एक लाख विप्र नित्य निमन्त्रित करना यह कहकर *'सकल बिप्र बस होइहहिं'* कहनेसे पाया गया कि तीन करोड़ साठ लाख घर उस समय वेदपाठी विप्रोंके थे।

टिप्पणी—२ *'करिहहिं बिप्र होम''''* ' इति। (क) *'सहजेहिं'* का भाव कि देवताओंका वशमें होना कठिन है। वे सहजहीमें वशीभूत हो जायँगे, उनको वशमें करनेके लिये तुम्हें कुछ भी करना न पड़ेगा। पुनः, भाव कि ब्राह्मणोंको वशमें करनेमें किञ्चित् कष्ट उठाना पड़ेगा और इनको वश करनेमें किञ्चित् भी कष्ट नहीं होगा। तात्पर्य यह है कि भूदेवोंको वशमें कर लेनेसे स्वर्गके देवता स्वाभाविक ही वशमें हो जायँगे। (ख) देवता सहजहीमें बिना कष्ट किये कैसे वशमें हो जायँगे यह *'करिहहिं बिप्र होम'''''* ' से जनाया। भाव यह कि देवता होम, यज्ञ आदिसे वशमें होते हैं, पर तुमको होम, यज्ञ, सेवा-पूजा कुछ न करनी पड़ेगी। *'तेहि प्रसंग'* अर्थात् ब्राह्मण जो होम, यज्ञ, सेवा-पूजा करेंगे उसीके संयोगसे देवता वशमें हो जायँगे। (भाव कि यज्ञादि वे करेंगे और फल मिलेगा तुमको केवल एक बार उनको मेरे हाथका बनाया परसकर खिला देनेसे।)

टिप्पणी—३ *'और एक तोहि कहौं लखाऊ।''''''* ' इति। (क) *'लखाऊ'* यहाँ कहा और आगे कहा है कि *'मैं आउब सोइ बेष धरि पहिचानेहु तब मोहि।'* इस तरह *'लखाऊ'* का अर्थ वहाँ खोल दिया। *लखाऊ*=पहिचाननेकी बात, जिससे तुम हमको पहचान सको। (ख) प्रथम तो तापसने अपनेको छिपाया कि मुझे कोई जान न पावे। यथा—*'तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई।'* (१६८। ५) कदाचित् कोई जाने भी, तो पुरोहितका वेष देखकर पुरोहित ही जाने, इसीसे कहा कि *'मैं एहि बेष न आउब काऊ।'* भाव कि हमारे प्रकट होनेसे तुम्हारे कार्यकी हानि है। तीसरा (भीतरी) अभिप्राय यह है कि यदि हमें कोई जान गया तो हमारा बना-बनाया काम बिगड़ जायगा, अतः कहा कि इस वेषसे न आऊँगा।

टिप्पणी—४ *'तुम्हरे उपरोहित कहुँ''''''''* ' इति। (क) धर्मके कार्यमें पुरोहित अग्रसर रहता है। राजाका पुरोहित बड़ा बुद्धिमान् है। यदि वह वहाँ रहा तो हमारे छलको भाँप लेगा। (यह उसके हृदयमें भय है। अतः उसको वहाँसे हटा देनेको है।) ऊपरसे यह दिखाता है कि तुम्हारे पुरोहितको मैं अपने समान बनाकर यहाँ रखूँगा जिसमें हमारे तपमें अन्तर न पड़े, आसन शून्य न हो; (ख) *'हरि आनब करि निज माया'* इति। 'हर लाने' का भाव कि प्रत्यक्ष ले आनेसे गुप्त बात खुल जायगी। दूसरे, हमारे कहनेसे वह न आयेगा। हरण करनेसे ही आयेगा। *'निज माया'* अर्थात् अपनी योग-मायासे, योगबलके प्रभावसे। इससे वह अपना प्रभाव, अपना सामर्थ्य दिखा रहा है। [माया सबकी अलग-अलग होती है। सबसे बड़ी रामकी माया है। (यथा—*'सुनु खग प्रबल राम की माया'*), उसके बाद त्रिदेवकी माया है (यथा—*'बिधि हरि हर माया बड़ि भारी।'*), फिर देवकी माया। (यथा—*'कछुक देव माया मति मोई'*), ऋषिकी माया (यथा—*'बिधि बिस्मयदायक बिभव मुनिबर तप बल कीन्ह।'*), फिर असुरकी माया (यथा—*'जब कीन्ह तेहि पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥'*), फिर मनुष्यकी माया है (यथा—*'इहाँ न लागी राउरि माया'*), सो यहाँ आसुरी और मानुषी दोनों मायाएँ काम कर रही हैं। (वि० त्रि)] (ग) पुरोहितको हर लाना कहा, उसकी सेजपर सोनेको न कहा क्योंकि यह बात महात्माओंके योग्य नहीं है। कालकेतुसे पुरोहितकी स्त्रीके पास शयन करनेको कहा जिसमें स्त्रीको भ्रम न हो कि हमारा पति कहाँ गया।

टिप्पणी—५ *'तप बल तेहि''''''* ' इति। (क) किस लिये हर लायँगे यह अब बताता है। संवत्‌भर तुम्हारे यहाँ रहना होगा, जैसा पूर्व कह चुके हैं—*'मैं तुम्हरे संकलप लगि''''''''।'* यहाँ आसन खाली न रहे, इत्यादि। (ख) *'तप बल तेहि करि आपु समाना'*—भाव कि पुरोहित हमारे समान नहीं है और न हो सकता है, मैं अपने तपोबलसे उसे अपने समान बना लूँगा। (पूर्व कह ही चुका है कि *'तप तें*

अगम न कछु संसारा।') अपने समान बनानेका भाव कि हमारा काम पुरोहित करेगा और पुरोहितका रूप धरकर तुम्हारा काम मैं करूँगा। [(ग) *'रखिहउँ इहाँ'*—भाव यह कि मेरा नित्य नियम वह करता रहेगा क्योंकि यहाँ और कोई तो आ नहीं सकता, रहे देवता और मुनि सो वे अन्तरिक्षसे मेरे दर्शनोंको आते-जाते हैं उनको भी यह न मालूम हो कि मैं कहीं चला गया। यहाँ वह अपना सामर्थ्य जता रहा है—(पंजाबीजी)। (घ) इस तरह वह राजाको बहकाता है जिसमें यदि कपट खुल भी जाय और राजा यहाँ आवे तो पुरोहित ब्राह्मण समझकर मेरा वध न करे (श्रीजानकीशरणजी)। (ङ) पुरोहित रहेगा तो राजाकी रक्षा करेगा। अतः यह उपाय रचता है। (रा० प्र०)]

वि० त्रि०—पुरोहितका पद मन्त्रीसे बड़ा है, इसीलिये अथर्ववेदी पुरोहित बनानेका आदेश है जो मन्त्रादिसे भलीभाँति राज्य तथा राजाकी रक्षा कर सकता हो। शुक्रनीतिमें पुरोहितके कार्य और अधिकारका विशद वर्णन है। वही धर्माध्यक्ष है। नियमानुसार वह ब्राह्मण भोजनकी देख-रेख करेगा। उसे रसोई देखनेसे तो राजा भी नहीं रोक सकता, तब बिना भेद खुले न रहेगा। अतः कपट मुनिको पुरोहितसे भय है। पुरोहित बनकर रहनेसे धर्मविभाग अपने हाथोंमें रहेगा। दूसरा कोई निरीक्षक न रह जायगा।

मैं धरि* तासु बेषु सुनु राजा। सब बिधि तोर सँवारब काजा॥ ६॥
गै निसि बहुत सयन अब कीजै। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजै॥ ७॥
मैं तप बल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहों सोवतहि निकेता॥ ८॥
दोहा—मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि॥ १६९॥

अर्थ—हे राजन्! सुनो। मैं उसका वेष धारणकर सब तरहसे तेरा कार्य सवारूँगा॥ ६॥ राजन्! रात बहुत बीत गयी, अब सो रहिये। मुझसे-तुझसे अब तीसरे दिन भेंट होगी॥ ७॥ मैं अपने तपोबलसे तुझे घोड़ेसमेत सोते ही (तेरे) घर पहुँचा दूँगा॥ ८॥ मैं वही वेष धरकर आऊँगा। जब तुमको एकान्तमें बुलाकर मैं सब कथा सुनाऊँ तब मुझे जान लेना॥ १६९॥

टिप्पणी—१ *'मैं धरि····'* इति। (क) पुरोहित बननेमें तपोबलका काम नहीं है, इसीसे यहाँ *'तप बल'* न कहा। वेष धरना कहकर तब काज सँवारना कहा। भाव कि प्रथम पुरोहितको अपने समान बनाकर यहाँ रख दूँगा तब उसका रूप धरकर तुम्हारा काम करूँगा। (ख) *'सब बिधि'*—निमन्त्रण देकर बुलाना, जेवनार बनाना, विघ्न दूर करना इत्यादि *'सब बिधि'* हैं।

टिप्पणी—२ (क) *'गै निसि बहुत'* इति। जब तपका प्रभाव कहने लगा था तब राजाको अति अनुराग हो गया था, यह देखकर पुरातन कथाएँ कहने लगा था। यथा—*'भएउ नृपहिं सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा॥ ·····कहेसि अमित आचरज बखानी।'* (१६३। ४—६)। इसीसे बहुत रात बीत गयी। *'बहुत'* से जनाया कि आधी रात बीत गयी। यथा—*'कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥'* (२२६। २) (विश्वामित्रजी जब पौराणिक कथा इतिहास कहने लगते थे तब अर्द्धरात्रि बीत जाती थी, वैसे ही यहाँ समझना चाहिये।) (ख) *'सयन अब कीजै'* इति। सोनेकी आज्ञा इससे दी कि कालकेतु आना ही चाहता है। [इससे जान पड़ता है कि राजाका चित्त उसकी बातोंमें ऐसा मग्न है कि नींद भी आनन्दमें उड़ गयी; पर कपटी मुनि तो अपनी घातमें है। वह जानता है कि कालकेतुके आगमनका समय है। राजाके जागते हुए वह कैसे आवेगा, इससे अपने मतलबसे शयन करनेको कहा। पुनः, डर लगा है कि राजा उसे कहीं देख न ले जिससे हमारा कपट खुल जाय। और ऊपरसे एक साधारण-सी बात कहनेमें जान पड़ती है क्योंकि बहुत रात बीतनेपर ऐसा कहना शिष्टाचार है। (प्र० सं०) आज्ञा न देता

* करि—पाठान्तर।

तो राजा न सोता।] (ग) *'भेंट दिन तीजें'* इति। भाव कि आजका दिन तो बीत ही गया। सबेरे तुम्हारे पुरोहितको ले आऊँगा, (ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करूँगा) और परसों तुमसे आकर मिलूँगा। [पुन: बहुत दिनपर मिलनेको कहता तो राजा सहन न कर सकता। कलहीका दिन बीचमें है, यह भी उसे युग-समान बीतेगा। यथा—*'जुग सम नृपहि गए दिन तीनी।'* (१७२। ७)] तीसरे दिन मिलनेको कहा, बहुत जल्दी न की। जिसमें काम न बिगड़े। प्रथम दिन तो सोनेमें गया। दूसरे दिन राजा वनमें गये और दोपहरमें लौटे। निमन्त्रणका समय न रह गया। तीसरे दिन सबेरे कालकेतु राजासे मिला इसीसे तुरत उसी दिन विप्रोंको निमन्त्रण दिया गया।

टिप्पणी—३ (क) *'मैं तप बल······'* इति। तापसने जो अपनी महिमा कही थी वह यहाँ प्रत्यक्ष दिखा रहा है, इसीसे राजाको दृढ़ विश्वास हुआ। यहाँतक उसने अपनेमें योगमाया-बल और तप-बल दोनों बल दिखाये। *'तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥'* अर्थात् पुरोहितको हर लानेमें मायाबल और यहाँ राजाको सोते ही पहुँचानेमें तपोबल कहा। (ख) *'पहुँचैहौं' सोवतहि निकेता'* इति। *'सोवतहि'* अर्थात् तुम्हारी निद्रा न भङ्ग होने पायेगी। घर पहुँचानेको कहा जिसमें अपनी महिमा भारी पायी जाय कि सत्तर योजन सोते ही पहुँचाया और वह भी किलेके भीतर महलमें रानीके पास; राजाने ऐसा समझा भी, यथा—*'मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी।'* (१७२। ३) (ग) कपटी मुनिने घरमें पहुँचानेको कहा पर राजाने कुछ उत्तर न दिया कि लोग हमसे पूछेंगे तो हम क्या कहेंगे, आपने तो हमें यह वृत्तान्त गुप्त रखनेको कहा है। उत्तर न देनेसे राजाकी कपटी मुनिमें भक्ति दिखायी कि स्वयं भले ही कष्ट सहा कि प्रात: ही उठकर वनमें गया और वहाँसे दोपहरमें लौटकर घर आया पर मुनिको उत्तर न दिया। (स्वामीकी आज्ञा होनेपर उत्तर देना लज्जाकी बात है, यथा—*'उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई॥'* (२। २६९)

टिप्पणी—४ (क) *'मैं आउब सोइ बेषु धरि'* अर्थात् पुरोहितका रूप धरकर। (ख) *'पहिचानेहु तब मोहि'*—भाव कि पहचाननेमें भ्रम हो जानेकी सम्भावना है क्योंकि हम भी पुरोहितका रूप धरकर आयेंगे। पुरोहितको देखकर भ्रम होगा कि ये मुनि हैं या पुरोहित, आगे ऐसा भ्रम हुआ ही है, यथा—*'उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोकि सुमिरि सोइ काजा॥'* (१७२। ६) इसीसे पहचान बतायी है जिसमें भ्रम न हो जाय। [तापसको डर है कि कहीं राजाको अपने पुरोहितमें मेरा धोखा न हो जाय और कोई बात इसके मुखसे मेरे सम्बन्धकी निकल न जाय। अतएव राजाको पुरोहितसे बात करनेको मना करता है।]

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छल ग्यानी॥ १॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥ २॥

अर्थ—राजाने आज्ञा मानकर शयन किया। छलमें ज्ञानी (वा, कपटी बना हुआ ज्ञानी) वह तापस अपने आसनपर जा बैठा॥ १॥ राजा थका हुआ है, (इसलिये उसे) बड़ी गहरी नींद आ गयी। उस 'छल ज्ञानी' को (तो) बहुत सोच और चिन्ता है (अत:) वह कैसे सो सकता? (नहीं सो सकता था)॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) *'सयन कीन्ह·····'* इति। *'आयसु मानी'* का भाव कि राजाको अभी शयन करनेकी इच्छा न थी, उसका मन कथामें लगा था पर मुनिने आज्ञा सोनेकी दी, अत: उसे शयन करना पड़ा। (क्योंकि एक तो वे कालीन मुनि हैं, दूसरे गुरु हैं, तीसरे राजाको सुत और सेवक मानते हैं और उसका परम हित करनेमें तत्पर हैं। अत: सब प्रकार आज्ञा मानना आवश्यक था।) (ख) *'आसन जाइ बैठ'* इति। प्रथम कह आये हैं कि *'निज आश्रम तापस लै गयऊ। आसन दीन्ह अस्त रबि जानी॥'* (१। १५९) अर्थात् अपने आश्रममें लाकर राजाको आसन दिया। और, अब कहते हैं कि *'आसन जाइ बैठ'*। *'जाइ'* से पाया गया कि कपटी मुनिने दो आसन बना रखे थे, यहाँसे उठकर दूसरे आसनपर जाकर बैठा। दो आसन न होते तो *'जाइ'* न कहते। पुन:, आगे कहा है कि *'तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महा कपटी अति रोषी॥ भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि·····॥'* (१७१। ६-७)। इससे यह भी पाया गया

कि दूसरा आसन कुछ दूरीपर था, इसीसे *'चला'* शब्द दिया गया। यह आसन एकान्तमें और दूर था नहीं तो वहाँ कालकेतुसे अपने शत्रुके सम्बन्धकी बातें कैसे कर सकता। (ग) *'छल ज्ञानी'*—भाव कि इसीसे उसने दो आसन बना रखे थे; क्योंकि राजाके सामने, जहाँ राजा सोवेगा वहाँ कालकेतुसे बातचीत करते न बनेगी। बड़ी सावधानतासे उसने छलकी सिद्धि की अतः *'छल ज्ञानी'* कहा।

टिप्पणी—२ (क) *'श्रमित भूप निद्रा''''* इति। श्रममें निद्रा आती है, यथा—*'लोग सोग श्रम बस गए सोई।'* (२। ८५)। (ख) *'सो किमि सोव'*—भाव कि सोनेका समय हो गया है, इसीसे राजाको सोनेकी आज्ञा दी पर स्वयं न सोया, आसनपर जाकर बैठ रहा। उसका कारण कहते हैं। *'सोच अधिकाई'* अर्थात् सोचमें निद्रा नहीं आती, यथा—*'गएउ भवन अति सोच बस नींद परै नहि राति।'* (३। २२) *'निसि न नींद नहिं भूख दिन भरत बिकल सुचि सोच।'* (२। २५२) (तापसने राजासे जो कुछ अपना प्रभाव कहा वह सब कालकेतु निशाचरके मायावी बलके भरोसेपर, अतः उसे उसके अबतक न आनेका सोच है) कहीं किसी कारणसे रुक न जाय, ऐसा न हो कि न आवे, न आया तो हमारा सब काम ही बिगड़ जायगा, (कालकेतु न आया तो बात झूठी पड़ेगी फिर राजा मुझे जीता न छोड़ेगा), यह सोच है जैसा आगेके *'कालकेतु निसिचर तहँ आवा'* से स्पष्ट है। पुनः, शत्रुके नाशका भी सोच है जो आगे कालकेतुके *'परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई॥'* (१७१। ४) इस वाक्यसे स्पष्ट है।

कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा॥ ३॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानै सो अति कपट घनेरा॥ ४॥
तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई॥ ५॥
प्रथमहि भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे॥ ६॥

शब्दार्थ—केरा=का। यह सम्बन्धका चिह्न है। परम मित्र=बड़ा दिली दोस्त।

अर्थ—कालकेतु राक्षस वहाँ आया जिसने शूकर बनकर राजाको भुलाया था॥ ३॥ वह तपस्वी राजाका परम मित्र था और अत्यन्त 'घनेरा' कपट जानता था॥ ४॥ उसके सौ पुत्र और दस भाई थे जो अत्यन्त दुष्ट, अजय और देवताओंको दुःख देनेवाले थे॥ ५॥ राजाने ब्राह्मणों, संतों और देवताओंको दुःखी देखकर प्रथम ही उन सबोंको संग्राममें मार डाला॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'कालकेतु निसिचर'* इति। इसके पूर्व शूकरका परिचय न दिया था, यहाँ प्रकट किया कि कालकेतु ही वह शूकर था। कारण कि वहाँ कालकेतु प्रकट न था, शूकरका रूप धरे हुए था, इसीसे वहाँ ग्रन्थकारने भी उसे प्रकट न किया। यहाँ कालकेतु अपने असली रूपसे प्रकट होकर आया, इसीसे यहाँ कविने उसे प्रकट किया कि यही शूकर बना था, वस्तुतः है राक्षस। राजाके सो जानेपर आया, इससे उसकी सावधानता दिखायी। (ख) *'जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा, यथा—'फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखेउँ पद आई॥'* (१५९। ६) (ग) *'परम मित्र'* का भाव कि तापसके मित्र तो बहुत हैं पर यह 'परम मित्र' है। क्योंकि दोनों अत्यन्त कपट जानते हैं। (**'समानशीलव्यसनेषु मैत्री'**, समान शील और समान व्यसनवालोंमें मैत्री होती है। शत्रुके शत्रुसे मित्रता होना स्वाभाविक है। मुनि कपटी और राक्षस मायावी, दोनों राजाके शत्रु। वि० त्रि०) (घ) *'जानै सो अति कपट घनेरा'*—भाव कि घनेरा कपट तो तापस भी जानता है पर कालकेतु *'अति घनेरा'* कपट जानता है क्योंकि वह राक्षस है और राक्षस मनुष्यकी अपेक्षा अधिक कपट जानते ही हैं। अति घनेरा कपट आगे जो यह करेगा उससे स्पष्ट है। ☞ (ङ) यहाँ कपटी मुनिको *'तापस नृप'* कहा, इसके पूर्व *'नृप'* नहीं कहा था। भाव यह है कि राजाको छलनेके लिये ही वह मुनि बना था, जिसमें राजा उसे मुनि जाने और ऐसा हुआ भी। राजाने कपटी मुनिको मुनि जाना, यथा—*'देखि सुबेष महामुनि जाना।'* मुनि बनकर उसने कपट किया। इसीसे भानुप्रताप कपटी मुनि-संवादमें *'तापस नृप'* न कहा; किन्तु मुनि, तापस, मुनीस आदि कहते रहे और अब कालकेतु-कपटी

मुनिके संवादमें *'तापस नृप'* कहते हैं; क्योंकि अब मुनि कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। कालकेतु जानता है कि यह राजा है, (राज्य छूटनेपर अपनेको छिपानेके लिये तपस्वी वेष धारणकर) तप करता है, इसीसे अब तापस नृप कहते हैं। इस प्रसङ्गभरमें प्राय: यही नाम दिया गया है। यथा—*'परम मित्र तापस नृप केरा', 'तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा', 'तापस नृप निज सखहिं निहारी', 'अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा'* तथा*'तापस नृपहिं बहुत परितोषी।'* (पुन: 'तापस नृप' इससे कहा कि इस समय यहाँ दो राजा हैं, केवल नृप कहनेसे पाठकोंको भ्रम होना सम्भव था।)

टिप्पणी—२ (क) *'तेहि के सत सुत अरु दस भाई'* इति। पुत्र बहुत प्रिय है, इसीसे प्रथम पुत्रका दु:ख कहा। सौ पुत्र और दस भाई कहनेका भाव कि इतना उसका परिवार था, उसके सारे वंशका नाश हुआ, सब मारे गये। (ख) *'खल अति अजय.....'* इति। *'अति'* देहलीदीपक है। अर्थात् वे अति खल और अति अजय थे। *'खल'* का भाव कि देवताओंकी सम्पत्ति देखकर जलते हैं, यथा—*'खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥'* (७। ३९) इसीसे देवताओंकी सम्पत्तिका हरण करते हैं। *'अति अजय'* हैं अर्थात् देवता इन्हें नहीं जीत पाते थे, इन्द्रादि सभी देवता हार गये थे। *'देव दुखदाई'* अर्थात् देवताओंसे वैर मानते थे। यथा—*'सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥'* (१८१। ५) (यह रावणने राक्षसोंसे कहा है) [इन्द्रादि देवता दुर्जय (अजय) हैं। उनको भी इन्होंने जीत लिया इससे *'अति अजय'* कहा। ☞देवताओंको दु:ख देते और उनकी सम्पत्ति छीन लेते थे, अतएव खल कहा, यथा—*'खलन्ह हृदय.....।'* (प्र० सं०)]

टिप्पणी—३ (क) *'प्रथमहिं भूप समर सब मारे'* इति। *'प्रथम'* का भाव कि जब भानुप्रताप दिग्विजयको चला और तापस नृपपर चढ़ाई की तब कालकेतु अपने मित्रकी सहायताके लिये अपने सब पुत्रों और सब भाइयोंसहित आया था, तब राजाने उन सब पुत्रों और भाइयोंको संग्राममें मारा। [यह भी हो सकता है कि पहले-पहल कालकेतुसे युद्ध किया; क्योंकि वह ब्राह्मण, देवता और सन्त सभीको दु:ख दे रहा था और राजा विप्र-सुर-सन्तसेवी था, इसीसे राजाने प्रथम उन्हींसे युद्ध किया। तत्पश्चात् मनुष्य राजाओंपर दिग्विजयके लिये निकला, यह भाव *'तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा॥'* से भी पुष्ट होता है।] (ख) *'बिप्र संत सुर देखि दुखारे'* इति। यह सबको मार डालनेका कारण बताया। भाव कि भानुप्रताप राजाओंको जीतकर उनसे दण्ड लेकर, उनको छोड़ देता था, उनको मारता नहीं था। यथा—*'सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥'* (१५४। ७) पर कालकेतुके पुत्रों और भाइयोंको नहीं छोड़ा, इनका वध किया, क्योंकि देवता, ब्राह्मण आदि जो राजाके सेव्य हैं (यथा—*'गुरु सुर संत पितर महि देवा। करै सदा नृप सब कै सेवा॥'*), जिनका राजा भक्त है वे इन राक्षसोंके कारण निरन्तर दु:खित रहते हैं। यह बात राजाने स्वयं देखी अत: सबोंका नाश किया। (कालकेतु जान बचाकर भाग गया, इसीसे बच गया।) पुन:, *'देखि दुखारे'* का भाव कि राक्षसोंको मारकर उनके दु:खको दूर कर उन्हें सुखी किया। (ग) देवताओंसे राक्षस बलवान् थे। उन राक्षसोंको भानुप्रतापने मारा। इससे पाया गया कि भानुप्रताप देवता और राक्षस दोनोंसे अधिक बलवान् था।

प० प० प्र०—प्रतापभानुने यह राजनैतिक भूलें कीं जो उसके विनाशका कारण हुईं। विश्वविजेताके अभिमानमें उन्होंने राजनीतिका पालन सावधानतासे न किया। *'रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि', 'रिपु रिन रंच न राखब काऊ'* यह नीति है। कालकेतुके *'सत सुत अरु दस भाई'* तो मारे पर घमण्डमें आकर कालकेतुकी उपेक्षा कर दी कि अकेला वह क्या कर सकता है। इसी प्रकार जो राजा रणसे भाग गया, उसपर भी ध्यान नहीं रखा। *'तदपि कठिन.....छत्र जाति कर रोष।'* (६। २३) यह वे भूल गये।

मानसमें यह प्रतापभानु-आख्यान ही केवल एक ऐसा प्रकरण है जो एकदम मरुभूमिके समान भक्तिरसविहीन होनेसे रूखा-सूखा लगता है। कपट मुनिने चार बार हरि शब्दका प्रयोग किया है, पर

इस प्रकरणमें राम, रघुपति, रघुनाथ इत्यादि शब्द एवं भक्ति शब्द एक बार भी नहीं है। राम और भक्तिका नाम भी नहीं है। इस प्रकरणसे यह उपदेश मिलता है कि चाहे कोई कितना ही धर्मशील क्यों न हो, यदि उसमें सत्सङ्ग, रामनाम और रामभक्ति नहीं है, तो उसको सङ्कट पड़नेपर अपने कर्मके अतिरिक्त कोई सहारा नहीं है, कोई बचानेवाला नहीं। (इसी पृष्ठमें, टिप्पणी २ देखिये।)

तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा॥ ७॥
जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥ ८॥

दोहा—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि, सिर अवसेषित राहु॥ १७०॥

शब्दार्थ—सँभारा=सँभाला, स्मरण किया, यथा—*'बुधि बल निसिचर परइ न पार्‍यो। तब मारुतसुत प्रभु संभार्‍यो॥'* (६। ९४) *'बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥'* (५। १) *'दीनदयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥'* (५। २७) मंत्र=सलाह, मशविरा, परामर्श। (जिसका मनन करनेसे रक्षा हो उसे मन्त्र कहते हैं। इस तरह मन्त्रका अर्थ हुआ—जिससे अपनी रक्षा हो, शत्रुका क्षय हो वह उपाय वा सलाह।) **छय** (क्षय)=नाश। **अवसेषित**=बचा हुआ।

अर्थ—उस दुष्ट (कालकेतु) ने अपने पिछले वैरको स्मरण किया और तपस्वी राजासे मिलकर सलाह की॥ ७॥ उन दोनोंने वही उपाय रचा जिससे शत्रुका नाश हो। राजा (भानुप्रताप) होनहारवश कुछ नहीं जान पाया॥ ८॥ तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा न समझना चाहिये। (देखिये) राहु जिसका सिरमात्र बच गया था वह अब भी सूर्य और चन्द्रमाको दुःख देता है॥ १७०॥

टिप्पणी—१ (क) *'तेहि खल'* इति। *'खल'* का भाव कि राजाको संग्राममें तो मार न सका और अकेला पड़ जानेसे वैरका साहस भी न रह गया था, एक साथी तापस नृपके मिल जानेसे अब छलसे मारनेका उपाय सोचा। *'पाछिल बयरु'*—अर्थात् अपने सौ पुत्र और दसों भाइयोंके मारे जानेका वैर। पुनः भाव कि पहले तो तापस नृपके वैरसे वैर मानता था (मित्रका वैरी अपना वैरी होता है। इसीसे रघुनाथजीने बालिसे कहा है—*'मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥'* (४। ९) और अब उसने अपने पुत्रों और भाइयोंके मारे जानेका स्मरण किया (कि इसने हमारे वंशका नाश किया, हम इसका वंशसहित नाश करें)। (ख) *'तापस नृप मिलि…'* इति। (इससे जनाया कि कालकेतु बिना तापस नृपसे मिले अकेले भानुप्रतापको छलसे भी मारनेमें समर्थ न था। इसीसे वह तापस नृपसे मिला और तब दोनोंने मिलकर प्रथम विचारकर उपाय तैयार किया तब राजाको छला।)

टिप्पणी—२ (क) *'जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ।'* इति। राजासे जीतना सम्भव नहीं है, इसीसे *'जेहि छय होइ'* अर्थात् जीतनेका उपाय न रचा, क्षयका उपाय रचा। राजाको मृगयाका व्यसन था ही अतः कालकेतु शूकर बना और तापस नृप मुनि बना। शूकर छलकर राजाको तापसके पास लाया। दोनोंने मिलकर राजाको ब्राह्मणोंसे शाप दिलाया; यही उपाय है जो पूर्व कह आये हैं। यथा—*'जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संवत भरि संकलप करेहू॥…'* *'जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा।'* (ख) *'भावी बस न जान कछु राऊ'* इति। कालकेतुका शूकर बनना, वैरी राजाका मुनि बनना, दोनोंका मेल इत्यादि कुछ न जान पाया, इसका कारण *'भावी'* है। *'भावी बस'* कहनेका भाव कि भावीने राजाको अज्ञानी कर दिया, नहीं तो वह बड़ा बुद्धिमान् है, वह अवश्य जान जाता। यदि *'भावी बस'* न कहते तो राजामें अज्ञान पाया जाता। (त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'राजा बड़ा सावधान था। उसने कालकेतु और तपस्वी वेषधारी राजाके खोजवानेका यत्न बहुत किया था, परन्तु भावीवश उसे कुछ पता न लगा। कालक्रमसे बात पुरानी हो गयी और अब उस ओर कोई ध्यान नहीं देता था'।)

टिप्पणी—३ *'रिपु तेजसी अकेल…'* इति। अर्थात् कालकेतु और तापस नृप दोनों अकेले रह गये फिर

भी वे तेजस्वी शत्रु थे, राजाने उनको लघु जानकर खोजकर न मारा, यही समझता रहा कि वे अकेले हमारा क्या कर सकते हैं। उनके भाग जानेपर राजाको चाहिये था कि उन्हें खोजकर मारते। यह नीति है, यथा—*'रिपु रिन रंच न राखब काऊ।'* (२। २२९) शत्रु छोटा भी हो तो भी उसे छोटा न मानना चाहिये, यथा—*'रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिय न छोट करि।'* (३। २१) *'अजहुँ'* का भाव कि यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। *'सिर अवसेषित राहु'*—भाव कि जैसे राहु सिरमात्र ही है वैसे ही कालकेतु और तापस नृप सिरमात्र ही काटनेको रह गये थे और सब वंशका नाश तो राजाने कर ही दिया था।

नोट—१ यह दोहा भानुप्रताप, कालकेतु और तापस तीनोंमें घटित हो सकता है। कपटी मुनिका राज्य गया, उसके परिवार और सेना आदि सब राज्याङ्गोंका नाश हुआ। वह अकेला रह गया, जैसे राहुका सारा धड़ नष्ट हो गया, सिरमात्र रह गया। यद्यपि वह अकेला है तो भी क्या? वह है तो क्षत्रिय, फिर राजा और शत्रु! अवसरपर घात किया ही चाहे। भानुप्रतापको चाहिये था कि उसको खोजकर मारता। इसी तरह कालकेतुका वंश मारा गया। वह अकेला रह गया तो क्या? वह है तो तेजस्वी! देवता उससे जीत न पाते थे। अत: उसे भी मारना था। कालकेतुका परिवार राहुका धड़ है और कालकेतु सिर। (कालकेतुको राहु कहा क्योंकि राक्षस भी काला और राहु भी काला। *'तापस नृप'* को राहु कहा, क्योंकि जैसे राहु छिपकर देवताओंमें जा बैठा था वैसे ही यह भी भागकर मुनिवेष बनाकर बैठा था। और भानुप्रतापको ग्रसनेकी सन्धिकी घातमें था। पुन: भानुप्रताप इस समय अकेला है। उसकी सेना और मन्त्री आदि कोई अङ्ग इस समय साथ नहीं हैं। इसे कालकेतु और तापस नृपने मार क्यों न डाला? उसका समाधान करते हैं कि *'रिपु तेजसी'''।'* अर्थात् वह अकेला है तो क्या? है तो तेजस्वी! न मरा तो फिर इन्हें जीता न छोड़ेगा। जैसे राहुका छल सूर्य और चन्द्रमाने बता दिया पर भगवान्के चक्रसे भी वह न मरा, उसका धड़मात्र नष्ट हो गया, सिर जीवित रह गया अत: वह अबतक सूर्य और चन्द्रसे अपना बदला लेता है। पुन: अकेले उसके मारनेसे क्या होता? उसके भाई, मन्त्री प्रभृति खोज लगाकर इन्हें मार डालते, इनके रहते राज्य तो लौटकर मिलेगा नहीं। अतएव अकेले राजाको न मार परिवारसहित उसका नाश करनेका उपाय रचा। बला और अतिबला विद्याके जानकारको कोई सोतेमें मार नहीं सकता अथवा उस समय असुर भी सोते हुए शत्रुको मारना अनुचित समझते थे (वि० त्रि०)।

नोट—२ पंजाबीजी लिखते हैं कि जैसे रवि और शशि दो और राहु एक, वैसे ही कालकेतु और कपटी मुनि दो और भानुप्रताप अकेला है। इसीसे उन दोनोंने विचार किया कि यदि हम इसे मारने लगे और वह जाग पड़ा तो फिर यह हमें राहुकी तरह ग्रसेगा। इसलिये उसे द्विजशाप दिलाकर उसका नाश करना उचित है।

नोट—३ *'अजहुँ'*का भाव कि राहुका सिर काटे गये लाखों वर्ष हो गये। जब क्षीरसमुद्र मथा गया था तबकी यह बात है। पर उस वैरको राहु अबतक नहीं भूला, बराबर सन्धि पाकर वैरीको ग्रसता रहता है। वैसे ही यद्यपि कालकेतुके पुत्र और भाइयोंको मारे हुए तथा तापस नृपका राज्य छिने हुए अनेक वर्ष बीत गये तब भी ये दोनों अपना वैर भूले नहीं, उस पुरानी शत्रुताके कारण आज भानुप्रतापके नाश करनेको उद्यत हैं।

नोट—४ राहुके सिर कटनेकी कथा (दोहा ४। ३) *'हरिहर जस राकेस राहु से'* में देखिये। पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य है और उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य। दोनों वाक्योंमें बिना वाचक पदके बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव झलकना 'दृष्टान्त अलङ्कार' है।

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भएउ सुखारी॥ १॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥ २॥
अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥ ३॥

शब्दार्थ—**सखहि**=सखाको। **सखा**=साथी, मित्र। **साधेउँ**=ठीक कर लिया, वशमें कर लिया। कार्य सिद्ध कर लिया। रिपुका नाश कर दिया।

अर्थ—तपस्वी राजा अपने सखाको देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ॥ १॥ (फिर उसने) मित्रसे सब कथा कह सुनायी। (वह) निशाचर आनन्दित हो बोला॥ २॥ राजन्! सुनो। जो तुमने मेरा उपदेश (मेरे कहनेके अनुसार; मेरा कहा) किया तो अब मैंने शत्रुको साध लिया (उसका नाश कर डाला)॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'तापस नृप'''* का सम्बन्ध ऊपरके *'कालकेतु निसिचर तहँ आवा।'''* (१७०। ३) से है। अर्थात् कालकेतु वहाँ आया, उसे देखते ही तापस उठकर मिला। उठकर मिलने और हर्षित होनेका भाव कि तापस कालकेतुकी बड़ी प्रतीक्षामें बैठा था। सोच रहा था कि यदि कहीं कालकेतु आज न आया तो सब काम बिगड़ जायगा। मैंने राजासे एकरार किया है कि तपोबलसे तुम्हें सोते हुए घोड़ेसमेत घर पहुँचा दूँगा, यह बात मेरे सामर्थ्यसे बाहर है, मुझसे तो हो नहीं सकती, इत्यादि सोचमें पड़ा हुआ था, यथा—*'सो किमि सोव सोच अधिकाई।'* जिस समय वह इस चिन्तामें ग्रस्त था उसी समय कालकेतु आ गया। इसीसे तापस बड़ा सुखी हुआ और उठकर मिला। *'निहारी'*से सूचित हुआ कि उसकी राह देख रहा था कि कब आवे। (ख) *'कहि सब कथा सुनाई'* इति। सब कथा सुनानेका भाव कि जिसमें सब बातचीत सुनकर छल करनेमें चूके नहीं, जैसा सुने वैसा ही सब कार्य करे। (ग) *'जातुधान बोला सुख पाई'* इति। कालकेतुको सुख हुआ क्योंकि यह सब छल करना उसके लिये एक साधारण बात है। (धर्मात्माओंके साथ अन्याय करना, उनके नाशमें तत्पर रहना और नाशमें सुख मानना इत्यादि सब निशाचरोंके लक्षण हैं, यथा—*'जिन्हके यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥'*(१८४। ३) अतः *'सुख पाई'* के साथ *'जातुधान'* कहा।) कालकेतु आया, यह तापस नृपके मनकी बात हुई। इसीसे वह मित्रको देखकर सुखी हुआ। और कालकेतु कथा सुनकर सुखी हुआ। इससे जाना गया कि यह सब उसके मनकी बात हुई। जैसे कपटी मुनिने कथा सुनाकर कालकेतुको सुख दिया वैसे ही कालकेतु अपने मित्रको सुख देनेकी बात बोला।

टिप्पणी—२ (क) *'अब साधेउँ'* इति। अर्थात् अब मुझसे न बचेगा, अब मैं सब कर लूँगा। [श० सा० में *'साधित'* शब्द मिलता है जिसका एक अर्थ यह है—'जिसका नाश किया गया हो।' इसके अनुसार *'साधेउँ'* का अर्थ होगा 'नाश कर डाला।'] *'अब'* का भाव कि यदि तुम ऐसा उपाय न करते तो हम शत्रुका नाश न कर सकते। (ख) *'जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा।'* इति। इससे पाया गया कि कालकेतु इसे पूर्व ही यह सिखा गया था (कि मैं किसी दिन जब राजा शिकारको निकलेगा उसे छलद्वारा भटकाकर इधर ले आऊँगा। तुम उससे इस तरह बातें करना कि जिससे वह तुम्हें महामुनि जानकर तुम्हारे वशमें हो जाय, तुम्हारी आज्ञाके पालनमें तत्पर हो जाय) इत्यादि।

परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु* औषध बिआधि बिधि खोई॥ ४॥
कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई॥ ५॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी॥ ६॥

शब्दार्थ—**बिआधि**=(व्याधि)=रोग।

अर्थ—अब तुम चिन्ता त्यागकर सो रहो। विधाताने बिना दवाके रोगका नाश कर दिया॥ ४॥ वंशसहित शत्रुको जड़मूलसे (उखाड़) बहाकर मैं तुमसे चौथे दिन आकर मिलूँगा॥ ५॥ तपस्वी राजाको बहुत प्रकारसे सन्तोष (दिलासा) देकर (वह) महाकपटी और अत्यन्त क्रोधी (कालकेतु) चला॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'परिहरि सोच'''* इति। प्रथम कह आये हैं कि कपटी मुनिको सोचके मारे

---

* बिन—१६६१। प्रायः सर्वत्र 'बिनु' है, यहाँ लेखक-प्रमाद जान पड़ता है।

नींद नहीं पड़ती—*'सो किमि सोव सोच अधिकाई।'* इसीसे कालकेतु कहता है कि सोच छोड़कर सो रहो। सोचमें मनुष्यको निद्रा नहीं पड़ती, यथा—*'निसि न नींद''मरत बिकल सुचि सोच', 'गयो भवन अति सोच बस नींद परै नहिं राति।'* इसीसे प्रथम सोच त्याग करनेको कहा तब सोनेको (*'रहहु सोई'* का भाव कि पैर फैलाकर मेरे भरोसे निश्चिन्त सो रहो) (ख) *'बिनु औषध''''* इति। यहाँ भानुप्रताप व्याधि है। बिना दवाके अर्थात् बिना उपाय किये। भाव कि ऐसा प्रबल शत्रु साधारण उपायसे नहीं मर सकता तो एक साधारण उपायसे ही नाशको प्राप्त होगा। *'बिधि खोई'* का भाव कि विधिवश ही ऐसा संयोग आ बना है, नहीं तो अपने किये न होता। (ग) *'कुल समेत रिपु मूल''''* इति। शत्रुका मूल कुल है। कुलका नाश होनेसे शत्रु निर्मूल हो जायगा। [विप्र-गुरु-पूजा इसकी जड़ है। ब्राह्मणशापद्वारा इसकी जड़ धो बहाऊँगा। जड़के बह जानेसे इसका राज्यरूपी मकान भी ढह जायगा। (वि० त्रि०)] कपटी मुनिने राजासे कहा था कि *'मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजें'* हमसे-तुमसे तीसरे ही दिन भेंट होगी। इसीसे कालकेतु कहता है कि तीसरे दिन मैं राजासे पुरोहितका रूप धरकर भेंट करूँगा, चौथे दिन ब्राह्मणोंको प्रात: ही निमन्त्रित कराके मध्याह्नमें राजाको शाप दिलाकर उसी दिन तुमसे आ मिलूँगा।

टिप्पणी—२ *'तापस नृपहि''''''''* इति। (क) *'बहुत परितोषी'* का भाव कि कपटी मुनिको बहुत सोच है कि न जाने कोई विघ्न उपस्थित हो जानेसे काम न हो तो मेरी क्या दशा होगी। उसने ढाढ़ँस बँधाया कि वार खाली न जायगा। (वि० त्रि०) *'सो किमि सोव सोच अधिकाई',* इसीसे बहुत सन्तोष देना पड़ा। (ख)*'चला'* से स्पष्ट है कि तापस भानुप्रतापसे सोनेको कहकर दूसरी जगह (जहाँ उसके सोनेका आसन था) चला गया था। यदि यहाँसे भानुप्रतापका आसन दूर न होता तो कालकेतुका चलकर वहाँ जाना न कह सकते। (विशेष *'आसन जाइ बैठ छल ज्ञानी।'* (१७०। १) में देखिये।) (ग) *'महाकपटी अति रोषी'* इति। भाव कि तापस, कपटी और क्रोधी था, यथा—*'रिस उर मारि रंक जिमि राजा।'* और कालकेतु महा कपटी और अति रोषी है। यथा—*'जानै सो अति कपट घनेरा',* इसको अत्यन्त रोष है क्योंकि इसके दसों भाई और सौ पुत्र सभी राजाने मार डाले थे। [महा कपटी है अर्थात् अत्यन्त कपट जानता है। यथा—*'जानै सो अति कपट घनेरा।'* पुन: अपने अधीन पुरुषपर भी दया नहीं, उसे जड़मूलसे नाश करनेका प्रण किया है; इससे *'अति रोषी'* कहा। *'महा कपटी'* तो आगे उसके कर्मोंसे ही स्पष्ट है। (पं०)]

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माझ निकेता॥ ७॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई। हयगृह बाँधेसि बाजि बनाई॥ ८॥
दोहा—राजा के उपरोहितहि हरि लै गएउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ माया करि मति भोरि॥ १७१॥

शब्दार्थ—**माझ**=में, मध्यमें। **हयगृह**=घोड़ोंके रहनेका स्थान, घुड़शाल। **भोरी**=भ्रमित, भोली-भाली, जिसमें विचारशक्ति न रह जाय।

अर्थ—भानुप्रतापको घोड़ेसहित क्षणके भीतर ही घरमें पहुँचा दिया॥ ७॥ राजाको रानीके पास लिटाकर घोड़ेको अच्छी तरह घुड़शालामें बाँधा॥ ८॥ (फिर) राजाके पुरोहितको हर ले गया और (अपनी राक्षसी) मायासे उसकी बुद्धि भोरी करके उसे पर्वतकी गुफामें ले जाकर रखा॥ १७२॥

टिप्पणी—१ (क) कपटी मुनिने राजासे कहा था कि *'मैं तप बल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता॥'* इसीसे कालकेतुने उसे सोते हुए घोड़ेसमेत क्षणमात्रमें घर पहुँचा दिया। इस तरह तापसकी बात सत्य की। तापस राजाने तपबल कहा था। इसीसे क्षणभरमें ही पहुँचाया। जिससे राजाको विश्वास हो कि तपोबलसे यह काम किया गया। सोते ही और घोड़ेसमेत उसपर भी क्षणभरमें, यह सब असाधारण

बातें हैं। राजाने इसे मुनिका तपोबल माना भी है, यथा—'*मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी।*' (ख) तापसने तो पहले पुरोहितको हर लानेको कहा था, पीछे राजाको घर पहुँचानेको। परंतु कालकेतुने प्रथम राजाको पहुँचाया। क्योंकि यदि वह पहले नगरमें जाकर पुरोहितको हर लाता तो उसे फिर यहाँसे राजाको ले जाना पड़ता और फिर लौटना पड़ता। इस तरह उसे दो बार आना-जाना पड़ता। अतः कालकेतुने बुद्धिमानी की कि इनको वहाँसे लेता गया और यहाँसे लौटतेमें पुरोहितको ले आया।

टिप्पणी—२ '*नृपहि नारि पहिं सयन कराई।*''' इति। (क) तापसने राजासे यह नहीं कहा था कि हम तुम्हें रानीके पास शयन करा देंगे, क्योंकि वह महात्मा बना है। महात्माके मुखमें ऐसी बात शोभा नहीं देती। तापसने जब कालकेतुसे सब कथा कही तब उससे कह दिया कि राजाको रानीके पास शयन करा देना, क्योंकि राजा रानीके पास शयन करता है, पृथक् नहीं सोता। पुरुषका स्त्रीसे पृथक् शय्यापर सोना '**स्त्रीणामशस्त्रवध उच्यते**' स्त्रियोंके लिये अशस्त्रवध कहलाता है। (ख) राजा सो रहा था, उसी अवस्थामें रानीके पास पहुँचाया गया, घोड़ा अश्वशालामें पहुँचा। राजाको शय्यापर लिटाकर तब उसने घोड़ा बाँधा। '*बनाई*' अर्थात् अच्छी तरहसे बाँधा जिससे छूटे नहीं। ('*बनाई*' अर्थात् जीन आदि उतारकर अगाड़ी-पिछाड़ी बाँधकर, जैसी रीति है।)

टिप्पणी—३ '*राजा के उपरोहितहि*''' इति। (क) '*बहोरि*' अर्थात् घोड़ेको अश्वशालामें बाँधनेके पश्चात्। (ख) पुरोहितको हरनेका भाव कि धर्मकार्य कराना पुरोहितका काम है। बलि-वैश्वदेव, ब्राह्मणभोजनका संकल्प कराना, इत्यादिमें पुरोहित रहेगा तो वह सब जान जायगा क्योंकि वह बड़ा बुद्धिमान् पण्डित है। अतः उसे प्रथम ही हर ले गया।

नोट—१ यहाँ '*राजा के उपरोहितहि*' यह पद देनेका भाव यह है कि ब्राह्मण तो तपस्वी होते हैं। उनपर निशाचरकी मायाका प्रभाव नहीं पड़ सकता। पर, यह पुरोहित है, राज्य धन-धान्यसे पला है, इससे वह तेज नष्ट हो गया। इसीसे हर लिया गया। (पं०) वीरकविजी लिखते हैं कि ब्राह्मणके लिये राजपुरोहित होना ही दोषका कारण है, नहीं तो क्यों पागल बनाकर कन्दरामें कैद किया जाता। इसमें 'लेश अलङ्कार' की ध्वनि है।

☞ब्राह्मणों और विरक्तोंको इससे उपदेश ग्रहण करना चाहिये।

नोट—२ इसके साथ राक्षसने दो उपाय रचे। एक तो मति भोरी कर दी, दूसरे गिरिकन्दरामें छिपा दिया। कारण यह कि अगर 'इसे मैं उन्मत्त करके छोड़ दूँगा तो कदाचित् इसे कोई पहिचान ले और नगरमें खबर पहुँचा दे तो हमारा काम बिगड़ जायगा और यदि बिना मति बौराये कन्दरामें रखें तो ऐसा न हो कि वहाँसे चिल्लाये तो कोई सुनकर इसे निकाल दे।' (पं०) मति भोरी कर दी कि कन्दरामें ही घूमा करे बाहर न निकल सके, उसे यही न मालूम हो कि मैं कौन हूँ और कहाँपर हूँ।

महाराज हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि यदि वह बुद्धिसंयुक्त रहता तो कोई जप-तप, यन्त्र-मन्त्र इत्यादि-द्वारा राजाके पास पहुँच जाता और तब सब भेद खुल जाता, अतएव मति भ्रमित कर दी।

नोट—३ यहाँ कालकेतु नामकी सार्थकता दिखायी है। वह मानो सत्य ही कालकी ध्वजा है जो राजाके नाशके लिये उठकर उसके साथ उसके नगरको क्रोधित आया है।

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥ १॥
जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥ २॥
मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवहिं जेहिं जान न रानी॥ ३॥
कानन गएउ बाजि चढ़ि तेही। पुर नर नारि न जानेउ* केही॥ ४॥

---

* 'जानेउ'—१६६१।

शब्दार्थ—**बिरचि**=विशेष रचकर; अच्छी तरह बनाकर। **सेज**=शय्या, पलंग। **अनभएँ**=बिना हुए। **बिहाना**=प्रात:काल, सबेरा। **गवहिं**=गौंसे, सँभालकर, धीरे-धीरे, चुपचाप। यथा—*'देखि सरासन गवहिं सिधारे।'* (२५०। २) **तेही**=वह, उसी। **केहीं**=किसीने।

अर्थ—आप पुरोहितका रूप बनाकर उसकी अनुपम शय्यापर जा लेटा॥ १॥ राजा सबेरा होनेसे पहिले ही जागा। महलको देखकर उसने बड़ा आश्चर्य माना॥ २॥ मनमें मुनिकी महिमा विचारकर वह चुपचाप बड़ी सावधानीसे उठा जिसमें रानी न जान पाये॥ ३॥ वह उसी घोड़ेपर चढ़कर वनको गया। नगरके स्त्री-पुरुष किसीने भी न जाना॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'बिरचि'* का भाव कि ऐसा पुरोहितरूप बनाया कि कोई भाँप नहीं सकता (कि पुरोहित नहीं हैं। पुरोहिताइन भी न जान सकी तब दूसरेकी तो बात ही क्या?) (ख) *'परेउ जाइ'*—सेजपर जाकर लेटनेका भाव कि जिसमें कोई यह न जान पावे कि पुरोहित घरमें नहीं हैं, कहाँ चले गये? [*'जाइ'* से यह भी जनाया कि पुरोहितको कहीं दूर ले जाकर रख आया। वहाँसे पुरोहितके यहाँ गया।]

(ग) *'सेज अनूपा'* इति। इससे जनाया कि उसने विप्रपत्नीका धर्म बिगाड़ा। गोस्वामीजीने इस अपराधको प्रकट न कहा, *'अनूपा'* शब्दसे सूचित कर दिया। सेजकी अनूपता यही है कि उसमें अपूर्व स्त्री रहे। [*'सेज'* प्राय: स्त्रीसहित शय्याके लिये प्रयुक्त होता है। स्त्रीके पास जाकर लेटा, उसका धर्म नष्ट किया और उसने न जाना कि यह हमारे पति नहीं हैं। *'अनूपा'* से यह भी जान पड़ता है कि राजासे दानमें मिला होगा। (प्र० सं०) पुरोहितका धर्म नष्ट किया; क्योंकि गुरुका धर्म नष्ट होनेसे शिष्यका विनाश होता है। (पं०) वि० त्रि० लिखते हैं कि पुरोहितकी जैसी शय्या थी वैसी राजाकी न थी, इसलिये अनूप कहा। इससे राजाका नीति-नैपुण्य और धर्मबुद्धि सूचित हुई। राजाके यहाँ पुरोहितका बड़ा सम्मान था। रात अभी बाकी थी, इसलिये शय्यापर जा लेटा।]

टिप्पणी—२ (क) *'जागेउ नृप⋯'* इति। सबेरा होनेके पूर्व ही जागना कहकर जनाया कि यद्यपि राजा बहुत थके हुए थे और बहुत रात बीते सोये थे तथापि अपने जागनेके समय ही जगे। महात्माओंके उठनेका समय प्रात:काल ही है, यथा—*'पछिले पहर भूपु नित जागा।'* (२। ३८। १) (पुन: भाव कि और सबोंके उठनेके समयसे पहले ही उठा क्योंकि यदि औरोंके उठनेका समय हो गया होता तो राजाका आना लोग जान जाते।) (ख) *'अति अचरजु माना'* का भाव कि प्रथम कपटी मुनिकी वार्ता सुनकर आश्चर्य माना था और अब उनका कर्तव्य देखा (कि सत्य ही जो उन्होंने कहा था वैसा किया कि सत्तर योजनकी दूरीपर और फिर महलमें और रानीके पास सोते ही पहुँचा दिया यह विशेष काम किया) अत: अति आश्चर्य हुआ।

टिप्पणी—३ (क) *'मुनि महिमा'* इति। भाव कि यह सब महिमा कालकेतुकी है; पर राजाने उसे मुनिकी महिमा जानी। पुन: भाव कि पहले भवन देखकर आश्चर्य माना फिर अपने चित्तका समाधान किया कि यह मुनिकी महिमा है। हमसे कहा था कि सोते ही घोड़ेसमेत तुमको घर पहुँचा देंगे वैसा ही उन्होंने किया, उनकी महिमासे यहाँ पहुँचे, यह उनकी बड़ी भारी महिमा है। (ख) *'उठेउ गवहिं⋯'*—(सोते हुए घरमें पहुँच जाना, किसीको खबर न होना इत्यादि बातोंको छिपानेके लिये राजा चुपचाप उठकर फिर वनको चला गया) *'जेहि जान न रानी'*—क्योंकि रानी यदि जाग पड़ी तो वह राजाको देखकर अवश्य पूछेगी, पूछनेपर बताना पड़ेगा और बतानेसे हानि है (कपटी मुनि, पहले ही चेतावनी दे चुका है। यथा—*'तातें मैं तोहि बरजउँ राजा। कहें कथा तव परम अकाजा॥ छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥'* (१६६। १-२) पूछनेपर झूठ बोले तो भी हानि है। क्योंकि *'नहिं असत्य सम पातक पुंजा।'* (२। २८) यहाँ 'युक्ति अलंकार' है।

टिप्पणी—४ (क) *'कानन गएउ'*, वनको चला गया जिसमें लौटनेपर लोग जानें कि राजा अभी वनसे आया है, मुनिका रातमें ही भवनमें पहुँचाना किसीको मालूम न हो। *'बाजि चढ़ि तेही'* उसी घोड़ेपर

चढ़कर गया क्योंकि यदि दूसरेपर जाता तो लोगोंको सन्देह हो जाता कि राजा तो जिस घोड़ेपर शिकारको गया था वह तो हयशालामें बँधा हुआ है, राजा कहाँ है, (घोड़ा यहाँ अकेला कैसे और क्यों आया? फिर, दूसरा घोड़ा यहाँ नहीं है, उसे कौन और कब ले गया? दूसरे घोड़ेपर लौटा देख लोग अवश्य पूछते।) (ख) *'पुर नर नारि न जानेउ केही',* पुरवासियोंमेंसे भी किसीने न जाना, इससे जान पड़ता है कि इसमें कुछ कालकेतुकी मायाका प्रभाव रहा होगा। (निशाचरने राक्षसी मायासे सबको मोहित कर दिया था। वि० त्रि० का मत है कि राजाओंके ऐसे गुप्त मार्ग होते थे कि वे उनसे पुरके बाहर आया-जाया करते थे और किसीको पता न चलता था।)

गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥ ५॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥ ६॥
जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी॥ ७॥

शब्दार्थ—**गएँ**=बीत जानेपर। **जाम** (याम)=पहर, प्रहर, तीन घंटेका समय। **बधावा**=बधाई, मङ्गलाचार, आनन्द-मङ्गलके अवसरका गाना-बजाना। **चकित**=चौकन्ना, आश्चर्ययुक्त, भौचक्का, हक्का-बक्का। **लीनी**=(लीन)—मग्न, अनुरक्त, लगी हुई, तन्मय।

अर्थ—दोपहर बीतनेपर राजा आया। घर-घर उत्सव होने लगे और बधाइयाँ बजने लगीं॥ ५॥ जब राजा पुरोहितको देखता है (तब अपने) उसी कार्यका स्मरण कर चकित हो (उसकी ओर) देखने लगता है॥ ६॥ राजाको तीन दिन युगके समान बीते (क्योंकि) उसकी बुद्धि कपटी मुनिके चरणोंमें लीन हो रही थी॥ ७॥

टिप्पणी—१ (क) *'गएँ जाम जुग·····'* इति। दोपहरमें आये जिसमें लोग जानें कि तबके गये अब आये हैं। [दो पहर दिन बीतनेपर आया क्योंकि पहले आते तो भी सब पूछते कि रातमें कहाँ ठहरे थे जो इतनी जल्दी आ गये, रातमें क्यों न आ गये? दोपहर होनेसे वे समझे कि कहीं बहुत दूर निकल गये थे जहाँसे सबेरे चलकर आये हैं। (पंजाबीजी, रा० प्र०) किसी-किसीका मत है कि अपने जानेसे दोपहर बीतनेपर आया। अथवा, 'दिन बितानेके लिये दोपहर बीते आया'] (ख) ***'घर घर उत्सव···'*** इति। जब राजा घोर वनमें प्रवेश कर गया तब साथके लोगोंने लौटकर सब हाल कहा। राजाके न आनेसे घर-घर सब लोगोंको संदेह हो रहा था (कि न जाने जीवित हैं या नहीं। सब दुःखी थे) इसीसे राजाको आये देख घर-घर उत्सव होने लगा और उसका नवीन जन्म समझकर बधाइयाँ बजने लगीं। (जन्मके समय बधाई बजनेकी रीति है। यथा—*'गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमाकंद।'* (१९४) वि० त्रि० का मत है कि मृगयाका साज-समाज साथ न होनेसे लोग समझेंगे कि वे सब विंध्याचलमें राजाकी बाट जोह रहे होंगे।)

टिप्पणी २ (क) ***'उपरोहितहि देख जब राजा'*** इति। घर-घर उत्सव होने लगा, राजमहलमें भी उत्सव होने लगा, तब पुरोहित भी दान कराने, आशीर्वाद देनेके लिये आया (ही चाहे) इसीसे पुरोहितको देखना कहा। (ख) *'चकित बिलोक·····'*—पुरोहितके द्वारा कार्य होनेको है, यथा—*'मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा। सब बिधि तोर सँवारब काजा॥'* (१६९। ६) इसीसे कार्यका स्मरणकर चौकन्ना होकर देखता है कि यह हमारा पुरोहित है कि पुरोहितका रूप धरे हुए मुनि ही हैं। पहचानने नहीं पाता, इसीसे संदेहमें है, जब पहचानेगा तब सुखी होगा, यथा—*'नृप हरषेउ पहिचानि गुरु·····।'* (१७२) अथवा, अपना कार्य प्रिय है इसीसे पुरोहित प्रिय लगा, पुरोहितको चकित देख रहा है कि ये ही हमारा काम करेंगे। (बैजनाथजीका मत है कि जब पुरोहितको देखा तो स्वरूप तो वही था पर बोलचाल, स्वभाव और प्रकारका था इससे उसे देख चित्त चकित हुआ और अपना कार्य सिद्ध समझा।)

टिप्पणी ३—*'जुग सम नृपहि गए दिन तीनी'* इति। (क) तापसने राजासे तीन दिनका करार किया

था, यथा—'*मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे।*' (१६९। ७) इसीसे उसके बिना तीन दिन सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगोंके समान बीते। तीन दिन कुछ अनर्थ न हुआ। (इसीसे इन तीनको तीन उत्तम युग जो प्रथम होते हैं निश्चित करते हैं) चौथा दिन कलियुगके समान नाश करनेवाला आवेगा। [समयका युग-समान बीतना मुहावरा है। चिन्ता आदिसे समय काटे नहीं कटता, मानो युग-का-युग बीत गया। यथा—'*भइ जुग सरिस सिराति न राती।*' (२। १५५) राजा अपने स्वार्थकी चिन्तामें है कि कब मुनि आयें और मेरा मनोरथ सिद्ध हो। अत: उसे तीन दिन काटे नहीं कटते, युगके समान बड़े जान पड़ते हैं।] (ख) '*दिन तीनी*'—इससे पाया गया कि जिस दिन कपटी मुनिसे बातचीत हुई थी और उसने कहा था कि हमसे-तुमसे तीसरे दिन भेंट होगी, वह दिन छोड़कर तीन दिन पूरे बीते। क्योंकि यह बात उसने दो पहर रात्रि बीतनेपर कही थी। उसके पश्चात् राजा सो गया, सबेरा उसे घरमें हुआ, तब वह दिन युगसमान क्योंकर बीत सकता है! वह दिन तो सुखसे बीता। इससे पाया गया कि कालकेतु दो दिन बिताकर तीसरे दिन संध्या समय राजासे मिला। (ग) '*कपटी मुनि पद रह मति लीनी*'—कपटी मुनिके चरणोंमें राजाकी अत्यन्त प्रीति है; इसीसे प्रसङ्गमें अनेक जगह चरणोंमें प्रेमका उल्लेख कविने किया है। यथा—'*बड़े भाग देखेउँ पद आई।*' (१५९। ६) '*चरन बंदि निज भाग्य सराही।*' (१६०। २) '*जोसि सोसि तव चरन नमामी।*' (१६१। ५) '*गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना।*' (१६४। ६) '*सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा।*' (१६६। ५) '*अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल।*' (१६७) तथा यहाँ '*कपटी मुनि पद*'''*।*' ['*रह मति लीनी*' से सूचित किया कि प्रत्येक क्षण इसी सोच-विचारमें बीतता था कि कब मुनिके दर्शन हों-]

समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मतें सब कहि समुझावा॥८॥

दोहा—नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुम्ब समेत॥१७२॥

शब्दार्थ—**मतें**=मत, गुप्त बात। =एकान्तमें। **चेत**=बोध, ज्ञान।

अर्थ—अवसर जानकर पुरोहित आया और राजाको सब गुप्त बात एकान्तमें कह समझायी॥८॥ राजा गुरुको पहचानकर प्रसन्न हुआ। भ्रमके वश उसे चेत न रहा। उसने तुरंत एक लाख श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको कुटुम्बसमेत (भोजनके लिये) निमन्त्रण दे दिया॥१७२॥

टिप्पणी—१ '*समय जानि''''''आवा*' इस कथनसे पाया गया कि समय भी निश्चित कर दिया था कि तीसरे दिन संध्या समय आवेंगे। तापसने राजासे कहा था कि '*पहिचानेहु तब मोहि। जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि॥*' वही यहाँ कहते हैं कि '*नृपहि मतें सब*''''' अर्थात् एकान्तमें बुलाकर सब कथा कही। इस तरह यहाँ '*मतें*' का अर्थ है 'एकान्तमें'। '*सब*' अर्थात् जो वार्ता वनमें हुई थी वह सब।

टिप्पणी—२ (क) '*हरषेउ*' से जनाया कि राजा बिना गुरुको पहचाने व्याकुल था—'*जुग सम नृपहि गए दिन तीनी*' पहचाना तब प्रसन्न हुआ। (ख) '*भ्रम*' कि ये महामुनि हैं। '*रहा न चेत*'—विचार करनेवाले मन, बुद्धि और चित्त—ये तीनों कपटी मुनिमें लगे हुए हैं, यथा—'*मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी*' (मन मुनिकी महिमामें भूला हुआ है); '*कपटी मुनि पद रह मति लीनी*' (बुद्धि मुनिके चरणोंमें लीन है) और महामुनि होनेका भ्रम हुआ इसीसे चेत न रहा, अर्थात् चित्त उसे महामुनि माने हुए है। (ग) '*बरे तुरत''''''*' इति। राजाको इस कार्यके सिद्ध होनेकी बड़ी इच्छा है। इसीसे उसने तुरंत विप्रोंको निमन्त्रित किया। कपटी मुनिकी आज्ञा है कि '*नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार।*' इसीसे राजाने '*बरे तुरत सत सहस''''''।*' बर अर्थात् वेदपाठी ब्राह्मण। (उत्तम, कुलीन, श्रोत्रिय इत्यादि) '*बरे तुरत*' से सूचित किया कि कालकेतुहीने निमन्त्रण जाकर दिया और सबको बुला लाया, यह काम दूसरेसे न बन पाता। एक लक्ष वेदपाठी ब्राह्मणोंके घर निमन्त्रण गया, इससे सूचित हुआ कि नगर बहुत बड़ा है।

नोट—१ *'भ्रम बस रहा न चेत'* इति। वह तो भ्रममें पड़ा था कि ये बड़े चिरकालीन तपस्वी मुनि हैं, अपने तपोबलसे हमें सोते घर पहुँचा दिया, पुरोहितका ठीक रूप बना लिया, इत्यादि बातोंसे वह पूर्ण रीतिसे उसके वशीभूत हो रहा था। बुद्धि उसीमें तन्मय हो रही थी। इसीसे कुछ विचार न किया कि क्या एक लक्ष ब्राह्मणोंका नित्य प्रति निमन्त्रण करना और भोजन कराना तथा उससे विप्र-सुर सबका वश हो जाना सम्भव है? कार्यके उचित होनेका विचार न रहा। जैसा हितोपदेशमें कहा है— **'अनुचितकार्यारम्भः स्वजनविरोधो बलीयसां स्पर्द्धा। प्रमदाजनविश्वासो मृत्युर्द्वाराणि चत्वारि॥'**

नोट २—मयंककार लिखते हैं कि 'राजाने भ्रमवश राजनीतिको त्याग दिया क्योंकि कपटी मुनिने कहा था कि तुम्हारे पुरोहितको हम हर लावेंगे, यहाँ एक वर्ष रखेंगे। यदि राजा पुरोहितके हरे जानेपर यह जाँच करते कि उसकी कुटी कहाँ है, किस प्रकार पुरोहितको रखा है तो सब भेद अनायास खुल जाता परंतु दुःख होनहार था, अतः राजनीति छूट गयी।'

श्रीबैजनाथजी—'राजाको भ्रम क्यों हुआ? क्योंकि प्रथम राजाकी मति परमेश्वरके पदमें लीन रही, उनकी कृपासे धर्म पूर्ण रहा, प्रताप उदित रहा, चैतन्यता बनी रही। जब कपटी राजाके पदमें मति लीन हुई तब मति मन्द हो गयी। किस भाँति सो सुनिये—पहले हरिके आश्रित रहनेसे धर्म पूर्ण रहा इससे प्रथम दिन सत्ययुगसम बीता। जब कपटमें मन लगा, कुछ मति मन्द हुई, तब धर्मके एक पद 'सत्य' का नाश हुआ इससे दूसरा दिन त्रेतासम बीता। कपटके ध्यानसे आधी मति गयी तब धर्मके दो पाद सत्य और शौचका नाश हुआ इससे तीसरा दिन द्वापरसम बीता। चौथे दिन तीन अंश मति मन्द हुई, इससे धर्मके तीन पाद सत्य, शौच और दयाका नाश होनेसे मूर्तिमान् राक्षसरूप कलियुग आया सो एक पद दानमात्र जो बच रहा था उसे भी उसने विघ्न लगाकर उखाड़ डाला। पूर्ण धर्मका नाश हुआ।'

वि० त्रि०—राजाको यह याद न रहा कि कालकेतुके सौ पुत्र और दस भाइयोंको मैंने मारा है, उसका पता किसी तरह नहीं लग सका, वह महामायावी है। बदला लेनेकी फिक्रमें लगा होगा। कहीं यह सब उसकी माया तो नहीं है। नहीं तो एक आदमी इतने आदमियोंके लिये रसोई कैसे बनावेगा?

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जस श्रुति गाई॥१॥
मायामय तेहि कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकै न कोई॥२॥
बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ बिप्र मासु खल साँधा॥३॥

शब्दार्थ—'**बिंजन** (व्यञ्जन)=भोजनके पदार्थ। **छरस**=षट्रस, मधुर, तिक्त, अम्ल (आँवलेके स्वादका), लवण (नमकीन), कटु (कड़वा एवं खट्टा) और कषाय (जिसके खानेसे जीभमें एक प्रकारकी ऐंठन वा संकोच जान पड़े। कसैला, बकठा)। यथा—'**कटुकं लवणं चैव तिक्तं मधुरमेव च। आम्लं चैव कषायं च षड्विधाश्च रसाः स्मृताः॥**' *'चारि बिधि'*—'**भक्ष्यं भोज्यं तथा चोष्यं लेह्यं चैव चतुर्विधम्।**' (दोहा ९९। ४) देखिये। **बिंजन** (व्यञ्जन)=पके हुए भोजनके पदार्थ। (यही अर्थ इसका साधारण बोल-चालमें होता है। अन्यथा तरकारी, साग आदि जो दाल, भात, रोटी आदिके साथ खाये जाते हैं उनको व्यञ्जन कहते हैं)। **आमिष**=मांस। **राँधना**=पकाना। (सं० रंधन शब्दसे बना है) **साँधना**=मिलाना, मिश्रित करना, फेंट देना।

अर्थ—पुरोहितने षट्रस और चार प्रकारकी रसोई बनायी जैसी श्रुतियों-(सूपशास्त्र, पाकशास्त्र-) में वर्णित है॥१॥ उसने मायामय रसोई बनायी। भोजनके पदार्थ बहुत थे, कोई गिन नहीं सकता था॥२॥ उसने अनेक पशुओंका मांस पकाया और उसमें उस खलने ब्राह्मणोंका मांस मिला दिया॥३॥

टिप्पणी—१ (क) *'उपरोहित जेवनार बनाई'''*' इति। कपटी मुनिने कहा था कि *'जौं नरेस मैं करौं रसोई।'* और—*'मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार।'* इसीसे पुरोहितने जेवनार बनायी। दूसरा कोई रहता तो उसकी राक्षसी माया देखकर समझ जाता कि यह मनुष्य नहीं है, इसीसे उसने वहाँ किसी

दूसरेको न रखा और ऊपरसे यह दिखाया कि हम सिद्ध हैं, हमारा बनाया भोजन खानेसे ब्राह्मण वशमें हो जायँगे, दूसरेके हाथके बनाये हुएसे नहीं। (ख) *'माया मय तेहि कीन्हि रसोई'* यह स्पष्ट ही है जैसा आगे कहा है *'तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा।'* (१७४। ७) ये सब व्यञ्जन राक्षसकी मायासे बने थे, इसीसे कालकेतुके अन्तर्धान हो जानेपर सब व्यञ्जन भी अन्तर्धान हो गये, न वह रहा न व्यञ्जन रहे। पुनः 'मायामय रसोई की' यह कहकर जनाया कि उसके बनानेमें किञ्चित् विलम्ब न लगा, बिना परिश्रम एक लक्ष ब्राह्मणोंका भोजन बन गया। [पुनः, 'मायामय' यह कि बनाया तो थोड़ा ही पर माया यह रची कि देखनेवालेको अगणित देख पड़े, इत्यादि।] (ग) *'बिंजन बहु'* से जनाया कि रसोई मायामय है; किन्तु पदार्थ सब सच्चे हैं, देखनेमात्रके ही हों ऐसा नहीं है। *'गनि सकै न कोई'* यह मायाका चमत्कार है।

टिप्पणी—२ *'बिबिध मृगन्ह'*…… 'इति। (क) विविध मृग अर्थात् हिरन, रोजा, साबर, खरगोश, बारहसिंघा, सेही आदि अनेक पशु। इनके मांसमें ब्राह्मणका मांस मिलानेके लिये किसी ब्राह्मणका वध किया इसीसे उसको खल कहा। यथा—*'कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं।'* (५। ३) (ख) रसोईमें मांस-भोजन बना, इससे पाया गया कि तब ब्राह्मण मांस खाते रहे। पुरोहितने सब रसोई बनायी, मांस बनाया तब उसे *'खल'* न कहा क्योंकि रसोईमें कोई अयोग्य बात न थी। ब्राह्मणका मांस मिलाया, यह अयोग्य काम किया, इसीसे *'खल'* कहा। [ब्राह्मण अनेक मतमतान्तरके होंगे। कोई शाक्त भी होंगे। उनके लिये मांस पकाया गया। वैष्णव मांस नहीं खाते अथवा, विप्रोंको कुपित करनेके लिये ही ऐसा किया गया, मांस कोई भी ब्राह्मण न खाता था। यह भी स्मरण रहे कि जो निमन्त्रित किये गये वे सब 'वर विप्र' थे। *'वर'* शब्द जनाता है कि वे सब सात्त्विक ब्राह्मण थे। वि० त्रि० लिखते हैं कि वस्तुतः वहाँ कोई रसोई न थी, केवल वहाँ अनेक जन्तुओंके मांस थे और उनमें ब्राह्मणका भी मांस मिला था]।

भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए॥ ४॥
परुसन जबहि लाग महिपाला। भै अकास बानी तेहि काला॥ ५॥
बिप्र बृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥ ६॥
भएउ रसोईं भूसुर मासू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥ ७॥

अर्थ—सब ब्राह्मणोंको भोजनके लिये बुलाया। चरण धोकर सबको आदरपूर्वक बैठाया॥ ४॥ ज्यों ही राजा परसने लगा त्यों ही उसी समय आकाशवाणी हुई॥ ५॥ हे ब्राह्मणवृन्द! उठ-उठकर (अपने-अपने) घरको जाओ। अन्न मत खाओ, इसमें बड़ी हानि है॥ ६॥ रसोई ब्राह्मण-मांसकी हुई है। सब ब्राह्मण विश्वास मानकर उठ खड़े हुए॥ ७॥

टिप्पणी—१ जैसे निमन्त्रण तुरंत दिया गया था वैसे ही भोजनके लिये भी तुरंत बोलाया। *'सादर'* देहली दीपक है। सादर चरण पखारे अर्थात् स्वर्णपात्र आदिमें चरण रखकर धोये और सादर बैठाया अर्थात् सबको आसन दिया। यथा—*'सादर सबके पाँउ पखारे। जथा जोग पीढ़न बैठारे॥'* ☞ यहाँ पञ्चोपचार पूजन कहते हैं। *'भोजन कहँ सब बिप्र बोलाए'* यह आवाहन है; *'पद पखारि'* पाद्य है; *'सादर बैठारे'* यह आसन है; *'परुसन जबहि लाग'* यह नैवेद्य है; पाँचवाँ ताम्बूल है। यहाँ नैवेद्य और ताम्बूल दोनों न हो पाये।

'परुसन जबहि लाग'…… ' इति। (क) कपटी मुनिने राजासे परसनेको कहा था, यथा—*'तुम्ह परसहु मोहि जान न कोऊ'* इसीसे राजा परसने लगा। परसते ही आकाशवाणी हुई जिसमें ब्राह्मण उसे भगवान्‌को अर्पण न करें, 'बलिवैश्वदेव' न करें। [(ख) राजाका परोसना यही है कि स्वयं महाराजने भी हाथ लगा दिया। सारा समाज परोस रहा था। भाव यह कि परोसनेका काम पूरा होनेपर राजाने स्वयं परोसनेमें हाथ लगाया, उसी समय आकाशवाणी हुई। परिवारके सहित राजा परोसता था, यह बात इतनेसे ही सिद्ध है कि ब्राह्मणोंने परिवारसहित राजाको शाप दिया। राजाके स्वयं परोसनेसे मालूम हुआ कि बड़ी श्रद्धा

है; नहीं तो राजाके परोसनेका नियम नहीं। हिमाचल और श्रीजनकजीने स्वयं नहीं परोसा। रसोइयोंने परोसा था। पर यहाँ रसोईदारका किसीको पता नहीं। अतः अब राजा पूरी तरह रसोईका जिम्मेदार हो गया। अब निगमन यही होगा कि राजाको ऐसी ही रसोई इष्ट थी, इसीसे न जाने किस-किसको बुलाकर रसोई बनवायी, पुराने रसोइए भी सम्मिलित नहीं किये गये। (वि० त्रि०)]

टिप्पणी—२ *'भै अकास बानी तेहि काला'*—यह आकाशवाणी ईश्वरकी है जैसा आगे स्पष्ट है—*'ईस्वर राखा धरम हमारा।'* अथवा, शाप दिलानेके लिये कालकेतु ही आकाशसे बोला। *'तेहि काला'* से 'तेहि कालकेतु की' यह अर्थ '**नामैकदेशे नाममात्रस्यैव ग्रहणम्**' इस न्यायसे ले सकते हैं। कालकेतुने इस भावसे ब्राह्मणोंका अपराध न किया कि कहीं हमें भी शाप न दें और इसी अभिप्रायसे उसने ब्राह्मणोंका हित किया कि आकाशवाणी बोला। (टि० ४ भी देखिये)

टिप्पणी—३ *'बिप्र बृंद उठि उठि गृह जाहू।'''''* (क) *'उठि उठि'* कहनेसे पाया गया कि ब्राह्मणोंके बहुत-से वृन्द थे, एक बार ही *'उठि'* कहते तो एक ही वृन्द पाया जाता। (ख) *'बिप्र बृंद'* कहा क्योंकि सब ब्राह्मण अपने-अपने कुटुम्बसमेत पृथक्-पृथक् हैं। 'घर जाओ' यह कहनेकी रीति है, यथा—*'तजहु आस निज निज गृह जाहू।', 'तुम्ह घर गवनहु भयउ बिलंबा॥', 'जाहु भवन कुल कुसल बिचारी।'* (ग) अन्न मत खाओ क्योंकि रसोईमें ब्राह्मणोंका मांस बना है, इस कथनसे पाया गया कि सब अन्नमें मांसका संसर्ग कर दिया है। (घ) *'है बड़ि हानि'*—धर्मकी हानि बड़ी हानि है, जैसा ब्राह्मणोंके *'ईस्वर राखा धरम हमारा'* इस वाक्यसे स्पष्ट है। अन्न खानेसे क्या हानि है यह आकाशवाणी आगे कहती है—*'भएउ रसोईं''''' ।'* [*'बड़ि हानि'* से जनाया कि अन्य जीवोंका मांस-भक्षण करना भी 'हानि' है और ब्राह्मण-मांस-भक्षण तो बड़ा पाप है, औरोंका प्रायश्चित्त है, इसका प्रायश्चित्त भी नहीं। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—४ *'भएउ रसोईं भूसुर मासू'''''* इति। (क) यह 'बड़ी हानि' बतायी। यह आकाशवाणी कालकेतुकी है, यह इस चरणसे सिद्ध होता है। कालकेतुकी वाणी है, इसीसे उसमें उसने अपना नाम नहीं बताया। यदि यह ब्रह्मवाणी होती तो अवश्य कहती कि कालकेतु राक्षसने रसोईमें ब्राह्मण-मांस बनाया है। (ख) *'उठे'* क्योंकि आकाशवाणीकी आज्ञा है कि *'उठि उठि गृह जाहू।' 'मानि बिस्वासू'* का भाव कि भानुप्रताप विप्रसुरसेवी है इससे कभी विश्वास न होता कि वह ब्राह्मणोंका मांस खिलायेगा; पर बोलनेवाला कोई दिखायी नहीं पड़ता और शब्द सुनायी पड़ते हैं, अतः यह अवश्य आकाशवाणी ही है, यह विश्वास हुआ। आकाशवाणीसे ही ऐसा विश्वास हुआ, अतः उठ पड़े। राजाके विनाशार्थ ब्राह्मणोंपर अपनी करनी प्रकट करनेका अवसर जानकर कालकेतुने सोचा कि यदि सीधे-सीधे कहूँगा तो छानबीन होने लगेगी और सारी कलई खुल जायगी। ब्रह्मवाणीपर झटपट विश्वास होता है, अतः उसकी ओटसे कार्य करना ठीक होगा। तुरन्त अदृश्य होकर व्योममें गया और आकाशवाणी की। इसमें 'व्याजोक्ति अलङ्कार' है। (वीर)]

भूप बिकल मति मोह भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥ ८॥

दोहा—बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार॥ १७३॥

अर्थ—राजा व्याकुल (हैरान) है। उसकी बुद्धि मोहसे भूली हुई (अर्थात् नष्ट हो गयी) है। होनहारवश उसके मुखसे वचन नहीं निकलता॥ ८॥ तब ब्राह्मण कोप करके बोले, उन्होंने कुछ भी विचार न किया।* (कहा कि) रे मूर्ख राजा! तू परिवारसहित जाकर निशाचर हो॥ १७३॥

टिप्पणी—१ (क) मोहसे बुद्धि नष्ट हो जाती है, यथा—*'मुनि अति बिकल मोह मति नाठी।'* (१३५। ५) राजा मोहके वश है इसीसे उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी। उसे चाहिये था कि अपना सब वृत्तान्त ब्राह्मणोंके चरणोंपर गिरकर कह देता (प्रार्थना करता कि कोप न कीजिये, पहले सब वृत्तान्त सुन लीजिये तब अपराध

* दूसरा अर्थ टि० २ में दिया गया है।

हो तो मुझे दण्ड दीजिये)। अपना वृत्तान्त कह देता तो ब्राह्मण शाप न देते। पर भावीवश उसके मुखसे वचन न निकला। (ख) *'भावी बस'''''* इति। भावीवश राजाके साथ छल हुआ इसीसे ग्रन्थकारने कई जगह उसका भावीवश होना कहा है। यथा—*'तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलै सहाइ।'* (१५९) (भावी उसको कपटी मुनिके पास ले गयी। इस वाक्यसे भावीका प्रवेश राजाके तनमें दिखाया); *'जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥'* (१७०। ८) (इससे मनमें भी भावीका प्रवेश दिखाया क्योंकि जानना मनसे होता है। राजा मनसे जान न पाये) तथा—*'भावी बस न आव मुख बानी'* (मुखसे वचन न निकला, भावीने वाणी रोक दी; यहाँ वाणीपर भी भावीका प्रभाव कहा); और आगे ब्राह्मणोंने भी कहा है—*'भूपति भावी मिटै नहिं जदपि न दूषन तोर॥'* (१७४)

टिप्पणी—२ *'बोले बिप्र'''''* इति। (क) *'सकोप तब'* अर्थात् जब राजा कुछ न बोला तब राजाको अपराधी समझकर कुपित हुए (क्योंकि आकाशवाणी सुनकर भी उसके निराकरणमें कुछ न बोलनेसे उसमें उसकी सम्मति पायी गयी—**'मौनं सम्मतिलक्षणम्'** *'खामोशी अल रजा'* प्रसिद्ध है। यदि अपराध नहीं किया था तो चुप क्यों रहता? दूसरे विप्रसमाजभरका निमन्त्रण था, इतनोंका धर्म नष्ट होता था। इसीसे तुरत भारी कोप हुआ। बात ऐसी गठ गयी कि आकाशवाणीपर शंकाको स्थान ही नहीं)। (ख) *'नहिं कछु कीन्ह बिचार'* इति। इसके दो अर्थ होते हैं—एक तो यह कि 'तूने कुछ विचार न किया' कि हम ब्राह्मणोंको मांस खिलाकर उनका धर्म नष्ट करते हैं, इस अधर्मसे हमारा स्वयं ही नाश हो जायगा। दूसरे यह कि ब्राह्मणोंने कुछ विचार न किया। उन्हें विचार करना चाहिये था कि राजा तो बड़ा धर्मात्मा है, वह ब्राह्मणोंको विप्रमांस कैसे खिलायेगा, इस बातका निश्चय करके तब शाप देना था। इसी बातपर दूसरी आकाशवाणी हुई। यथा—*'बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा।'* (१७४। ५) कुछ विचार न किया (क्योंकि ब्रह्मगिरा असत्य नहीं होती, इसे ब्रह्मवाणी ही समझे; इसीसे एकदम उठे और एकदम क्रोध आ गया) क्रोधमें विचार नहीं रह जाता। (ग) *'जाइ'* अर्थात् मरकर। *'निसाचर होहु'*—भाव कि राक्षस विप्रमांस खाते हैं, यथा—*'खल मनुजाद द्विजामिष भोगी।'* तू जो हमें खिलाना चाहता था वह तू ही जाकर खा। *'मूढ़'*—अपना नाश अपने हाथ किया यही मूढ़ता है। *'सहित परिवार'* निशाचर होनेका शाप दिया क्योंकि ब्राह्मणोंको परिवारसहित विप्रमांस खिलाना चाहा था, अब परिवारसहित जाकर जो हमें खिलाना चाहता था वह खाये (शापमें भी विचार न किया कि परिवारसहित राक्षस होंगे तो विप्रोंके ही वंशका तो नाश करेंगे)।

वि० त्रि०—*'मूढ़'* क्योंकि इसमें तेरा कोई लाभ नहीं और हमारा धर्म चला जाता। *'सहित परिवार'* क्योंकि परिवारसहित तू पादप्रक्षालनादि ब्राह्मण-भोजनके कृत्यमें लगा था, तूने ही परिवारसहित रसोई इसीलिये बनायी और आप ही परोसने चला, हमलोगोंके सर्वनाशके लिये जान-बूझकर तूने सब किया; अतः सहित परिवार निशाचर हो जा।

छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई॥ १॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥ २॥
संबत मध्य नास तव होऊ। जल दाता न रहिहि कुल कोऊ॥ ३॥

शब्दार्थ—**छत्रबंधु**=क्षत्रियोंमें महा अधम, क्षत्रियाधम। **'बंधु'** शब्द क्षत्रिय और विप्र वा ब्राह्मणके साथ लगनेपर 'अधम' का वाचक होता है।

अर्थ—रे क्षत्रियाधम! तूने ब्राह्मणोंको समुदाय (कुल, परिवार, समाज) सहित (उनका धर्म) नष्ट करनेके लिये बुलाया॥ १॥ ईश्वरने हमारे धर्मकी रक्षा की और तू परिवारसहित नाशको प्राप्त होगा॥ २॥ एक वर्षके भीतर तेरा नाश होगा। तेरे कुलमें कोई पानी देनेवाला न रह जायगा॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'घालै लिए'* अर्थात् धर्मका नाश करनेके लिये जैसा *'ईस्वर राखा धरम हमारा'* से स्पष्ट है। ब्राह्मणके धर्मका नाश करनेवाला क्षत्रिय 'क्षत्रियाधम' है, तू हमको बुलाकर विश्वाससे धर्म नष्ट करना चाहता था अतः 'छत्रबंधु' है। (ख) *'ईस्वर राखा'''''* इति। अर्थात् तूने तो अपनी

ओरसे नाश करनेमें कुछ उठा न रखा था, नाश ही कर चुका था किन्तु ईश्वर धर्मके रक्षक हैं, गौ और ब्राह्मणके हितकर्ता हैं, इसीसे उन्होंने हमारे धर्मकी रक्षा की। पुनः भाव कि तूने हमारे धर्मका नाश करनेके लिये हमें बुलाया, हम तेरे विश्वासमें आये, हम कुछ जानते न थे, इसीसे भगवान्ने हमारी रक्षा की। (ग) *'जैहसि तैं समेत परिवारा'*—भाव कि ईश्वर अधर्मियोंका नाश करते हैं, तू अधर्मी है, जान-बूझकर हमारा धर्म नष्ट करनेको उद्यत हुआ, इसीसे तेरा नाश होगा, समाज तथा परिवारसहित हमें नष्ट करना चाहा (जिसमें कोई प्रायश्चित्त करनेवाला न रह जाय। वि० त्रि०), अतः परिवारसहित तेरा नाश होगा।

टिप्पणी—२ (क) *'संबत मध्य नास तव होऊ'* इति। राजाने संवत्भरका संकल्प किया था, ऐसी ही कपटी मुनिकी आज्ञा थी। यथा—*'जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप करेहू॥'* (१६८। ८) इसीसे (भगवान्की प्रेरणासे) संवत्भरमें नाश होनेका शाप दिया गया। जो पिछले चरणमें कहा था कि *'जैहसि तैं समेत परिवारा,* उसी *'जैहसि'* को इन चरणोंमें स्पष्ट करते हैं। 'परिवारसमेत नाश जिसमें कोई जल भी देनेवाला न रहेगा' यही परिवारसमेत जाना है। [(ख) *'जल दाता न रहिहि'*—अर्थात् तुम्हारी सद्‌गतिका उपाय करनेवाला भी कोई न रह जायगा। अञ्जलिमें जल लेकर पितरोंके नामसे जल गिराना जल वा पानी देना कहलाता है। मरनेपर मृतकके नामसे जल दिया जाता है। इसीको तर्पण भी कहते हैं। इससे सद्‌गति होती है। 'जलदाता कोई न रहे' इससे नाती-पनाती आदि तथा पोते-परपोते आदि भी जो जल दे सकते हैं उनका भी नाश कह दिया। (ग) पूर्व जो कहा था *'बोले बिप्र सकोप',* उस कोपका स्वरूप दिखाते हैं कि क्रोधके कारण तीन बार 'परिवार समेत' नाश होनेका शाप दिया। यथा—*'जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार'* (१) *'जैहसि तैं समेत परिवारा'* (२) *'संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥'* (३)

नृप सुनि श्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥ ४॥
बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥ ५॥
चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। भूप गएउ जहँ भोजन खानी॥ ६॥

अर्थ—राजा शाप सुनकर अत्यन्त त्राससे अत्यन्त व्याकुल हुआ। (तब) फिर श्रेष्ठ आकाशवाणी हुई॥ ४॥ ब्राह्मणो! तुमने भी सोच-विचारकर शाप न दिया। राजाने कुछ भी अपराध नहीं किया॥ ५॥ आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण भौचक्के-से रह गये। राजा (रसोईमें) गया जहाँ भोजन-(के पदार्थों-) की खानि थी॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'सुनि श्राप बिकल अति·····'* इति। विप्रशाप अत्यन्त घोर होता है, यथा—*'प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा।'* (१६६। ८) (वह अन्यथा नहीं हो सकता) *'किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्र श्राप अति घोर।'* (१७४) इसीसे *'अति त्रास'* हुआ और अति त्रास होनेसे अति व्याकुल हुआ। *'अति'* देहलीदीपक है। अथवा, आकाशवाणी सुनकर विकल हुआ था, यथा—*'भूप बिकल मति मोह भुलानी'* और विप्रशाप सुनकर *'अति बिकल'* हुआ। प्रथम आकाशवाणीसे अपराध साबित हुआ फिर उसका दण्ड मिला। राजा विप्रशापसे पहले ही डरता था, यथा—*'एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥'* और अब वह घोर शाप सुना अतः अब अति त्रास हुआ। [विप्र-शाप अति घोर है। भयङ्करता यह है कि एक तो परिवारसहित नाश हो, वह भी अल्पकालमें और फिर यह कि राक्षस-योनि मिले, उसपर भी पानी देनेवाला कोई न रह जाय अर्थात् सद्‌गति हो सकनेका भी उपाय न रहे। यह अति भयङ्करपन है। (प्र० सं०)]

(ख) *'बर गिरा अकासा'* इति।—[पूर्व आकाशवाणीसे राजा अधर्मी ठहराये गये, राजाको जन्मभर इसकी ग्लानि रहेगी, अतएव उसके संतोषके लिये और उसको लोकमें निरपराध प्रकट करनेके निमित्त देववाणी हुई, नहीं तो इस आकाशवाणीकी कोई आवश्यकता न थी] *'बर'* शब्दसे सिद्ध हुआ कि पहलेवाली आकाशवाणी

श्रेष्ठ न थी। वह कालकेतुकी थी, ब्रह्मवाणी न थी। वहाँ *'बर'* शब्द नहीं है। (*'बहोरि'* अर्थात् शापसे अत्यन्त व्याकुल होनेपर। अथवा, एक आकाशवाणी पूर्व हुई। दूसरी बार फिर हुई अतः *'बहोरि'* कहा)।*

टिप्पणी—२ *'बिप्रहु श्राप.....'* इति। (क) ब्राह्मणोंने कुछ विचार न किया यह वक्ता पहले ही कह आये—*'नहिं कछु कीन्ह बिचार।'* वही बात आकाशवाणी भी कह रही है। इससे जनाया कि बिना अपराधके राजाको शाप दिया। इससे भी सिद्ध है कि पहली आकाशवाणी कालकेतुकी है। यदि वह ईश्वरकी वाणी होती तो प्रथम ही यह बात कह देती कि राजाका इसमें दोष नहीं है। दो बार आकाशवाणी होनेका प्रयोजन ही न था। अपराध विचारकर शाप देना था [*'बिप्रहु'* का भाव कि राजाने तो अनजानमें अनुचित किया था, पर तुम विप्र हो तुम्हें ध्यानकर देख लेना था कि यह काम किसका था और किसने आकाशवाणीमें दुष्टतापूर्वक भेद जनाया और किस हेतुसे? (म० त० वि०)] (ख) *'अपराध कछु कीन्हा'*—भाव कि ऐसा शाप भारी अपराधमें देना चाहिये था और राजाने तो किञ्चित् भी अपराध नहीं किया। राजाकी शुद्धता प्रकट करनेके लिये *'बर गिरा'* हुई, नहीं तो राजाके हृदयमें बड़ा संताप रहता कि हमारा निर्दोषपन न ब्राह्मण ही जान पाये न परमेश्वर ही, हमें अपराधी बनाकर दण्ड दिया। इस वाणीसे अब संतोष हुआ।

टिप्पणी—३ *'चकित बिप्र सब.....'* इति। (क) *'चकित'*; क्योंकि एक ओर तो आकाशवाणी कहती है कि रसोईमें विप्र-मांस हुआ है और फिर यह भी कहती है कि राजाका कुछ दोष नहीं है, यह कैसी बात है? (ख) *'गएउ भूप जहँ.....'* इति। [विप्र भी चकित और राजा भी। यहाँ दिखाते हैं कि 'कपटी मुनि पद' में राजाकी बुद्धि कैसी तन्मय हो रही थी, दो बार आकाशवाणी हुई तब भी उसने ब्राह्मणोंसे यह कहानी न कही क्योंकि उसने मना कर दिया था, आकाशवाणी सुन चकित हो रसोईमें गया कि गुरुसे मैं जाकर यह सब कहूँ, वे मेरी रक्षा सुर-विप्र दोनोंसे करेंगे। राजा अति व्याकुल होनेके कारण अत्यन्त शोचमें डूब रहा था, यह आकाशवाणी सुनकर व्याकुलता कुछ दूर हुई, वह सावधान हुआ, अब उस शोच-सागरसे पार होनेको गुरुके पास गया, जब वे न मिले तब शोच *'अपार'* देख पड़ा। शापके पार जानेका सामर्थ्य न देखा तब सब कथा कही]।

तहँ न असन नहि बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥७॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनी अकुलाई॥८॥
दोहा—भूपति भावी मिटै नहि जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहि बिप्र श्राप अति घोर॥१७४॥

शब्दार्थ—**किए**=उपाय या यत्न करनेसे। यह अन्यथा=कुछका कुछ, व्यर्थ।

अर्थ—वहाँ न तो भोजनके पदार्थ ही थे और न ब्राह्मण रसोइया ही। राजा मनमें बेहद चिन्तित हो लौटा॥७॥ सब वृत्तान्त ब्राह्मणोंको सुनाया और बड़ा ही भयभीत और व्याकुल होकर (ब्राह्मणोंके आगे) पृथ्वीपर गिर पड़ा॥८॥ (ब्राह्मण बोले) राजन्! भावी नहीं मिट सकती, यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है। विप्रशाप अत्यन्त घोर (कठिन और भयङ्कर) होता है। किसी भी उपायसे वह व्यर्थ नहीं हो सकता॥१७४॥

टिप्पणी—१ (क) *'तहँ न असन.....'* इति। भोजनके पदार्थ न देख पड़े क्योंकि रसोई *'मायामय'* थी। व्यञ्जन तो अगणित बने थे, पर उनमेंसे एक भी न देख पड़ा। परदेके भीतर देखा तो रसोइया विप्र भी नहीं था। तब 'अपार सोच' हुआ। [मुख्य अपराधी अपने अपराधके प्रमाणसहित अन्तर्धान हो गया। अब राजा सोचता है कि जिसके ऊपर इतनी आस्था थी वह घोर वैरी निकला। और था वह कौन, जिसने इतनी बड़ी माया करके मेरा नाश किया? मैं अत्यन्त लोभसे मारा गया! अब मेरा और मेरे कुटुम्बका क्या होगा? इत्यादि सोचने लगा। (वि० त्रि०)] अपार शोचका भाव कि राजाको पूर्ण

* यदि पूर्व भी देववाणी मानें तो यहाँ 'बरवाणी' का भाव यह होगा कि पहलीसे विप्रवृन्दने राजाकी भूल समझी और शाप दिया और इससे उनका संदेह मिटेगा और वे शान्त होंगे।

भरोसा और विश्वास था कि मुनि भारी महात्मा हैं, हमारा अवश्य भला करेंगे, इसीसे शोचसे पार होनेके लिये मुनिके पास गया। उनको न देखा (जिसका भरोसा था कि पार कर देगा वह न मिला) अतः सोच अपार हुआ। (ख) *'फिरेउ'* अर्थात् प्रसङ्ग सुनानेके लिये। अभी सब विप्र खड़े हैं।

टिप्पणी—२ *'सब प्रसंग महिसुरन्ह'* इति। रसोईमें जब न पदार्थ देखे, न मुनिको तब राजा समझ गया कि वह मुनि न था, कोई शत्रु था, हमारे साथ बड़ा भारी छल किया, हमको धोखा हुआ; तब सब प्रसङ्ग ब्राह्मणोंको सुनाया। (सब प्रसङ्ग अर्थात् शिकारमें एक शूकरके पीछे घोर वनमें जाना, वहाँ एक तापसका मिलना, उसको महामुनि जान उसके छलमें आना, सोते ही महलमें पहुँच जानेसे उसमें विश्वास होना इत्यादि सब बातें। प्रसङ्गके अन्तमें विप्रवृन्दको आदरपूर्वक स्वयं ही बैठाना और परसना आरम्भ करनातक कहा)। प्रसङ्गके अन्तमें ब्राह्मणोंके शापकी बात आयी, उसे समझकर त्रस्त हो गया, उसे कहते-कहते भयसे अत्यन्त व्याकुल हो उनके आगे चरणोंपर गिर पड़ा।

टिप्पणी—३ *'भूपति भावी मिटै नहिं'*...... इति। (क) जब राजा ब्राह्मणोंके आगे सब प्रसङ्ग कह चुका, तब ब्राह्मणोंने समझाया। दूसरी नभवाणी और सारा प्रसङ्ग श्रवण करनेसे राजा निरपराध सिद्ध हुआ। अतएव वे राजाको समझाने लगे। (ख) भावी नहीं मिटती अर्थात् यह सब भावीने कराया, भावी तुमको वहाँ ले गयी, भावीवश तुमने यह काम किया। ☞ प्रसङ्गके आदि, मध्य और अन्त तीनोंमें भावीकी प्रमुखता (प्रधानता) कही गयी है। यथा—*'तुलसी जसि भवतब्यता.....।'* (१५९) आदिमें, *'भावी बस न जान कछु राऊ।'* (१७०। ८) मध्यमें और *'भावी बस न आव मुख बानी।'* (१७३। ८) अन्तमें। इसीसे ब्राह्मण भावीकी प्रबलता कहकर समझा रहे हैं कि *'भावी मिटै नहि।'* (ग) *'जदपि न दूषन तोर'* कहनेका भाव कि दोष न होनेसे (चाहिये था कि) हम शाप अन्यथा कर देते किन्तु हमारे करनेसे शाप व्यर्थ हो नहीं सकता। [☞ स्मरण रहे कि उस समय ब्राह्मणोंका यह प्रभाव था। वे असत्यवादी न थे। इसीसे तो जो वचन मुखसे निकल गया वह निकल गया, वह व्यर्थ न जाता था। आजकलकी गिरी दशा शोचनीय है।]

नोट—१ *'बिप्र श्राप अति घोर'* का भाव कि एक भी ब्राह्मणका शाप घोर होता है और यहाँ तो लाखों विप्रवरोंका शाप एक साथ हुआ, अतः अति घोर है।

नोट—२ भानुप्रताप निर्वासिक धर्मात्मा था। उसे यह विघ्न और घोर शाप? इसमें हरिइच्छा ही प्रधान है। जो कहो कि हरि तो धर्मके रक्षक हैं, उन्होंने कैसे विघ्न लगाया? तो उत्तर यह है कि हरिको त्यागकर राजाने कपटमें मन लगाया तब हरि रक्षक कहाँ रहे? पहले निष्काम कर्म करता था अब वह कामनावश हो गया। सौ कल्पतक राज्य तथा अमर होनेकी दुर्वासना उसमें उत्पन्न हुई, इससे वह बन्धनमें पड़ा। (वै०)

पुनः कुछ लोगोंका कथन है कि पूर्व कर्मोंका फल और साधु-वेषकी मर्यादा रखनेके लिये निशाचर होनेका शाप हुआ। उस योनिमें वह 'मण्डलीक मणि' होकर लगभग ७२ चौकड़ी राज्य भोग करेगा। नर-शरीरमें इतने दिन राज्यका नियम नहीं है।

ब्राह्मणोंद्वारा इन्हें निशाचर होनेका शाप हुआ; क्योंकि उनको विप्र-मांस भोजन करनेको दिया था, निशाचर विप्रमांस भक्षण करते हैं। उनका तात्पर्य यह था कि तू ऐसी योनिमें जा जहाँ यह तुझीको खानेको मिले। यहाँ यह शङ्का होती है कि इस शापसे तो ब्राह्मणोंहीकी हानि है? सच है। इसीसे तो गोस्वामीजीके विलक्षण शब्द *'सकोप'* इत्यादि यहाँ लेखनीसे निकले। क्रोधमें विचार कहाँ? दूसरे भावी है।

प० प० प्र०—मनु और प्रतापभानु। दोनों ही चक्रवर्ती सम्राट् थे, दोनों ही परम धर्मशील, राजनीतिनिपुण और प्रजावत्सल थे। पर मनुजीको वैराग्य और ज्ञान प्राप्त होनेपर भी समाधान नहीं हुआ, उनके हृदयमें भक्तिकी लालसा उत्पन्न हो गयी। प्रतापभानुमें न तो वैराग्य ही था न ज्ञान और न भक्तिकी इच्छा। धर्मका परिमाण 'विषय-विराग' है, वैराग्य प्राप्त होनेके पूर्व ही उसका घोर विनाश हुआ। अगणित निष्काम ईश्वरार्पित यज्ञादि कर्मोंका फल उसको रावण-देहमें मिला—*'सुनासीर सत सरित सो संतत करइ बिलास।'* शत अश्वमेध यज्ञोंका फल इन्द्रके ऐश्वर्यकी प्राप्ति है। रावणको शत इन्द्रका ऐश्वर्य मिला। *'जरा मरन रहित तनु'* की

वासना प्रतापभानुतनमें थी, अतः उस वासना-बलने रावणदेहमें घोर तप करवाया। मरणरहित होनेकी इच्छासे ही रावणने वर माँगा। इस तरह पूर्वकर्म और पूर्ववासनासे तथा विप्रशापसे उसको राक्षसदेह, अपार ऐश्वर्य और अपार सत्ता आदिकी प्राप्ति हुई। तपश्चर्याकी न्यूनता, मरणरहित होनेकी वासना और कल्पशत राज्यकी कामनाने पूरी कर दी। देखिये, एक बारकी कुसंगतिसे दुर्वासना पैदा हुई, जिसका परिणाम यह हुआ। अब विचार कीजिये कि हमलोग तो रात-दिन *'बिषय मनोरथ दुर्गम नाना'* करते ही रहते हैं, हरिभजन करनेकी कभी इच्छा ही नहीं होती, तब जन्म-मरण महादुःखसे कब और कैसे छुटकारा मिलेगा?

नोट—३ 'पूर्व तीन कल्पोंकी कथामें जय-विजय, हरगण प्रभृतिका शाप होनेपर, शापानुग्रहके लिये प्रार्थना करना और शापोद्धार होना पाया जाता है। पर भानुप्रताप शापानुग्रहके लिये प्रार्थी न हुआ और न ब्राह्मणोंने ही अपनी ओरसे अनुग्रह की। कारण यह कि परात्पर ब्रह्मके आविर्भावकी कथा है; ब्राह्मणोंको भी इसकी खबर नहीं है; वे इतना कहकर ही रह गये कि भावी अमिट है।' (श्रीजानकीशरणजी) वि० त्रि० का मत है कि 'यहाँ भी शापानुग्रहकी बात समझ लेना चाहिये, यथा—*'बैभव बिपुल तेज बल होऊ' 'समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहौ मुकुत न पुनि संसारा॥'* पर आगेके *'अस कहि सब महिदेव सिधाए।'* से यह असंगत जान पड़ता है।

भानुप्रताप रावणहीका चरित्र मुख्यतः इस ग्रन्थमें है। इन्हींके लिये श्रीसाकेतविहारी श्रीरामका अवतार है। (वै०) पूर्व दोहा (१५३। ५-६) में लिखा जा चुका है कि यह और इसका भाई श्रीरामजीके अत्यन्त प्रिय प्रतापी और बलिवर्य नामक सखा थे। प्रभुने इनके साथ रणक्रीड़ा करनेकी इच्छासे इनको प्रकृतिमण्डलमें भेजा था। यह ब्राह्मणोंको क्या मालूम? *'सो जानइ जेहि देहु जनाई'* तब भला बिना उनके जनाये वे कब जान सकनेको समर्थ हो सकते हैं? अतः *'भावी मिटै नहिं'* यही कहकर रह गये। *'हरि इच्छा भावी बलवाना।'* (१। ५६। ६—८) देखिये।

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए॥ १॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत* हंस काग किय जेहीं॥ २॥
उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई॥ ३॥

अर्थ—ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये। पुरवासियोंने समाचार पाया॥ १॥ (तो) वे शोच करने और विधाताको दोष लगाने लगे, जिसने हंस बनाते हुए कौवा बना दिया॥ २॥ पुरोहितको घर पहुँचाकर राक्षस-(कालकेतु-) ने तापसको खबर दी॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'महिदेव सिधाए'*—(यहाँ *'महिदेव'* शब्दसे ब्राह्मणोंका महत्त्व सूचित किया कि ये पृथ्वीपरके देवता हैं, देवताओंकी भाँति आवाहनसे आये थे और अपवित्रता देखकर चले जा रहे हैं। वि० त्रि०) आकाशवाणीकी आज्ञा थी कि *'उठि उठि गृह जाहू'*, अतः सब ब्राह्मण घर गये (उठकर तो पहले ही खड़े हो गये थे, शाप देने लगे फिर ब्रह्मवाणीसे चकित होकर प्रसङ्ग सुनने लगे थे; अब चल दिये)। (ख) *'समाचार पुरलोगन्ह पाए'*—ब्राह्मणोंके चल देनेपर उनको समाचार मिला, इससे पाया गया कि राजाने सब प्रसङ्ग जो ब्राह्मणोंसे कहा था वह (वे रास्ता चलते हुए परस्पर कहते-सुनते जाते थे एवं जो पूछता था उससे भी जहाँ-तहाँ कहते गये; इस प्रकार) सब समाचार पुरवासियोंको मिला। ये ब्राह्मण भी पुरके ही थे। (ग) *'सोचहिं'* अर्थात् राजाके लिये शोच करते हैं (कि ऐसा धर्मात्मा राजा न मिलेगा) और दैवको दोष देते हैं, ब्राह्मणोंको दोष क्यों नहीं देते कि जिन्होंने बिना बिचारे शाप दे दिया? कारण कि ब्राह्मणको दोष लगाने, उनकी निन्दा करनेका फल भारी दण्ड है, यह वे जानते हैं, यथा—*'द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमै बायस सरीर धरि॥'* (७। १२१) (घ) *'बिरचत हंस काग किय'*—अर्थात् भानुप्रतापने ऐसे-ऐसे सत्कर्म किये थे कि देवता होता सो न होकर राक्षस हुआ। [हंसको

* विचरत—१७०४।

क्षीर-नीर-विवरणका विवेक होता है; यथा—*'छीर नीर बिबरन गति हंसी।'* (२। ३१४। ४) इसी तरह राजा अधर्मको त्यागकर धर्ममें रत था, निष्काम धर्म किया करता था, परम विवेकी था, यथा—*'भूप बिबेकी परम सुजाना।'* (१५६। १) यह प्रारम्भमें ही कहा है। उसी सम्बन्धसे कहा कि वह 'हंस' बनाया जा रहा था सो काग बना दिया गया। कौआ काला, कठोरभाषी, मलिनभक्षी, छली इत्यादि वैसे ही राक्षस। राक्षस होनेका शाप दिया यही कौवा बनाना है। इसी तरह राज्य सुनाकर श्रीरामको वनवास देनेपर विधाताको दोष लगाया गया है, यथा—*'एक बिधातहि दूषन देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेही॥'* (२। ४९। १) *'लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥'* (५५। २) पुनः भाव कि *'बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।'* उसीका दोष है जो चाहे कर डालता है। यहाँ 'ललित अलङ्कार' है।]

वि० त्रि—राजासे इस जन्ममें कोई अनर्थ भी नहीं हुआ जिसका फल यह शाप कहा जा सके, अतः दैवको दोष देते हैं कि उन्होंने नियम भंग किया। जन्मसे ही काग या हंस बनानेका विधान है। *'द्विजद्रोही बहु नरक भोग करि। जग जन्मै बायस सरीर धरि॥'* यहाँ तो राजा जन्मसे ही हंस था और हंसकी भाँति आचरण करता था, परम धर्मात्मा था, इसे ब्राह्मणद्रोह कहाँसे उत्पन्न हो गया जो यह ब्राह्मणोंको वश करने चला?

टिप्पणी—२ *'उपरोहितहि भवन·····'* इति। इससे पाया जाता है कि कालकेतुको ब्राह्मणोंका भय था कि राजाकी तरह हमको भी अपना द्रोही समझकर शाप न दे दें, इसीसे उसने प्रथम तुरत पुरोहितको उसके घर पहुँचा दिया जिसमें पुरोहितको जब वे घरमें पायेंगे तो शाप न देंगे। [अथवा, अब अपना काम हो गया, अतः पहुँचा दिया। (रा० प्र०) यह डर था कि पुरोहितकी खोजमें कहीं राजाके आदमी कपटी मुनिके आश्रमतक न पहुँच जायँ। (वि० त्रि०)] राजाने सब प्रसङ्ग कहते हुए पुरोहितके हरण करनेकी बात भी कही तब ब्राह्मण कुपित न हुए, क्योंकि तापसने यह भी तो कहा था कि मैं उसे अपने समान बनाकर अपने आसनमें रखूँगा, पुरोहितको उसने क्लेश नहीं दिया तब ब्राह्मण क्यों कुपित होते? उसपर भी उसको शीघ्र ही घरमें देखा (इससे तापसको शाप कैसे देते? एक बार तो अनर्थ कर ही चुके थे फिर कहीं दूसरा अनर्थ न हो जाय। आकाशवाणीने तो अपराधीका नाम बताया नहीं। (ख) *'असुर तापसहिं·····'* अर्थात् स्वयं जाकर सब समाचार कहा। क्योंकि यही करार था कि *'कुल समेत रिपुमूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मैं आई॥'*

तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए॥ ४॥
घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई॥ ५॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी॥ ६॥

अर्थ—उस दुष्टने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे। सब राजा सेना सजा-सजाकर चढ़ आये॥ ४॥ डंका बजाकर उन्होंने नगरको घेर लिया। नित्य ही बहुत प्रकारसे लड़ाई होने लगी॥ ५॥ सब योद्धा शूरवीरोंकी करनी करके लड़ मरे। राजा भाईसमेत (संग्राम) भूमिमें गिरा॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'तेहि खल'* अर्थात् जिसने पुरोहितको उसके घर पहुँचाया और तपस्वीको खबर दी उसी खलने। कालकेतुको पूर्व खल कह आये हैं, यथा—*'तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा।'* (१७०। ७) यहाँ भी *'खल'* उसीको कहा। (निकटवर्ती तापस-शब्दके सम्बन्धसे *'तेहि'* तापसके लिये भी हो सकता है। तापसने यह काम खलताका किया अतः उसे *'खल'* कहा। उसने पत्र लिख-लिख कालकेतुद्वारा सर्वत्र पहुँचाये। *'देखि न सकहिं पराइ बिभूती।' 'पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥'* इत्यादि *'खल'* के लक्षण हैं)। (ख) *'जहँ तहँ'* अर्थात् जिन-जिनको भानुप्रतापने जीता और राज्य छीन लिया। (जो आकर भानुप्रतापसे नहीं मिले थे उनके पास)। यथा—*'जीते सकल भूप बरिआईं।'* (१५४। ६) (जिनको दण्ड लेकर छोड़ दिया था, पर जिनको हारकी ग्लानि थी वे भी इसमें आ सकते हैं। जिनको वह

जानता होगा कि भानुप्रतापसे भीतर-भीतर जलते हैं उन्हींको पत्र भेजे)। (ग) *'पत्र पठाए'* क्योंकि मुखाग्र कहनेसे विश्वास न होता। (घ) *'भूप सब धाए'* इस कथनसे सूचित हुआ कि सब राजा बड़े प्रसन्न हुए, वे ऐसा चाहते ही थे (कि भानुप्रतापको किसी तरह जीतें)। [*'सजि सजि सेन'* क्योंकि भानुप्रताप बड़ा बली था इससे पूरी सेना लेकर आये। जीत तो सकते न थे, पर शापका बल पाकर जीतनेका विश्वास है। इसीसे प्रसन्न हुए।]

टिप्पणी—२ *'घेरेन्हि नगर'*····' इति। (क) नगरको घेरनेसे पाया गया कि किलेसे लड़ाई होने लगी। [घेरनेसे यह भी होता है कि भीतर अन्न नहीं पहुँच सकेगा। वर्षभरमें तो नाश होना है ही, तबतक घेरे रहेंगे, इस तरह सुगमतासे अपनी जय हो जायगी]। (ख) *'निसान बजाई'*। जैसे भानुप्रतापने निशान बजाकर चढ़ाई की और सबको जीता था, वैसे ही इन सब राजाओंने डंका बजाकर जीतनेके लिये भानुप्रतापपर चढ़ाई की। (ग) *'बिबिध भाँति'*—अर्थात् किलेसे, किलेके बाहरसे, तोपसे, तुपकसे, तलवार, बर्छी, धनुष-बाण, गदा, कृपाण इत्यादि भाँतिसे। अथवा, चक्रव्यूह इत्यादि अनेक व्यूहरचनाद्वारा और भी जो भाँति हैं वे भी इसमें आ गयीं। (घ) *'नित होइ'* से जनाया कि बहुत दिन लड़ाई हुई (सम्भवतः लगभग संवत्भर, क्योंकि संवत्मध्य नाशका शाप था), क्योंकि किला भारी था जल्दी न टूट सका (और भानुप्रतापकी सेना भी साधारण न थी)।

टिप्पणी—३ (क) *'जूझे सकल सुभट करि करनी'* इति। सुभटोंमें पुरुषार्थ था; इसीसे उनका करनी करके जूझना लिखा। राजामें शापके कारण पुरुषार्थ न रह गया, इसीसे उसका पुरुषार्थ करके जूझना नहीं लिखते। यदि प्रथमवाला पुरुषार्थ रहता तो सब राजा न जीत पाते। उसके प्रथम पुरुषार्थसे तो वे सब हार चुके थे। यथा—*'सप्त दीप भुज बल बस कीन्हें।'*·····' [*'करि करनी'* अर्थात् रणभूमिमें अपनी वीरता दिखाकर सम्मुख संग्राम करते हुए। *'करि करनी'* को देहली-दीपकन्यायसे दोनों ओर लगा सकते हैं। तब भाव यह होगा कि दोनों भाई रणमें अपनी वीरतासे लड़े, पीठ न दिखायी, पर शापवश उनका पुरुषार्थ कारगर न होता था, उनका नाश होना ही था। (प्र० सं०) *'बंधु समेत'* अर्थात् अरिमर्दन भी साथ ही गिरा जो *'भुजबल अतुल अचल संग्रामा'* था, वह भी मारा गया]। (ख) सुभटोंका मरना कहकर तब दोनों भाइयोंको कहा। इससे जनाया कि जब सेना रह न गयी तब दोनों भाई स्वयं लड़े।

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा॥७॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई॥८॥
दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम॥१७५॥

शब्दार्थ—**बाँचा**=बचाया, यथा—*'बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यहु मरनहार भा साँचा॥'* (२७५। ४) =बचा। **असाँचा**=असत्य। **बाम**=बाम बायाँ, उलटा, प्रतिकूल। **मेरु**=पर्वत। =सुमेरु। **दाम**=रस्सी, माला। **जनक**=पिता।

अर्थ—सत्यकेतुके कुलमें (राजालोगोंने) किसीको न बचा रखा (वा, कोई न बचा)। ब्राह्मणोंका शाप कैसे असत्य हो सकता?॥७॥ सब राजा शत्रुको जीतकर नगरको बसाकर जय और यश पाकर अपने-अपने नगरको गये॥८॥ (श्रीयाज्ञवल्क्यजी कहते हैं) भरद्वाज! सुनो। जिसको जब विधाता वाम होते हैं तब उसको धूलि मेरुके समान, पिता यमराजके समान और रस्सी वा माला सर्पके समान हो जाती है॥१७५॥

टिप्पणी—१ (क) *'सत्यकेतु कुल कोउ'*····' इति। सुभटोंका और भाईसहित राजाका जूझना कहा, कुलका नाश न कहा था और शाप है कुलके नाशका भी। अतः कहा कि *'सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा।'* अर्थात् राजालोगोंने अपने शत्रुके कुलमें किसीको न बचा रखा, सबका वध किया। क्योंकि यह राजनीति है कि शत्रु-कुलको न रहने दे। यथा—*'रिपु रिन रंच न राखब काऊ।'* (ख) कुलका कोई व्यक्ति किसी प्रकारसे

न बचा, इसका कारण बताते हैं कि *'बिप्र श्राप किमि·····।'* अर्थात् ब्राह्मणोंके शापसे ऐसा हुआ। उनका शाप है कि *'जलदाता न रहिहि कुल कोऊ',* अतः *'कोउ नहिं बाँचा।'* शाप असत्य नहीं हो सकता। [जय-विजयको जब शाप हुआ तब भी ऐसा ही कहा है। यथा—*'बिप्र श्राप तें दूनौं भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥'·····'मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥'* (१२३। १) ब्राह्मण अपने दिये हुए शापको स्वयं व्यर्थ नहीं कर सकते, क्योंकि यदि ऐसा होने लगे तो उनका आशीर्वाद भी कुछ न माना जाय। यह बात देवर्षि नारदके *'मृषा होउ मम श्राप कृपाला।'* से सिद्ध है। (१३८। ३) देखिये। (ग) विप्रद्रोह कुलका नाशक है, यथा—*'जिमि द्विज द्रोह किए कुल नासा।'* (४। १७। ८) अतः *'किमि होइ असाँचा'* कहा; कुलका नाश हुआ ही चाहे। पहले साधारण बात कहकर फिर विशेष सिद्धान्तसे उसका समर्थन किया गया। अतः यहाँ 'अर्थान्तर-न्यास अलङ्कार' है। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—२ (क) *'रिपु जिति सब नृप'*—इससे जनाया कि भानुप्रताप (उन) सब राजाओंका शत्रु था, अतः सबका *'रिपु'* को जीतना कहा। (ख) *'नगर बसाई'* इति। भाव कि संग्राम होनेसे पुरवासी भयके मारे जहाँ-तहाँ भागने लगे कि राजालोग हमारा भी वध न कर डालें, हमें न लूट लें, इसीसे सबको निर्भय करके बसाया। अथवा, राजाके नगरमें ब्राह्मण बहुत हैं; इससे राजाओंने नगरमें कुछ भी उपद्रव न किया कि वे हमें भी शाप न दे दें। सबका समाधान करके सबको बसाया कि पुरवासी भय न करें, उनसे कोई न बोलेगा। ऐसा कहनेका कारण है क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि शत्रुको मारकर उसका नगर लूट लिया जाता है। [लड़ाईमें नगर उजड़ जाता है, अतः उसका बसाना कहा। पंजाबीजी अर्थ करते हैं कि 'शत्रुको जीतकर सबने तापस नृपको नगरमें बसाया। काश्मीरका राज्य उसको दिया।' और बैजनाथजी अर्थ करते हैं कि 'राजाओंने अपने-अपने नगर स्वतन्त्रतापूर्वक बसाये।' अथवा, भानुप्रतापके नगरमें अपना-अपना थाना बसाया।' सबने आपसमें समझौता करके अपने-अपने हिस्सेकी जगह लेकर उस नगरको बसाया। जैसे पिछली जर्मन लड़ाईमें जो संवत् १९९८ वि० के लगभग प्रारम्भ होकर कई वर्षतक चली, उसमें जर्मनी और जापानकी हार होनेपर अमरीका, रूस और इंग्लैंडने उन मुल्कोंमें अपने-अपने भाग कायम किये।] (ग) *'निज पुर गवने'* इति। नगर बसाकर अपने पुरको गये, इससे सूचित हुआ कि कुछ दिन वहाँ टिककर नगरका बंदोबस्त करके तब गये। पुनः, *'निज पुर गवने'* का भाव कि राजा लोग निश्चय करके आये थे कि भानुप्रतापपर विजय न प्राप्त हुई तो अब नगरमें लौटकर न आयेंगे, क्योंकि वह भारी शत्रु है फिर वह नगरमें न रहने देगा। इसीसे कहते हैं कि जब जय और यश प्राप्त हुआ तब अपने पुरको गये। (घ)*'जय जसु पाई'* इति। भाव कि भानुप्रतापने सब राजाओंका 'जय-यश' हर लिया था। उससे न तो किसी राजाको जय ही मिली थी और न क्षत्रियपनेका यश ही किसीका रह गया था। अब जय और यश दोनों मिल गये (जो पूर्व छिन गये थे)। पुनः 'जय-यश' कहनेका भाव कि शत्रुको संग्राममें मारा; छल करके नहीं मारा। किंतु धर्मयुद्धसे विजय प्राप्त की। प्रथम जय मिली, जय होनेसे यश मिला। अतः उसी क्रमसे कहा।

टिप्पणी ३—*'भरद्वाज सुनु·····'* इति। (क)—यह प्रसङ्ग सुनकर कदाचित् भरद्वाज मुनिको संदेह हो कि ऐसे धर्मात्मा राजाके साथ ऐसा छल और उसका इस प्रकार मरण न होने चाहिये थे, अतः स्वयं ही उस संदेहका निराकरण करते हैं कि *'जाहि जब·····।'* (ख) *'जाहि',* जिसको कहनेका भाव कि कर्मफल सबके ऊपर है। जब=जिस कालमें। भाव कि कर्मका फल समय पाकर उदय होता है। (ग) *'होइ बिधाता बाम'*—भाव कि विधाता ही कर्मफलदाता है, यथा—*'कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥'* (२। २८२। ४) शुभ-कर्म-फल देनेको विधाता दाहिने होता है और अशुभ कर्मका फल देनेको वाम होता है। (घ) धूलि-समान कालकेतु सुमेरु-समान हो गया, जनक-समान कपटी मुनि यम और दामसम विप्र व्याल समान हो गये।

नोट—१ *'धूरि मेरु सम जनक·····ब्याल सम दाम'* इति। ये तीनों बातें राजापर बीतीं। कालकेतुके सौ पुत्र और दस भाई थे। वे सब मारे गये। वह अकेले जान बचाकर भागा। अतः वह रज-सम था,

वही पर्वत हो गया, राजाको उसने कुचल डाला। राजाने कपटी मुनिको पिता माना, यथा—*'जानि पिता प्रभु करौं ढिठाई॥ मोहि मुनीस सुत सेवक जानी।'* (१६०। ३-४) और उसने भी पुत्र माना, यथा—*'सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं।'* (१६१। १) वही उसके लिये कालरूप हो गया। ब्राह्मण राजाको रत्नमालासम थे। जैसे रत्नमालाका सार-सँभार रखा जाता है वैसे ही यह ब्राह्मणोंका आदर करता था। सो उन्होंने सर्प होकर इसे डस लिया। (मुं० रोशनलाल) बैजनाथजीने भी ऐसा ही लिखा है। वे लिखते हैं कि विप्रवृन्द मुक्तादामसम शोभा-सुखदायक थे। राजद्वारपर उनके दर्शनसे शोभा और सुख प्राप्त होता था, वे आशीर्वाद दिया करते थे; उन्होंने नाशका शाप दिया। और श्रीसंतसिंह पंजाबीजीका मत है कि 'जिन राजाओंको इसने धूलवत् कर दिया वे ही मेरुवत् हो गये। विप्र पितासम कृपा करते थे, वे ही यमतुल्य नाशक हुए और कालकेतु दाम (रस्सी) सम 'सूत्र मन' रहता था सो सर्प हो गया।

वि० त्रि० भी श्रीपंजाबीके मतमें हैं कि 'कपटी मुनि धूल-समान था (यथा—*'नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत'*), पितृस्थानीय विप्रवृन्द थे। कालकेतुमें कुछ रह नहीं गया था, उसकी आकृतिमात्र राक्षसकी थी, सूकर आदि बना-बना वनमें फिरता था, वह रज्जु था सो सर्प हो गया।

नोट—२ *'सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू'* उपक्रम और *'सत्यकेतु कुल कोउ''''* उपसंहार है। *'भरद्वाज सुनु अपर पुनि''''* दोहा १५२ उपक्रम है और *'भरद्वाज सुनु जाहि''''* उपसंहार।

रा० प्र०—भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद यहीं (अगली चौपाई) तक स्पष्ट देख पड़ता है, आगे ग्रन्थमें कहीं नाम नहीं है। कारण यह है कि भरद्वाजका संदेह रामतत्त्वके विषयमें था, चरितमें नहीं; क्योंकि चरितको तो वे स्वयं प्रकट कहते हैं, यथा—*'तिन्हकर चरित बिदित संसारा।'* अतएव जबतक रामतत्त्व जाननेका प्रयोजन रहा तबतक गोस्वामीजीने *'मुनि भरद्वाज'* इत्यादि सम्बोधन किया। और जो कहें कि *'चाहौं सुनइ राम गुन गूढ़ा'* इस वाक्यमें विरोध पाया जाता है तो उसका उत्तर यह है कि ये वचन भरद्वाज मुनिके नहीं हैं।

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भएउ निसाचर सहित समाजा॥ १॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥ २॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भएउ सो कुंभकरन बलधामा॥ ३॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भएउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥ ४॥
नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिज्ञान निधाना॥ ५॥

शब्दार्थ—**भुजदंड**=भुज (बाहु; बाँह)+दण्ड (दण्डा)। डण्डेके आकारका होनेसे बाहुको भुजदण्ड कहते हैं। प्राय: बलवान् पुरुषोंके भुजाओंको 'भुजदण्ड' कहा जाता है। स्त्रियोंकी भुजाएँ कोमल होती हैं इससे उन्हें भुजबल्ली कहा जाता है। **बरिबंड**=(बालवंद्य)प्रचण्ड, बली, बलवानोंसे वन्दित। यह शब्द केवल पद्यमें प्रयुक्त होता है। **बिमातृ** (सं०)=अपने माताके अतिरिक्त पिताकी दूसरी विवाहिता स्त्री=सौतेली माँ। **बिमात्र**=विमातृज=सौतेला।

अर्थ—हे मुनि! सुनो। समय पाकर वही राजा समाजसहित निशाचर हुआ॥ १॥ उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं। रावण नाम था। वह बड़ा बलवान् तेजस्वी प्रचण्ड वीर था॥ २॥ राजाका छोटा भाई (जिसका) अरिमर्दन नाम था वह बलका धाम कुम्भकर्ण हुआ॥ ३॥ जो (धर्मरुचि) मन्त्री था जिसकी धर्ममें रुचि थी, वह उसका सौतेला छोटा भाई हुआ॥ ४॥ उसका नाम विभीषण था, जिसे संसार जानता है। वह विष्णुभगवान्‌का भक्त और विज्ञानका खजाना, भण्डार वा समुद्र था॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'काल पाइ''''।'* इति। जहाँसे राजाके शापका प्रसङ्ग छोड़ा था, वहींसे पुन: कहते हैं। *'काल पाइ''''राजा भएउ निसाचर सहित समाजा।'* का सम्बन्ध *'जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार।'* (१७३) से मिलाते हैं। (ख) *'काल पाइ'* कहा क्योंकि समय पाकर शरीरकी प्राप्ति होती है। [जीव शरीर छोड़नेके पश्चात् तुरत जन्म ले, यह आवश्यक नहीं है। जब उसके कर्मोंके भोग योग्य समय

(ग्रहस्थिति) और वातावरण होता है तब पुनः जन्म पाता है।] यथा—*'मन महँ तथा लीन नाना तन प्रगटत अवसर पाए।'* (वि० १२४) [हरि-इच्छासे शापमें समयका नियम नहीं हुआ। यदि उसमें नाश होनेपर तुरंत निशाचरयोनि पानेका शाप होता तो मरण होते ही उनका जन्म होता। जैसे लोमशका शाप भुशुण्डीजीको हुआ कि *'सपदि होहु पच्छी चंडाला'* अतः वे तुरंत काक हुए, यथा—*'तुरत भयउँ मैं काग तब'''।'* (७। ११२) अभी प्रभुके अवतारका समय नहीं है, इसीसे वैसा शाप न होने पाया।] जब श्रीरामजीकी इच्छा लीला करनेकी होती है तब प्रथम रावणका अवतार होता है। अतः जिस कल्पमें श्रीरामावतार होनेको था जब वह कल्प आया तब भानुप्रताप रावण हुआ। *'सुनु'* का भाव कि राजा जैसे रावण हुआ वह हम आगे कहते हैं, सुनो। (ग) *'सहित समाज'* निशाचर हुआ क्योंकि शाप था कि *'निसाचर होहु'''सहित परिवार'* सहित परिवार ही सहित समाज है। जहाँ श्रीरामजीका परिवारसहित पूजन होता है वहाँ श्रीहनुमान्‌जी, सुग्रीवजी आदिके सहित पूजन होता है, इससे भी समाजकी गणना परिवारमें है।

टिप्पणी—२ (क) *'दस सिर ताहि बीस भुजदंडा'* इति। सब कल्पोंके रावण दस सिर और बीस भुजावाले होते हैं। ऐसा ही सृष्टिका नियम है। भुजकी प्रबलता दिखानेके लिये *'भुजदंड'* शब्द दिया। भारी और बलवान् भुजाको भुजदण्ड कहते हैं। यथा—*'करि कर सरिस सुभग भुजदंडा।'* (१४७। ८) *'दुहु भुजदंड तमकि महि मारी।'* (६। ३१) *'दस सिर बीस भुजदंड'* से सूचित हुआ कि रूप भयदायक है। (ख) *'रावन'* नाम है अर्थात् यह सबको रुलानेवाला है। *'रावयतीति रावणः।'* (विशेष आगे प० प० प्र० की टिप्पणीमें देखिये)। *'बीर बरिबंडा'* वीरोंमें प्रबल है। यथा—*'रन मद मत्त फिरइ जग धावा।' 'प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥'* (१८२। ९) वीरकी शोभा बलसे है; इसीसे वीरको बलवान् कहते हैं। यथा—*'भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।'* (१२२) *'नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥'* (६। ७९) *'जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड। खर दूषन तिसिरा बध्यो मनुज कि अस बरिबंड॥'* (३। २५)—ये सब काम बलके वर्णन किये गये हैं, इससे स्पष्ट हुआ कि *'बरिबंड'* का अर्थ 'बलवान्' है। 'रावन नाम' से सूचित किया कि नाम भयदायक है, यथा—*'भई सभय जब नाम सुनावा।'* (३। २८) और *'बीर बरिबंडा'* से जनाया कि पुरुषार्थ भयदायक है, यथा—*'चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी॥'* (१८२। ५) आगे अब क्रमसे सबकी उत्पत्ति कहते हैं। (ग) *'भूप अनुज'*—भाव कि जैसे वह पूर्व भानुप्रतापका छोटा भाई था वैसे ही भानुप्रतापके रावण होनेपर वह रावणका छोटा भाई हुआ। *'अरिमर्दन नामा'*—प्रथम तनमें वह शत्रुका मर्दन करनेवाला था, वैसे ही निशाचर होनेपर बलका धाम था, कोई शत्रु ऐसा न था जो उसके सम्मुख खड़ा रह सके, यथा—*'अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥'* (१८०। ३) जैसे अरिमर्दन भानुप्रतापसे अधिक बलवान् था वैसे ही कुम्भकर्ण रावणसे अधिक बलवान् था। अरिमर्दनके सम्बन्धमें कहा था कि *'भुज बल अतुल अचल संग्रामा'* वैसे ही यहाँ बलधामका अर्थ है कि बलवान् और संग्राममें अचल है, क्योंकि जो बलधाम होगा वह संग्राममें अचल अवश्य होगा। रावण वीर और बरिबण्ड (बलवान्) है वैसे ही कुम्भकर्ण अरिमर्दन अर्थात् वीर है और बलधाम है। रावणका रूप भयदायक है वैसे ही कुम्भकर्णका रूप भयदायक है। कुम्भ-समान जब उसके कर्ण हैं तब रूप बड़ा भारी होगा ही।

टिप्पणी ३—*'सचिव जो रहा धरमरुचि जासू।'''''* इति। (क) धर्मरुचि नाम लिखनेका भाव कि मन्त्री तो बहुत थे, पर जो इस नामका था, जिसकी धर्ममें रुचि थी वह रावणका छोटा भाई हुआ। जैसे पूर्वजन्ममें धर्ममें रुचि थी, यथा—*'सचिव धरमरुचि हरिपद प्रीती।'* (१५५। ३) वैसे ही इस जन्ममें भी उसकी जन्मसे ही धर्ममें रुचि हुई। [*'धरम रुचि जासू'* देहलीदीपक न्यायसे दोनों ओर लगता है। अर्थ होगा—उसका विमातृज छोटा भाई हुआ जिसकी धर्ममें रुचि थी]। (ख) *'भयउ बिमात्र बंधु लघु'* इति। मन्त्री भाई हुआ। इससे सूचित हुआ कि राजाका यह मन्त्री धर्मात्मा था, इससे वह उसे भाई करके मानता था; अथवा किसी नातेसे भाई होता था, सगा भाई न था। इसीसे इस जन्ममें वह भाई हुआ, पर सगा भाई न होकर सौतेली मातासे हुआ। *'बंधु लघु'*—भाव कि पूर्व-जन्ममें छोटा था इसीसे अब भी छोटा हुआ।

टिप्पणी—४ *'नाम बिभीषन जेहि जग जाना।'''''* इति। (क) जगत् जानता है; क्योंकि इनकी गणना परम भागवतोंमें है, यही बात अगले चरणमें कहते हैं कि विष्णुभक्त हैं और विज्ञाननिधान हैं; यह भी बात संसार जानता है पुन: संसार रामायण सुनने वा पढ़नेसे जानता है कि रावणको इन्होंने कैसा-कैसा उपदेश दिया है। (ख) जगत्में प्रथम नाम विख्यात होता है तब गुण। इसीसे प्रथम नाम कहा, पीछे गुण कहते हैं कि *'बिष्नुभगत''''* हैं। (ग) *'जग जाना'* कहकर *'बिष्नु भगत'''* कहनेका भाव कि संसारमें इनकी प्रसिद्धि भक्ति और विज्ञानके कारण हुई, राक्षसी कर्मोंमें नहीं। इससे पाया गया कि ब्रह्माके वरदानके पूर्वसे प्रथम जन्मसे ही, इनको भगवद्भक्ति प्राप्त थी, ब्रह्माका वर तो पीछे इस शरीरमें मिला। पूर्व जन्ममें धर्ममें रुचि थी, इसीसे पूर्वजन्म-संस्कारसे राक्षसदेहमें भी जन्म लेते ही हरिभक्ति प्राप्त हुई। धर्मसे हरिभक्ति मिलती है। यथा—*'जग जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।'* (३। ६) (घ) पुन: भाव कि ये ऐसे महाभागवत हैं कि संसार इनकी वन्दना करता है। यथा—**'प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मकाद्यान्। रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणाद्यानेतानहं परमभागवतान् नमामि॥'** (पाण्डवगीतामें यही श्लोक कुछ हेर-फेरसे है। दोहा (२६ । ४) भाग १ देखिये। ये भगवान्के पार्षद भी हैं)।

प० प० प्र०—१ यहाँ देहस्वभावका दुष्परिणाम न होनेका कारण हरिभक्ति ही है। इससे अनुमान होता है कि त्रिजटा आदि जो भी हरिभक्तिमान् व्यक्ति लंकामें थे वे सब पूर्वजन्ममें धर्मरुचि मन्त्रीके ही सम्बन्धी थे और हरिभक्त थे। प्रतापभानु आदि अन्य सब लोग पूर्वजन्ममें धर्मशील और पापरहित होते हुए भी राक्षसदेह पानेसे अधर्मी बन गये। इससे यह सिद्ध हुआ कि पूर्वजन्ममें इनमेंसे कोई भी हरिभक्त नहीं था। ☞इस प्रकरणमें यह विशेष रीतिसे दिखाया है कि देहस्वभाव बिना हरिभक्तिके नहीं जाता है। केवल धर्मशीलतासे देहस्वभाव नहीं जाता। काकभुसुण्डि काकदेहवाला है, पर काकस्वभाव नहीं है; इसका कारण भी यही है कि वह शापके पूर्व विप्रदेहमें हरिभक्तिसम्पन्न था। इस प्रकार ग्रन्थके उपक्रम और उपसंहारमें इन दो कथाओंसे एक ही सिद्धान्त बताया—*'बिनु हरिभक्ति स्वभाव न जाई।'*

२ नारदमोह-प्रकरणसे यह बताया कि शिव-हरि-कृपा-विहीन योग, ज्ञान, वैराग्य और कामविजय भी निरर्थक और अधोगतिदायक हैं।

३ मनुशतरूपा प्रकरणमें बताया कि धर्मशीलता, वैराग्य और ज्ञानको हरिभक्तिका आधार हो तो वह जीव भगवान्को भी वशमें कर लेता है।

४ काकभुशुण्डि-चरित्रमें यह विशेषता बतायी है कि कर्म-ज्ञान-रहित केवल भक्तिसे वैराग्य-ज्ञानादि सब कुछ सहज ही अनायास प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार अन्वय और व्यतिरेक-पद्धतिसे कर्म-धर्म-ज्ञान और भक्तिकी विशेषता बताकर सिद्ध किया है *'रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।', 'नाम रामको अंक है सब साधन हैं सून। अंक गए कछु हाथ नहिं अंक रहे दस गून॥'* (दोहावली १०) ऐसा कहना उचित ही है। यही मानसका श्रुतिसिद्धान्त है।

नोट—१ *'भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू।'* इति। श्रीरामचरितमानसकल्पवाले रावण और कुम्भकर्ण सहोदर भ्राता थे। विभीषणजी रावणके सौतेले भाई थे। अत: मानसकल्पवाली कथा वाल्मीकीय और अध्यात्म आदि रामायणोंसे भिन्न कल्पकी है। इन रामायणोंके रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण सहोदर भ्राता थे। महाभारत वनपर्वमें जिस रावणकी कथा मार्कण्डेय मुनिने युधिष्ठिरजीसे कही है उसका भी विभीषण सौतेला भाई था। कथा इस प्रकार है—पुलस्त्यजी ब्रह्माके परम प्रिय मानस पुत्र थे। पुलस्त्यजीकी स्त्रीका नाम 'गौ' था; उससे वैश्रवण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वैश्रवण पिताको छोड़कर पितामह ब्रह्माजीकी सेवामें रहने लगा। इससे पुलस्त्यजीको बहुत क्रोध आ गया और उन्होंने (वैश्रवणको दण्ड देनेके लिये) अपने-आपको ही दूसरे शरीरसे प्रकट किया। इस प्रकार अपने आधे शरीरसे रूपान्तर धारणकर पुलस्त्यजी विश्रवा नामसे विख्यात हुए। विश्रवाजी वैश्रवणपर सदा कुपित रहा करते थे। किंतु ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न थे,

इसलिये उन्होंने उसे अमरत्व प्रदान किया, समस्त धनका स्वामी और लोकपाल बनाया, महादेवजीसे उनकी मित्रता करा दी और नलकूबर नामक पुत्र प्रदान किया। साथ ही ब्रह्माजीने उनको राक्षसोंसे भरी लंकाका आधिपत्य और इच्छानुसार विचरनेवाला पुष्पकविमान दिया तथा यक्षोंका स्वामी बनाकर उन्हें 'राजराज' की उपाधि भी दी।

कुबेर (वैश्रवण) जी पिताके दर्शनको प्रायः जाया करते थे। विश्रवा मुनि उनको कुपित दृष्टिसे देखने लगे। कुबेरको जब मालूम हुआ कि मेरे पिता मुझसे रुष्ट हैं तब उन्होंने उनको प्रसन्न करनेके लिये पुष्पोत्कटा, राका और मालिनी नामकी परम सुन्दरी तथा नृत्यगानमें निपुण तीन निशाचरकन्याएँ उनकी सेवामें नियुक्त कर दीं। तीनों अपना-अपना स्वार्थ भी चाहती थीं, इससे तीनों लाग-डाँटसे विश्रवा मुनिको संतुष्ट करनेमें लग गयीं। मुनिने सेवासे प्रसन्न होकर तीनोंको लोकपालोंके सदृश पराक्रमी पुत्र होनेका वरदान दिया। पुष्पोत्कटाके दो पुत्र हुए—रावण और कुम्भकर्ण। मालिनीसे एक पुत्र विभीषण हुआ। राकाके गर्भसे खर और शूर्पणखा हुए। यथा—'**पुष्पोत्कटायां जज्ञाते द्वौ पुत्रौ राक्षसेश्वरौ। कुम्भकर्णदशग्रीवौ बलेनाऽप्रतिमौ भुवि॥ मालिनी जनयामास पुत्रमेकं विभीषणम्। राकायां मिथुनं जज्ञे खरः शूर्पणखा तथा॥**' (महाभारत वनपर्व अ० २७५। ७-८)

रावणके दस सिर जन्मजात थे। इसीसे उसका नाम प्रथम दशग्रीव था। रावण नाम तो कैलासके नीचे दबनेपर हुआ। रावणका अर्थ है रुलानेवाला। (वाल्मी० ७। १६ देखिये) (प० प० प्र० की टिप्पणी देखिये)।

वाल्मीकीयके रावणजन्मकी कथा तथा उसकी माताका नाम इससे भिन्न है। कथा इस प्रकार है कि विष्णुभगवान्के भयसे सुमाली परिवारसहित रसातलमें रहने लगा। एक बार जब वह अपनी कुमारी कन्या कैकसीसहित मर्त्यलोकमें विचर रहा था, उसी समय कुबेरजी पिता विश्रवाके दर्शनोंको जा रहे थे। उनका देवताओं और अग्निके समान तेज देखकर वह रसातलको लौट आया और राक्षसोंकी वृद्धिका उपाय सोचकर उसने अपनी कन्या कैकसीसे कहा कि तू पुलस्त्यके पुत्र विश्रवा मुनिको स्वयं जाकर वर। इससे कुबेरके समान तेजस्वी पुत्र तुझे प्राप्त होंगे। पिताकी आज्ञा मान कैकसी विश्रवा मुनिके पास गयी। सायंकालका समय था। वे अग्निहोत्र कर रहे थे। दारुण प्रदोषकालका उसने विचार न कर वहाँ जाकर उनके समीप खड़ी हो गयी। उसे देखकर उन्होंने पूछा कि तुम कौन हो और क्यों आयी हो? उसने उत्तर दिया कि आप तपःप्रभावसे मेरे मनकी बात जान सकते हैं। मैं केवल इतना बताये देती हूँ कि मैं केवल अपने पिताकी आज्ञासे आयी हूँ और मेरा नाम कैकसी है।

विश्रवा मुनिने ध्यानद्वारा सब जानकर उससे कहा कि तू दारुण समयमें आयी है, इससे तेरे पुत्र बड़े क्रूर कर्म करनेवाले और भयंकर आकृतिके होंगे। यह सुनकर उसने प्रार्थना की कि आप-ऐसे ब्रह्मवादीसे मुझे ऐसे पुत्र न होने चाहिये। आप मुझपर कृपा करें। मुनिने कहा—'अच्छा, तेरा पिछला पुत्र वंशानुकूल धर्मात्मा होगा।

कैकसीके गर्भसे क्रमशः रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा उत्पन्न हुए। सबसे पीछे विभीषण हुए। (वाल्मी० ७। ९। १—३५)

प्रायः यही कथा अध्यात्मरामायणमें है। (अ० रा० ७। १। ४५—५९) पद्मपुराण-पातालखण्डमें श्रीअगस्त्यजीने श्रीरामदरबारमें जो कथा कही है उसमेंकी 'कैकसी' विद्युन्मालीदैत्यकी कन्या थी। उस कैकसीके ही रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण पुत्र हुए।

नोट—२ रावणके दस सिर क्यों हुए? इसपर अनेक महात्माओंने लिखा है। सृष्टिकर्त्ता ही इसका अभिप्राय भले ही ठीक कह सकें। (१)—हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि 'रावणकी माँको पुत्रका वरदान मुनि देकर फिर किसी अनुष्ठानमें दस मासतक लगे रह गये, वह खड़ी रही। तबतक दस बार इसे रजोधर्म हुआ, इस कारण दस सिरका पुत्र मुनिने इसको दिया।' (२)—इसमें सत्, रज, तम तीनों गुण दर्शानेको दस सिर दिये, क्योंकि त्रिदेवके १० सिर हैं, इस तरह कि भगवान् विष्णुके एक सिर है, ब्रह्माजीके चार और शंकरजीके पाँच हैं। सब मिलकर दस हुए। (३)—दसवीं दशा मृत्यु है। यह संसारभरको मृत्युरूप

होगा। (४)—दस सिर मानो १० का अंक है जिसमें एक '१' जो ईश्वर उससे विमुख होनेसे यह शून्य (मृतक) सम होगा। (५)—यह मोहका स्वरूप है। दसों इन्द्रियाँ इसके १० मुख हैं यथा—*'मोह दसमौलि'''''।'* इत्यादि। (मानसशंकावली, शंकामोचन) पुनः, (६) यों भी कहा जाता है कि रुद्रयामलतन्त्र और पद्मपुराणमें लिखा है कि 'कैकसी' को रतिदानकी स्वीकृति दे मुनि ध्यानमें लीन हो गये। ध्यान छूटनेपर पूछा—उसने कहा दस बार मुझे ऋतु-धर्म हुआ है, इससे आशीर्वाद दिया कि प्रथम पुत्र दस सिरवाला होगा और 'केसी' से कहा कि तेरे एक पुत्र होगा जो बड़ा ज्ञानी और हरिभक्त होगा। रावण, कुम्भकर्ण और शूर्पणखा कैकसीसे हुए और विभीषण 'केसी' से हुए। (वीर)

प० प० प्र०—प्रत्येक कल्पमें रावण 'दसमुख' क्यों और रामावतारके पिता 'दशरथ' ही क्यों? इन प्रश्नोंका समाधान केवल आध्यात्मिक विचारसे ही ठीक-ठीक होता है। तथापि भौतिक दृष्टिसे भी ये नाम यथार्थ हैं। जिसका रथ दसों दिशाओंमें जहाँ चाहे जा सकता है, वह दशरथ है। दशमुखका अर्थ स्पष्ट है। दशमुख विश्रवा मुनिका ही पुत्र होता है। '**विशेषः श्रवः (कीर्तिः) यस्य स विश्रवाः**' जो विशेष विख्यात विश्रुत होता है उसका पुत्र।

अध्यात्मपरक अर्थ—**दशरथ—दशयुक्तः रथो यस्य—दशरथः**। जिसके रथमें दशेन्द्रियरूपी घोड़े रहते हैं वह दशरथ है। जीव ही दशरथ है। '**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। इन्द्रियाणि हयानाहुः॥**' (कठ० ३। ३-४) पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय ही जीव दशरथके शरीररूपी रथके घोड़े हैं। रथका सारथी बुद्धिमान् और कुशल होता है तभी वह रथको इष्टस्थलतक ले जाता है और रथी कृतकृत्य होता है। बुद्धि सारथी है और मन लगाम है—'**बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनो प्रग्रहमेव च**', '**मनोरथानामगतिर्न विद्यते।**' दशरथजीका रथ स्वर्गादि लोकोंमें भी जाता है, जीवके मनोरथोंकी गति अकुण्ठित ही होती है। भौतिक वस्तुस्थिति आध्यात्मिक अर्थानुकूल ही है।

जीव दशरथ अजपुत्र है। अज है ब्रह्म, ईश्वर। और ***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'***, '**आत्मा वै पुत्रनामासि**', '**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः**', '**जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः।**' दशरथ जीवकी पत्नी महारानी कौसल्या ही होती हैं। **कुशलस्य भावः कौशलम्**। वह है सुमति। और *'जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।'* सद्गति, मोक्ष, भक्ति प्राप्त करनेके उत्तम अधिकारी जीवका प्रतीक 'दशरथ' है।

'दशमुख'। इस शब्दका अर्थ 'दशरथ' के समान ही है।=जिसके दशेन्द्रियरूपी मुख होते हैं वह ही दसमुख है। दशमुख भी दसों दिशाओंमें, स्वर्गादि लोकोंमें जा सकता है। '**मुखमुपाये प्रारम्भे, उपाये गेहादिमुखे**' (**हैमः**)। **मुख**=गृहका द्वार। दस इन्द्रियाँ देहरूपी घरके दस दरवाजे हैं। *'इंद्री द्वार झरोखा नाना।'* इन इन्द्रियरूपी दस मुखोंसे ही जीव भोग भोगता है। दशमुख विषयी है। विवेकी ***'धर्मधुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारँगपानी॥'*** ऐसा जीव दशरथ है और विषयी, निशाचरवृत्तिवाला दुर्जन जीव दशमुख है।

दशमुख विश्रवस् मुनिका पुत्र है। श्रवःश्रुतिः, श्रुतिमें, वेदोंमें विशेष करके जो श्रुत है वह है आत्मा—ब्रह्म। दशमुखकी पटरानी 'मय' दानवकी 'तनया' है। मय अत्यन्त मायावी दानव है। *'तनु विस्तारे'* उसकी तनया मयदानवके गुण-दोषोंका विस्तार ही करेगी। दशमुख कुमतिवाला जीव है।

' बुद्धिकी मुख्य तीन वृत्तियाँ होती हैं। वही कौसल्याजी, सुमित्राजी और केकयीजी हैं। कौसल्याजी=शुद्ध सात्त्विक बुद्धि-वृत्ति। मानसमें कौसल्याजीका चरित्र ऐसा ही चित्रित किया गया है। सुमित्राजी राजस-सात्त्विक हैं, यह भी मानसमें अच्छी तरह पाया जाता है। केकयी तामस-सात्त्विक हैं, मानसमें यह भी स्पष्ट दिखाया है। बुद्धिवृत्तिके भेद अनेक हैं, अतः दशरथजीकी तथा दशमुखकी भी अनेक भार्याएँ हैं। मानसमें संख्याका उल्लेख नहीं है। वेदान्तसार-अभंगरामायण (मराठी—प्रज्ञानानन्दकृत) में समग्र रामायण अध्यात्मपरक अर्थसे भरा हुआ बताया है। [आत्मरामायणमें भी सब रामायण अध्यात्मपरक है। वर्षों हुए जब मैंने उसे कहीं देखा था। मा० सं०]

'रावन नाम' इति। दशाननने जब कैलास उठाया तब भवानीजीको डरी हुई देख शिवजीने अपने पदाङ्गुष्ठसे पर्वतको दबाया जिससे दशाननके बीसों हाथ पर्वतके नीचे दब गये और वह जोर-जोरसे रोने

लगा, तबसे उसका नाम रावण हुआ। दशमुख नाम रूपानुसार रखा गया और रावण नाम उसके प्रतापानुसार है। उपनिषद्में रावण नामके अर्थ इस प्रकार मिलते हैं—'**रामपत्नीं वनस्थां यः स्वनिवृत्त्यर्थमाददे॥ १७॥ स रावण इति ख्यातो यद्वा रावाच्च रावणः।**' ऊपर दिया हुआ इतिहास '**रावात् च रावणः**' अर्थानुसार 'श्रीगुरुचरित्र' ग्रन्थमें और पुराणोंमें उपलब्ध है। वाल्मी० रा० उत्तरकाण्ड सर्ग १६ 'रावण-नाम-प्राप्ति' में ऊपर दी हुई कथा ही विस्तारसे है। दशानन एक सहस्र वर्ष रोता रहा था, इत्यादि। यथा—'**संवत्सरसहस्रं तु रुदतो रक्षसो गतम्। ततः प्रीतो महादेवः शैलाग्रे विष्ठितः प्रभुः॥ ३६॥ मुक्त्वा चास्य भुजान् राम प्राह वाक्यं दशाननम्। प्रीतोऽस्मि तव वीर्यस्य शौण्डीर्याच्च दशानन॥ ३७॥ शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया रावः सुदारुणः। यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम्॥ ३८॥ तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना राजन् भविष्यसि। देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले॥ ३९॥ एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम्।**.....'

इससे सिद्ध हुआ कि रावण जन्म-नाम नहीं है। जन्म-नाम दशानन ही था।

टिप्पणी—५ (क) राजा, उसका भाई और मन्त्री तीनों राक्षसयोनिमें जाकर भाई हुए। इन तीनों भाइयोंके जन्म, नाम और गुण कहे। '*भएउ निसाचर*' यह जन्म, '*रावन' नाम, 'बीर बरिबंडा*' अर्थात् रावण वीरोंमें श्रेष्ठ था यह गुण कहा। '*भयउ सो कुंभकरन*' यह जन्म, कुम्भकर्ण नाम और '*बलधामा*' अर्थात् कुम्भकर्ण बलवान् था यह गुण कहा। '*भयउ बिमात्र बंधु*' यह जन्म, '*नाम बिभीषन*' और '*बिष्नु भगत बिग्याननिधाना*' यह गुण कहे। (ख) तीनों भाइयोंके जन्म क्रमसे कहे। प्रथम रावण, तब कुम्भकर्ण, तब विभीषण। इसी क्रमसे छोटाई-बड़ाई जना दी। रावण ज्येष्ठ, उससे छोटा कुम्भकर्ण और कुम्भकर्णसे छोटा विभीषण है। (ग) धर्मरुचि विभीषण हुआ। धर्मरुचिमें कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों थे। '*नृप हितकारक सचिव सयाना*' के '*सयान*' शब्दसे 'ज्ञानी' कहा। ☞'*सचिव धर्मरुचि*' के '*धर्मरुचि*' से कर्मकाण्डी और '*हरि पद प्रीति*' से उपासक सूचित किया। वैसे ही राक्षसयोनिमें विभीषण होनेपर भी उसमें ये तीनों गुण हुए। ('*धर्मरुचि जासू*' देहलीदीपक है, इस तरह) 'धर्म' से कर्म, 'विज्ञान' से ज्ञान और 'विष्णुभक्त' से उपासना कही। [मन्त्रीका जैसा नाम था वैसा ही उसमें गुण भी था। निशाचर होनेपर भी वह हरिभक्त हुआ। भक्तिका संस्कार नहीं मिटता, यथा—'*ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंग बर॥*' (७। ७९) (प्र० सं०)]

वि० त्रि० ने दक्षिण भारतके एक महाविद्वान् वी० सूर्यनारायणरावके रायल हारोस्कोप नामक पुस्तकसे रावणकी यह कुण्डली उद्धृत की है—
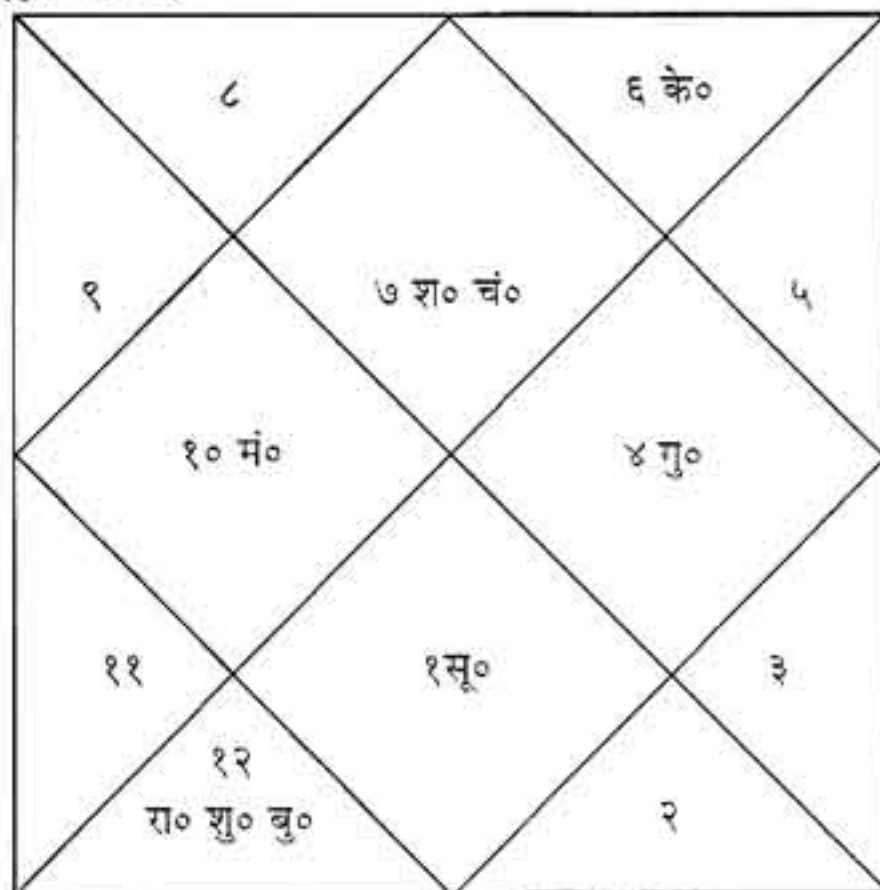
रावण-जन्मके समयका निर्णय उत्तरकाण्ड ६४ (८) में लिखा गया है।

रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥ ६॥
काम रूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका॥ ७॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाइ बिस्व परितापी॥ ८॥
दो०—उपजे जदपि पुलस्त्य कुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर स्राप बस भए सकल अघरूप॥ १७६॥

शब्दार्थ—**कामरूप**=इच्छारूप धारण करनेवाले। जब जैसी कामना हो वैसा रूप धर लेनेवाले। **जिनस** (जिन्स, फा०)=किस्म, प्रकार, जाति। **बिगत**=विशेष गया हुआ; रहित। **परितापी**=दु:ख देनेवाले। **अमल**=निर्मल। बेदाग।

अर्थ—राजाके जो पुत्र और सेवक थे वे (ही) बहुत-से भयंकर राक्षस हुए॥ ६॥ वे सब कामरूप, खल, अनेक प्रकार और जातिके, कुटिल, भयंकर, अविवेकी, निर्दयी, हिंसा करनेवाले, पापी और संसारभरको संताप देनेवाले हुए। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ७-८॥ यद्यपि वे पवित्र, निर्मल और अनुपम पुलस्त्यकुलमें उत्पन्न हुए तथापि ब्राह्मणोंके शापवश वे सब पापरूप हुए॥ १७६॥

टिप्पणी—१ '*रहे जे सुत सेवक*·····' इति। (क) राजाका हाल कहकर अब परिवारका हाल कहते हैं। '*रहे जे सुत*·····' का भाव कि राजाके सम्बन्धसे ये सब भी राक्षस हुए। इसीसे सर्वत्र राजाका सम्बन्ध दिखाते जाते हैं। यथा—'*भूप अनुज अरिमर्दन नामा।*', '*सचिव जो रहा*·····', '*रहे जे सुत सेवक नृप केरे।*' (ख) '*सुत सेवक*' कहनेका भाव कि जो पुत्र थे वे पुत्र हुए और जो सेवक थे वे सेवक हुए। 'सेवक' की गणना परिवारमें है। यथा—'***अतिहि अयाने उपखानो नहि बूझैं लोग, साहही के गोत गोत होत है गुलाम को।***' (क० ७। १०७) अपना गोतिया, अपना परिवार कहा जाता है! [श्रीयन्त्रराज-पूजनमें श्रीविभीषण, अङ्गद, हनुमान्‌जी आदि सेवक होते हुए भी परिवार माने गये हैं। वैसे ही राजाके सेवक उसके परिवार हैं। (रा० प्र०)] (ग)—'*घोर*'—ब्राह्मणका शाप अति घोर है, यथा—'***प्रभु महिदेव स्राप अति घोरा।***', इसीसे ये सब 'घोर' हुए। '*भए निसाचर घोर*' कहकर जनाया कि राक्षस जन्म लेते ही घोर हुए, यथा—'***देखत भीमरूप सब पापी।***' '*घनेरे*' से पाया गया कि भानुप्रतापके पुत्र और सेवक बहुत थे; यथा—'***सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥***'—ये सब राक्षस हुए। इसीसे '*घनेरे*' कहा।

टिप्पणी—२ (क) '*कामरूप*·····' कामरूप हैं अर्थात् अनेक रूप धारण करते हैं। खल हैं अत: जगत्‌में उपद्रव करते हैं। यथा—'***करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥***' '***जिनस अनेका***' अर्थात् अनेक प्रकारके हैं। किसीका मुख हाथीका-सा, किसीका व्याघ्रका, किसीका वृषभका, किसीका शूकर, गर्दभ, श्वान आदिका-सा है। यथा—'***खर स्वान सुअर सृकाल मुख***·····। ***बहु जिनस प्रेत पिसाच***·····***बरनत नहि बनै।***' (९३) पुन: '*कामरूप*' से छली जनाया। भाव कि अनेक रूप धरकर छल करते हैं। कामरूप होनेसे विश्वको सताना उनके लिये सरल हो गया। '*खल*' कहकर खलोंके अनेक अवगुणोंसे युक्त जनाया। यथा—'***खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा परसंपति देखी॥***·····॥'(७। ३९-४०) '***जे बिनु काज दाहिनेहु बायें***·····।' (१। ४) राजाके सुत, सेवक, मन्त्री, सेनापति और सेना इत्यादि अनेक प्रकारके सेवक थे, इसीसे अनेक प्रकारके राक्षस हुए, अत: '*जिनस अनेका*' कहा। (ख) '*कुटिल भयंकर*·····' स्वभावसे कुटिल हैं और शरीर भयंकर है; यथा—'***देखत भीमरूप सब पापी।***' इससे जनाया कि भीतर-बाहर दोनोंसे खराब हैं। '*बिगत बिबेक*' अर्थात् इनमें सत्त्व और रजोगुणका लेश भी नहीं, केवल तमोगुण है। पुन: भाव कि मन कुटिल है, तन (आकृति) भयङ्कर है और अज्ञानी हैं। (ग) ☞जैसे रावणका जन्म कहकर उसके गुण कहे, वैसे ही निशाचरोंका जन्म कहकर उनके लक्षण कहे। कामरूप आदि सब उनके लक्षण हैं।

टिप्पणी ३—'*कृपा रहित हिंसक सब*·····' इति। (क) '*कृपा रहित*' भाव कि जहाँ कृपा करनेका हेतु उपस्थित है, कृपा अवश्य करनी चाहिये, वहाँ भी कृपा नहीं करते। यथा—'***सपनेहु जिन्ह के धरम***

न दाया।' 'हिंसक सब पापी' का भाव कि जिसने हिंसा की वह सब पाप कर चुका। यथा—*'पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'* (७। ४१), *हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहिं कवनि मिति।'* (१८३) (ख) सब अवगुण क्रमसे कहे। कृपारहित हैं अतः हिंसक हैं, निर्दयी ही हिंसा करते हैं। हिंसक हैं इसीसे पापी हैं क्योंकि हिंसाके समान पाप नहीं। पापी हैं, इसीसे विश्वपरितापी हैं। विश्वपरितापीसे जनाया कि विश्वमें उनसे कोई जीत नहीं सकता, यथा—*'एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय।'* इन विशेषणोंसे जनाया कि विश्वको परिताप देनेमें ये आनन्दानुभव करते थे। जो किसी एकको दुःख दे उसका नाम न लेना चाहिये और ये तो विश्वपरितापी हैं, इसीसे इनके नाम नहीं लेते, इनका वर्णन नहीं करते। विश्वको दुःख देना महान् पाप है, यथा—*'विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा।'* पापी पृथ्वीका भार होते हैं। (ग) *'बरनि न जाय'* क्योंकि पापीका वर्णन न करना चाहिये। यथा—*'एहि लागि तुलसीदास इनकी कथा कछु यक है कही।'*

टिप्पणी ४—*'उपजे जदपि पुलस्त्य कुल'''''।'* इति। (क) *'जदपि'* का भाव कि ऐसे कुलमें जन्म होनेसे उपर्युक्त अवगुण न होने चाहिये थे। पुलस्त्यकुल पावन अर्थात् शुद्ध है, पवित्र है। अमल है अर्थात् कुलमें कोई दोष नहीं है। अनूप है अर्थात् इस कुलकी कोई उपमा नहीं है। पावनादि क्रमसे कहे। पावन है अतः निर्मल है, और निर्मल है, इसीसे अनूप है। *'तदपि'* का भाव कि कुलीन अधम काम नहीं करते पर ये पावन कुलमें उत्पन्न होकर अपावन हुए, निर्मल कुलमें मलिन हुए और अनुपम कुलमें तुच्छ हुए। उत्तम कुलमें जन्म लेनेपर भी 'अघरूप' हुए। वंशका प्रभाव प्रायः अवश्य पड़ता है पर इनमें वंशका गुण न आया। [*'पावन अमल अनूप',* यथा—*'रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महँ जनि होहु कलंका॥'* (५। २३) भाव कि ये सब कुलमें कलंकरूप हुए।] (ख) *'महिसुर श्राप बस'*—यह उत्तम कुलमें होनेपर भी अघरूप होनेका हेतु बताया। इससे जनाया कि विप्रशाप अधिक प्रबल है, इसीसे विप्रशापका प्रभाव पड़ा, कुलका प्रभाव न पड़ा। विप्रशापके कारण कुलका प्रभाव न पड़ा।' 'अघरूप' का भाव कि कुल पावन आदि है, पर रावणादि पापी हैं, इनके सब काम कुलधर्मके विपरीत हैं। 'अघरूप' कहनेसे पावन, अमल, अनूप तीनोंके विपरीत अपावन, मलिन और तुच्छ विशेषण इनमें घटित हुए। पुलस्त्य मुनिके कुलमें और हों राक्षस! यहाँ 'द्वितीय विषम अलङ्कार' है।

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥ १॥
गएउ निकट तप देखि बिधाता। माँगहु बर प्रसन्न मैं ताता॥ २॥
करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥ ३॥
हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥ ४॥

शब्दार्थ—**उग्र**=उत्कृष्ट, प्रचण्ड, भयंकर, कठिन। **बारे**=छोड़कर, बचाकर; सिवा। (यह शब्द सं० 'वारण निवारण' निषेधसे बना जान पड़ता है)।

अर्थ—तीनों भाइयोंने अनेक तथा अनेक प्रकारके परम उग्र तप किये। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ १॥ तपको देखकर ब्रह्माजी उनके पास गये। (और बोले—) हे तात! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो॥ २॥ रावणने विनती कर चरण पकड़कर (ये) वचन कहे—'हे जगदीश्वर! सुनिये। हम वानर और मनुष्य (इन) दो जातियोंको छोड़कर किसीके मारे न मरें॥ ३-४॥

टिप्पणी—१ (क) *'बिबिध तप'* यह कि उलटे लटककर झूले, पञ्चाग्नि तापे, जल-वृष्टिका दुःख सहा, जलशयन किया, उपवास किये, अङ्ग काटकर हवन किये, इत्यादि। (ख) पुनः भाव कि तीनमेंसे किसीने किसी प्रकारका किया, किसीने किसी प्रकारका किया। इससे *'बिबिध'* तप कहा। *'कीन्ह''''तीनिहुँ भाई'* से सूचित हुआ कि तीनों भाइयोंने एक साथ तप करना प्रारम्भ किया। इससे यह भी पाया गया कि तीनों भाई एक संग कुछ ही दिनके आगे-पीछे पैदा हुए, तीनोंमें थोड़े ही दिनोंकी छोटाई-बड़ाई